

गो. नी. दाण्डेकर

दरियामवाली

दरियामवाली

367





शारदा पुस्तकालय
(संस्कृत एवं हिन्दी)
क्रमांक ... 366/-

(366)



दरिया भवानी
(ऐतिहासिक उपन्यास)



छत्रपति शिवाजी के विजय अभियान के
समय भारत के पश्चिमी सागरतट और
तटवर्ती प्रदेश की अवस्था का विहंगम दृश्य
प्रस्तुत करने वाले सुप्रसिद्ध मराठी उपन्यास
का सम्पूर्ण अनुवाद

अनुवादक
डा० चिं० बा० केलकर

दरिया भवानी

PUSTAKALYA AVENI VACHNALAYA
VIC N.C. J.W. SAWYER LIBRI.

Acc no. : 1325

30/10/2023

गोपाल नीलकण्ठ दाण्डेकर

1561

सुरुचि प्रकाशन

केशव कुञ्ज, झण्डेवाला, नयी दिल्ली-१



प्रकाशक :

सुरुचि प्रकाशन

(सुरुचि संस्थान का प्रकाशन विभाग)

केशव कुञ्ज, झण्डेवाला,

नयी दिल्ली-११००५५

© लेखक

प्रथम संस्करण : जुलाई, १९८५

मूल्य : २० रुपये

मुद्रक :

दुर्गा मुद्रणालय

सुभाष पार्क मैसेटेशन,

नयी दिल्ली-३२

दो पालों वाला मालवाही जलपोत, कोठ्या साईमलंग, राजापुर चन्द्रगाह से रवाना हुआ, उस समय समुद्री हवाएँ शान्त वह रही थीं। किन्तु साईमलंग जलपोत सुने समुद्र में पहुँचकर उत्तर की ओर मुड़ा; तभी समुद्री हवाओं का एक झंकावाती झोंका जलपोत के दोनों पालों पर आ गिरा। साईमलंग क्षणभर डगमगाया और दूसरे ही क्षण भूतसंचार के समान भयंकर वेग से भागने लगा। समुद्री हवाओं का वह एक ही झोंका आया। उसके बाद हवाएँ ऐसी थमीं, मानो वे बहना ही भूल गयी हों। साईमलंग उस झोंके में सौ-दो सौ गज तक ही भागा था, तभी उस पर एक और विपदा आ पड़ी।

जलपोत में पानी भरने लगा था। हाथ की पाँचों औंगुलियाँ समासकें, इतना बड़ा छेद जलपोत के तल में हुआ था। उस छेद से भरते पानी से जलपोत का तल भर गया। साईमलंग का माँझी खेमनाक माँ-बाप की गाली बकता उठा। उसने जलपोत के रसाइये समेत सभी खलासियों को साथ लिया और जलपोत में भरता पानी चमड़े की डोलचियों से बाहर निकालने लगा। जलपोत के सभी खलासी पसीने से नहा रहे थे। साईमलंग में सूखे बड़े नारियलों का लदान था। जलपोत के तल में भरा सारा नारियल भीग गया था। माल को हानि नहीं पहुँची थी, पर उसकी तीखी गंध सभी को अशान्त कर रही थी। इस बार के लदान के साथ खेमनाक ने अपने छोटे भाई मायनाक को साथ लिया था और इस बार की यात्रा का सारा भार उसी को सोंप दिया था। दरिया की हवाओं के झोंके से,

बगुले के पंखों जैसे भरे जलपोत के दोनों पाल मायनाक ने बढ़े ही साहस तथा परिश्रम से उतारे थे। वृक्षों की शाखाओं पर जैसे गिलहरी चढ़ती है, उतनी ही सरलता से मायनाक और उसके साथी जलपोत के मस्तूलों पर चढ़े थे। समुद्र के उन भंकावाती क्षणों में कितनी ही बार मस्तूलों के छोर भुक-भुककर समुद्र का पानी पीते से लगते, पर इन जवानों की पकड़ न हिली, न छूटी। गुड़ पर चिपके चीटों से, वे सभी मस्तूलों पर अपने-अपने स्थान पर डटे, हवाओं से जूझ रहे थे।

खेमनाक एक अनुभवी नाविक था। अपने जलपोत का नाम साईमलंग रखने में वह एक खेल खेल गया था। मुसलमानी नाम देखकर सिद्धी और अरबी समुद्री डाकू एकाएक उसके जलपोत पर हाथन डालें, यह उसकी चाल थी। साईमलंग जलपोत पुराना हो गया था। सागौन की लकड़ी से बने उस जलपोत पर हर वर्ष तेल का स्नेहिल हाथ फिरता था। फिर भी वर्षों की तेज धूप और समुद्री हवाओं ने उस पर भी बुढ़ापा लाद दिया था। जलपोत में जहाँ-तहाँ से लकड़ी की ढपलियाँ निकल रही थीं। उन ऊबड़-खाबड़ स्थानों में शैवाल जमकर बढ़ रही थी, जलपोत के सिरे पर नीचे धोंधों और सीपियों ने बस्तियाँ बसा ली थीं। समुद्र की लहरों पर जलपोत का अगला सिरा ऊपर उठता, तभी उन जीवों की बस्तियों को सूर्य के प्रकाश के दर्शन होते।

जलपोत में भरा पानी निकालने की भाग-दौड़ में समुद्री यातायात के परवाने के कागज रखने की बाँस की नली कहीं खो गयी थी। देर तक ढूँढ़ने पर वह नली नारियलों के लदान में अटकी मिली। उस नली पर लगा डाट खोलकर खेमनाक ने परवाने के कागज बाहर निकाले। सुदैव ही था कि परवाने के कागजों को पानी का स्पर्श नहीं हुआ था। कागज उत्तम था। पर समुद्र की हवाओं से वह भी अब जीर्ण हो गया था। परवाने पर उर्दू लिपि में लिखा आ :

“दस्तक सरकार इदिलशाही, सुबे मुहम्मदाबाद, ताहां कमाविसदारान चौकीदारान और राहदारान और वाजेलोगान और छवीने आरमार, और दरियाजकातीं महालनिहाय सुरु इस्ने और अलफ खेमनाक मल्लाह शाहाबाजवाला का जहाज बजन खंडी बारह, मांझीखुद

खेमनाक, सफरी आसामी छः; एक किश्ती कुल, आखेर साल मुदत दरिया में आमदरपती करते हैं, इस बजह से इनके विषय में मुजाहीन न हो, रजवा मार्तंब । खुद ।”

इस परवाने पर सोलह बुजियों की आदिलशाही मुहर लगी थी ।

समुद्री डाकुओं से मुठभेड़ होने पर इन परवानों के कागजों का कुछ भी उपयोग नहीं होता था । समुद्री डाकू इन परवानों को बच्चों के नाक पोंछने की चिंदी जितना भी महत्व नहीं देते थे । समुद्री डाकुओं के आतंक के कारण समुद्र में दूर तक जाने का कोई साहस भी नहीं करता था । साँझ उत्तरते ही पाल उतारकर व्यापारी जलपोत किसी बन्दरगाह का आसरा लेते । इन बन्दरगाहों के हाकिमों का मिजाज भी क्या सीधा होता? मछली पकड़ने के जालों की गाँठें कम होंगी, पर इनके मन की गाँठें और उनके धागे उलझे-पुलझे होते । परवाना हो या न हो, किसी न किसी बहाने उन दरिद्रों को कुछ न कुछ भेट-चढ़ावा चढ़ाना ही पड़ता था ।

इन सभी विपदाओं में से वचाकर खेमनाक ने अपना जलपोत रेवदण्डा के बन्दरगाह के घाट पर लगाया ही था कि तभी चौलकर फिरंगी की गश्ती नौका ने उसे ललकारा । गश्ती नौका का अधिकारी बैठा शराब पी रहा था, साथ ही सुर साधकर हाथ का वाजा बजाते हुए गा भी रहा था । उस नौका के सभी खलासी उसी ताल में नाच रहे थे । उस नाच-गाने को देखकर आसपास आती-जाती नौकाओं के मल्लाह हँस रहे थे । गश्ती नौका के अमलदार ने खेमनाक का परवाना देखा, परखा, जकात की वसूली की । खेमनाक जलपोत को बन्दरगाह की ओर खेने लगा । तभी अमलदार ने उसे आवाज दी, बोला—

“ऐ, ऐss, रंगविरंगी फ्राक पहने मेरी राह देखती मेरी फ्लोरा ने अंसू बहाकर दरिया का पानी खारा कर दिया है, इसीसे सारे मछुए खाली हाथ लौट रहे हैं । अब की बार तुम पुर्णगाल से उसे नहीं लाये तो तुम्हारी इस खुली छाती में गोली दाग दूँगा ।”

यह सुनकर मायनाक की आँखें लाल हो उठीं । उसकी वाँह थामकर खेमनाक ने उसे समझाया, बोला—“ये फिरंगी अमलदार ऐसे ही बकते हैं, आँखें चढ़ाने की आवश्यकता नहीं है ।”

खेमनाक ने लखम शेठ के गोदाम पर सूखे नारियलों का लदान उतारा; तभी उसे दाभोल बन्दरगाह का धान का लदान मिला। समुद्र में जलपोत में हुए छेद में तब तक के लिये काठ का पच्चर ठोका था। अब खेमनाक ने बढ़ई से उस छेद की पक्की मरम्मत करा ली थी। हम्मालों ने पसीने से नहाते हुए धान की बोरियाँ जलपोत में लाद दी थीं। साँझ उत्तरने लगी। लखम शेठ की हवेली में से ताजी मिर्च लेकर रसोइये ने मछली पकायी और उसी के साथ सभी ने भात की हाँड़ी खाली की।

बन्दरगाह पर फिरंगी मल्लाह गीत गाते नाच रहे थे, खेमनाक के जहाज के खलासियों ने भी उन फिरंगियों के साथ नाचते हुए पग डालकर देखा और नाक-भौं चढ़ाकर बोले, “छिः, इस नाच में अपने देश के नाच का सा आनन्द नहीं आता।”



भोर में हवाएं सुस्त पड़ी थीं। फिर भी खेमनाक ने बन्दरगाह से रवाना होने की ठान ली। रात के ज्वार में टट पर रेत पसरी थी। जलपोत का लंगर उसी में जमकर फँस गया था। जलपोत के मल्लाह कितने बलिष्ठ! पर वे भी उस लंगर को खींचते-खींचते पसीने से नहा गये। मल्लाहों ने लंगर को पक्के खूंटे पर रस्सों से वाँध दिया। साईमलंग जलपोत बन्दरगाह से अब बाहर निकल ही रहा था, तभी लखम शेठ का नौकर खेमनाक को पुकारता बन्दरगाह पर आया। उसने खेमनाक से कहा :

“माँझी ! शेठ बुला रहा है।”

दाभोल बन्दरगाह की दुर्गा लखम शेठ के कुल की आराध्य देवता थी। लखम शेठ की शेठानी ने उस दुर्गा से मनौती की थी और आज ही वह उस मनौती को पूरा करने दाभोल जाना चाहती थी।

पर ये सारी बातें बाजार में ऊँचे बोलकर बताने की आवश्यकता नहीं थी। लखम शेठ ने अपनी लक्ष्मी से इतना भर कहा था कि “फसल कटने के दिन आये हैं, चार पैसे कमाने के दिन हैं, कुछ दिनों बाद दाभोल जाकर दुर्गा देवी की पूजा भी कर लेंगे और मनौती भी पूरी कर लेंगे।”

पर देचारा लखम शेठ !! शेठानी ने चिल्ला-चिल्लाकर उस छोटी वस्ती में भीड़ इकट्ठी कर ली। हारकर लखम शेठ उसी समय दाभोल जाने

के लिये तैयार हुआ। पर इतने भर से शेठानी का मन नहीं भरा। हवेली के दरवाजे पर खड़े-खड़े ही उसने कहा—

“सुनो जी ! माँ दुर्गा को क्या-क्या चढ़ावा चढ़ाना है ? वह भी अभी और यहीं बता दो, हाँ॥”

लखम शेठ अब थोड़ा संभल गया था। वह सावधान भी था। कितने गहने और क्या-क्या लेकर वह यात्रा पर निकल रहा है, यह सब भरे बाजार में उजागर करना ठीक नहीं, यह भी वह समझ रहा था। पर शेठानी के सामने उसे यहाँ भी हार खानी पड़ी।

चन्द्रहार, चूड़ियाँ, पटेल और जो भी गहने गढ़े गये थे वे सभी एक साथ ले जाकर दुर्गा को चढ़ाने हैं, ये सारी बातें शेठानी ने पति के मुख से सबके सामने कहलवा लीं, तब कहीं वह यात्रा की तैयारी करने हवेली में लौटी।

धुंधले प्रभात का समय था, फिर भी शेठ और शेठानी के उस कलह को सुनने के लिये भीड़ जुट गयी थी। खेमनाक हवेली में जा रहा था। तभी उसे भीड़ में एक जाना-पहचाना सा मुखड़ा दिखा। उसे क्षणभर लगा कि उसे उसने अनेक बन्दरगाहों पर देखा है। पर खेमनाक को देखकर वह धुंधलके में ओझल हो गया। यह देखकर खेमनाक को क्षणभर आश्चर्य भी हुआ।

लखम शेठ की दाखोल जाने की बात सुनकर खेमनाक कुछ अप्रसन्न भी हुआ। उसने कहा—

“शेठ ! मुझे निकलने में देर होगी ।”

हताश शेठ ने कहा, “भई देर होगी ही, पर इसमें मेरा वस नहीं और तेरा भी नहीं ।”

लखम शेठ की लक्ष्मी की पालकी बन्दरगाह की ओर निकली, तब दिन दो प्रहर चढ़ गया था और घाम सिर पर तपने लगी थी।



हवाएँ एकदम शान्त थीं। घाम तेजी से तप रही थी। बन्दरगाह में से पोत को बाहर निकलना कब सम्भव होगा, इसका कोई अनुमान लगा पाना कठिन था। इसी कारण मायनाक टट के रेत में दोनों पैर गड़ाकर अपने भाई खेमनाक की राह देख रहा था।

देश-देश के छोटे-बड़े जलपोत बन्दरगाह में लंगर डाले खड़े थे। उनमें चार पाल के पोत थे, कुछ बतेले थे, दो पाल की गुरावें थीं, सूच्याकार चपल महागिर थीं, चौड़े बनावट के पड़ाव थे। छोटी-छोटी नावें और डोंगियाँ उनके बीच में से इवर-उधर धूम रही थीं। एक फिरंगी जलपोत के बाजू में से बाहर निकले पंचरसी तोपों के मुँह धाम में चमक रहे थे। चिपकी टोपियाँ पहने जलपोतों पर धूमते फिरंगी खलासी आस-पास से गुजरती नावें पर बिना कारण चिल्ला रहे थे। उनके जलपोतों पर फिरंगी भंडे बड़े गर्व से फरफरा रहे थे।

नाना देशों के माँझी अपनी-अपनी भाषाओं में आपस में लड़ रहे थे, एक दूसरे को समझा रहे थे। कभी-कभी वे हथियार निकालकर झगड़े पर उतर आते। उनको समझाते और शांत करते दुभायिये परेशान हो रहे थे।

कितने ही जलपोतों से माल उतारा जा रहा था। जैसे बाघ पीछे लगा हो, वैसे भागते, हाँफते, कमर में मात्र लंगोटी पहने हम्माल माल के पिटारे जलपोत में से उतारकर गोदामों के दालानों में लगा रहे थे और उसी पैर लौटकर फिर जलपोत की ओर भाग रहे थे। उनकी वक-वक, भक्त-भक से सिर धूमने की नीवत आ रही थी। किले के परकोट के भीतर नारियल के बृक्षों में से शान से मस्तक उठाकर खड़े फिरंगियों के गिरजाघर पर लगे क्रास धाम में दमक रहे थे। परकोट के बड़े दरवाजे के पास फिरंगी अधिकारी कुर्सी पर हाथ-पैर फैलाकर आराम से बैठा था।

घुटनों तक पायजामा पहने इसी देश के नये ईसाई सिपाही आते-जाते लोगों के परवाने देख-परख रहे थे। फिरंगी अधिकारी का घोड़ा खुरों से मिट्टी उड़ाता नारियल के पेड़ के नीचे छाया में खड़ा था। सईस घोड़े पर खरारा कर रहा था।

माथे पर दोनों हाथ बाँधकर मायनाक यह सब देखते-निरखते ऊन गया था। उसका बड़ा भाई खेमनाक अब तक लौटा नहीं था। अब जलपोत खुले समुद्र में निकालना केवल डांडों के दम पर ही सम्भव था। साँझ की समुद्री हवाएँ चलने तक जी तोड़कर डांडे चलाने पड़ेंगे।

एकाएक उसका ध्यान अपने जलपोत की ओर गया। चिलम फूँकते जलपोत के खलासी-माँझी खेमनाक की राह देख रहे थे। लंगर का रस्सा-

खाड़ी के पानी में पड़ा था। मायनाक चकित होकर देख रहा था, उस साईमलंग से पानी में पड़े लंगर के रस्से पर से उतरकर बड़े-बड़े चूहे पानी में कूद रहे थे और तैरते-डूवते पास के दूसरे जलपोतों पर चढ़ रहे थे। यह तो एक अपशंगुन ही था।

बड़े-बड़े जलपोतों पर चूहे रहते ही थे। तूफानों और खारी हवाओं में, लहरों के झोंकों को सहते उनके परिवार भी बढ़ते ही थे। जलपोत परदाना नहीं मिला तो ये चूहे उन पर सोये खलासियों के पैरों को कुरेदते। इन चूहों को मारने के लिये कोई-कोई माँझी जलपोतों पर बिलौटे पालते, पर एक तो समुद्री हवाओं से ये बिलौटे रोगग्रस्त रहते, दूसरे समुद्र में रहते ताजी मछली मिलने से भी बिलौटे सुस्त हो जाते थे। समीप आये चूहों की ओर वे देखते भी नहीं थे और इस प्रकार चूहों की पीढ़ियाँ जलपोतों पर आराम से फलती-बढ़ती रहती थीं, पर जलपोत पर आने वाली आपदा की सूचना मानो इन जीवों को पहले ही मिल जाती थी, और फिर वे बिना किसी प्रकट कारण के जलपोतों और नौकाओं को छोड़कर इसी प्रकार भाग जाते।

इस अपशंगुन को देखकर मायनाक अपने कोठ्ये की ओर भागा। डोंगी चलाकर वह जलपोत तक गया, पोत की तली में बढ़ई की मरम्मत फिर से देख-परख ली। बढ़ई ने काम पक्का किया था, उसमें गलती निकाल सकने के लिये कोई कारण ही नहीं था। मायनाक शंकित मन से सोचता खड़ा था। तभी डोंगी से कोठ्ये तक पहुँचे बड़े भाई की आवाज से मायनाक जागा।

खेमनाक खलासियों पर चिल्ला रहा था—“ए, ए, उठो, चलो, लंगर ऊपर उठाओ। ए, जले मुँह तेरा, आगे बढ़। आओ, शेठजी आओ। ए, कौन खड़ा है वहाँ? शेठानी को हाथ देकर चढ़ा ले ऊपर।”

मायनाक भागता बड़े भाई के पास पहुँचा और धीरे से उसके कान में उस अपशंगुन की बात बताने लगा।

खेमनाक पहले ही परेशान हो गया था, उसने मायनाक से कहा—“देख रे, पहले कोठ्या थोड़ा बाहर निकलने दे, फिर मैं तेरी बातें सुन लूँगा।” टोह लेने वाला मस्तूल पर चढ़कर बैठा था। साईमलंग खाड़ी के संकरे

प्रवाह में से बाहर निकला, तो खाड़ी के मुहाने पर मछली पकड़ने के बड़े-बड़े जाल अटकाने के खूंट, उनमें बाँधे बड़े-बड़े जाल और उनके आसपास धूमती मछुओं की डोंगियों के अलावा कुछ भी नहीं दिख रहा था। दूर गहरे समुद्र में बड़े चार पालों के तीन जलपोत एक सीध में जा रहे थे, पर वे सूरत की ओर जा रहे होंगे, ऐसा सोचकर टोह लेने वाले ने उस ओर ध्यान ही नहीं दिया।

समुद्री हवाएँ मंद थीं। समुद्र शान्त था। केवल सेमनाक पतवार के समीप पैर जमाकर खड़ा था, और मायनाक समेत सभी मत्ताह डांड़े चला रहे थे। बारह के बारह डांडे एक साथ और एक लय में पानी में डूबते और पानी उड़ाते बाहर निकल रहे थे। जलपोत के बायाँ और कोर्लई के किले की बुजियाँ और परकोटे अब ओझल हो रहे थे। पाल खोल दिये थे; पर वे चेकार ही थे। वे न फूल रहे थे, न ही नौका को आगे बढ़ा रहे थे।

लखम शेठ की पत्नी बड़े ही उत्साह से दुर्गा देवी के दर्शन के लिये निकली थी। पर उसे समुद्र की यात्रा सहन नहीं होती थी। गहरे समुद्र की बात तो दूर, केवल खाड़ी पार करनी हो तो भी वह उल्टी कर-करके बेहाल होती। बन्दरगाह छोड़ते ही शेठानी नौका के एक ओर हाथ-पैर पेट से सटाकर आँखों पर पट्टी बाँधे लेटी थी। उसके सिरहाने उसकी दास्ती आराम से बैठी थी और सुस्त पड़ी हवा को गालियाँ दे रही थी।

लखम शेठ सेमनाक को बता रहा था, “अब पहले जैसा कुछ भी तो नहीं है। मेरे पिता के समय में कोंकण में तुती की भाड़ियाँ थीं, काली मिरची की लताएँ थीं, तुती की भाड़ियों पर रेशम के कीड़े पाले जाते, उनके कोश बनते-बढ़ते। उन दिनों इस प्रदेश में रेशम का कितना ही व्यापार था। चेऊल के बुने पीताम्बर दूर-दूर तक जाते थे।

“बुनकरों के घरों के सामने ताने-बाने सँवारे जाते, घर-घर में हाथ-करधों पर खट-खट चला करती। कितना बड़ा व्यापार था!

“बन्दरगाहों पर फराशीस, डिगमार, बलंदेज, रूम, शाम और कितने-कितने ही देशों के बड़े-बड़े जलपोतों की भीड़ भरी रहती। उनके देश में रेशम होता ही नहीं। कैसे-कैसे देश! कहते हैं उन देशों की रानियाँ चौल देश के रेशम की चौली पहने बिना पंगतों में परोसने के लिये सोने की

तूपदानी को हाथ तक नहीं लगातीं, कहतीं कि 'पहले चेहुल का रेशम लाओ, मैं अपने हाथों कंचुकी नापूँगी, काटूँगी और अपने ही हाथ से सिऊँगी। दर्जी पर भरोसा नहीं। ऐसे बनी रेशम की कंचुकी पहनूँगी, दर्पण में देखूँगी, तब घी परोसने पंगत में जाऊँगी।' ऐसी यहाँ के रेशम की ख्याति थी! पर आज वह सब कीरत गयी। अब इस कोंकण में तुती के बगीचे भी कहाँ रहे हैं? जैसे-तैसे दस-बीस करधे चल रहे हैं, वस। काली मिरची की क्या कहें? घर-घर के आँगनों में काली मिरची के ढेर के ढेर सूखते रहते थे। उन काली मिरचियों के ढेरों पर आते-जाते हाथ फेरे जाते। काली मिरची की फसल भी कितनी नाजुक! उसे बहुत ही सँभालना पड़ता। सभी दानों पर एक-सी धाम पड़नी चाहिए, कम या अधिक होना ठीक नहीं। तब कहाँ काजल सी काली-काली काली मिरच तैयार होती है। कोंकण में काली मिरच का व्यापार भी प्रचुर था। कितने ही गाँवों से और बस्तियों से काली मिरच चेउल में इकट्ठी होती। बड़े-बड़े गोदामों के सामने इन काली मिरच की बोरियों की पंक्तियाँ लगतीं। वह सब अब गया। एक तो भयंकर तूफान आया। सारा कोंकण उस तूफान की मार से सफाचट हो गया। गंजे सिर पर दो चार बचे-खुचे बालों जैसे इधर-उधर कुछ आम के और हरं के वृक्ष खड़े थे। वाकी नारियल के और सुपारी के सारे वृक्ष धरती पर लोट गये। उसी के साथ ये फिरंगी आये।"

खेमनाक और लखम शेठ की बातें एकाएक रुक गयीं। टोह लेने वाले ने बताया कि कुछ समय पहले समुद्र में पालों का सफेद सा पट्टा दिख रहा था। उन जलपोतों के लक्षण कुछ ठीक नहीं लगते। कुछ न कुछ झंझट है। उन जलपोतों ने अपने-अपने निशान उतार लिये हैं। अब उन्हें उलटाकर छढ़ा रहे हैं। उनमें पानी भर रहा है कि क्या, कुछ समझ में नहीं आ रहा है।

खेमनाक का कितना सारा जीवन समुद्र पर ही बीता था। कितनी ही आफतें और भयंकर प्रसंग उसके शरीर पर अपने चित्त छोड़ गये थे। इसी कारण उसका मन उदार हो गया था। दूर का जलपोत आपदा में पड़ा है, उसकी सहायता के लिये जाना ही चाहिए। कम से

को तो बचाना सम्भव होगा ही। समुद्र में डूबे कितने ही खलासियों के उदास उजड़े घर उस क्षणभर में उसकी आँखों के सामने से गुजरने लगे और क्षणभर में उसमें उत्साह का संचार हुआ। वह चिल्लाने लगा—

“चलो मेरे शेरो, हाथ और जोर से चलने दो। एड, डांडें कैसे चला रहे हो, जैसे अपनी घरवाली के मुखड़े पर हाथ फेर रहे हो। चलो लगाओ जोर। शाब्दवाश भले। भले रे भले।”

वैसे सभी खलासी जी-जान से डांडें चला रहे थे। स्वयं मायनाक अपनी सारी शक्ति लगा रहा था। सामने के आड़े पटरे पर पैर अड़ाकर दाँतों से ओठ दबाते हुए हुंकार भरता वह डांड चला रहा था। उसकी गर्दन की एक-एक नस टटकी थी, सारे शरीर से पसीने की धारा वह रही थी।

इसी हो-हल्ले को सुनकर लखम शेठ की घरवाली ने अपने ओढ़ने में से मुँह निकालकर पूछा—

“क्यों जी, क्या हो गया ?”

लखम शेठ ने, क्या हुआ था, उसे बताया। उस पर वह बड़बड़ाने लगी, “छीः, इन जलमुँहों की। अब दाभोल पहुँचने को देर होगी।”

लखम शेठ ने अवसर देखकर, पलटकर उत्तर दिया—

“तुम वारात में चलने जैसे नखरे करो, प्रातः निकलना हो तो दिन ढलवा दो, और मारग में कुछ हुआ तो उसे गालियाँ दो।”

अब तक वह जलपोत स्पष्ट दिखने लगा था। उस पर खड़े खलासी हाथ उठा-उठाकर चिल्ला रहे थे। एक-दो खलासी जलपोत में भरा पानी उलीचते से दिख रहे थे। यह सब देखकर मायनाक बोला—

“सब मिलकर डोलचियों से पानी निकालते। पर ये तो चिल्ला रहे हैं, खलासी हैं कि कौन हैं ?”

खेमनाक ने पतवार पर दबाव देकर नौका को धुमाया और उसे सामने के जलपोत के समीप किया। अब उस जलपोत पर खड़े खलासी की बातें सुनना सम्भव हो गया था। उसका माँझी कह रहा था—

“नौका जलदी पास लाओ। भीतर धुटनों तक पानी भर गया है। हम प्रातः वहूँत देर तक टिक नहीं सकता। तुम्हारी नौका में कितना

लदान है ? ”

“दस खण्डी । ”

“नौका की शक्ति कितनी ? ”

“बारह खण्डी । दो खण्डी भार और भेल सकेगा । ”

“हमारे जलपोत में चार खण्डी खोवरा है । लाओ, नौका को पास लाओ । ”

इन वातों को सुनकर मायनाक ने शीघ्रता से पाल उतारे । खलासियों ने बाँसों की टेक दे-देकर दोनों जलपोत सटा दिये ।

“धीरे-धीरे । वस, वस । ” की आवाज आ रही थी । इस नौका के खलासी राह देख रहे थे सूखे खोवरों से भरी बोरियों की । पर जो हुआ वह सब एकाएक और भयंकर ! इस नौका के लोग क्या हो रहा है, यह पूरा समझ भी नहीं पाये थे कि तब तक उस जलपोत की तली में छिपकर बैठे हथियारवन्द अरव डाकू और सिद्धी तेगें चलाते, उछलते इस नौका पर कूद पड़े । बूढ़ा खेमनाक, ‘अरे-अरे’ ही करता रहा । वह अपनी कमर का हँसिया उतार रहा था । मायनाक ने त्वेष से फरसा उठाया । बाकी खलासी अपने-अपने शस्त्र ढूँढ़ रहे थे । लखम शेठ घबराकर बेहाल था । उसकी शेठानी की घिरधी बैंध गयी थी ।

देखते-देखते नौका का सारा तल रक्त से भर गया । उन पत्थर-हृदय समुद्री डाकुओं ने स्त्रियों पर शस्त्र चलाते हुए भी कुछ विचार नहीं किया । दोनों ही स्त्रियों के आर्तनाद समुद्र की खारी हवाओं में खो गये ।

इस आकस्मिक आक्रमण का प्रतिकार नहीं हुआ, ऐसा नहीं । मायनाक के फरसे का आधात एक डाकू के मुँह पर पड़ा । उसका मुँह लटक गया । दाँत और दाढ़ें दिखने लगीं । उसकी दाढ़ी पर से रक्त की धारा वह निकली । यह देखकर उसके साथी ने अपनी तेग मायनाक के पेट में गड़ा दी । दोनों हाथों से मायनाक उस बार को रोकने लगा । तब तक तीसरे ने उसे पीछे से उठाकर समुद्र में फेंक दिया ।

मायनाक को बाहर फेंककर बाकी मृतकों को समुद्र में फेंकने की चिन्ता उन डाकुओं ने नहीं की । सभी डाकू शवों के हाथ-पैर टोलने लगे । किसी के बाजू में बैंधा चाँदी का कड़ा, किसी के कान में सूखे रोने

की बालियाँ, जो भी कुछ मिला उसे वे निकाल रहे थे ।

लखम शेठ की गठरी में अलंकारों से भरा पिटारा मिलते ही सारे डाकू प्रसन्नता से नाच उठे । इसके बाद उन डाकुओं ने साईमलंग नौका में भरा धान का लदान दीड़ते-भागते अपनी नौका में चढ़ाया, अपनी नौका के पाल फिर से चढ़ाये । साईमलंग का रस्सा इस नौका के खूटे से बँधा था, उसे काट दिया और बाँसों के डांडों से साईमलंग नौका को दूर छेल दिया । अब तक तीसरे पहर की समुद्री हवाएँ वहने लगी थीं । उन हवाओं से समुद्री डाकुओं की नौका के पाल फूल गये और देखते-देखते चार पालों वाली वह नौका हवा से बातें करती भागने लगी ।

पीछे बची उछलती लहरों पर टूटी पतंग-सी भटकती साईमलंग नौका । खेमनाक की अनाथ नौका ने अब भटकते, टकराते कहीं समुद्र के किसी तट पर लगना था । यह कोंकण के लिये आश्चर्य की बात नहीं थी । तुफानों में तहस-नहस होकर किनारे पर लगने वाली नौकाओं की तुलना में समुद्री डाकुओं के आक्रमणों से भटकती नौकाएँ ही अधिक होती थीं । जैसे किसी लावारिस पशु का शव गिर्दों ने साफ किया हो, उसी प्रकार वे नौकाएँ भयंकर दिखती थीं ।

ऐसे कितने ही गलवत, महागिरि नौकाएँ, बतेले टूट-फूटकर समुद्र के तट पर विखरे पड़े थे । इन अनाथ नौकाओं के शवों पर प्रतिदिन दोनों समय समुद्र की लहरें बालू डालकर उन्हें दफना देती थीं । उन अनाथ नौकाओं को कोई भी भला आदमी हाथ नहीं लगाता था ।

सभी समझते थे जो आज इनके साथ हुआ है, कभी हममें से किसी के भी साथ हो सकता है । कोई पिस चुका है, कोई पिस रहा है, सो कोई अभी सूप में ही पड़ा है । सारा जीवन वे-भरोसे का है ।

आज कुलवन्तों की बेटी-बहुएँ सारा साज-शृंगार कर कौतुक से सायं-काल ग्राम-देवताओं के दर्शन करने जाती हैं । पर उन सुकुमार निष्पाप नारियों के जीवन पर आपदाएँ कब और कैसे टूट पड़ेंगी, इसका कोई विश्वास नहीं, भरोसा नहीं । आज कोई सुन्दरी घर में है तो कल किसी समुद्री डाकू की नौका में है । समुद्री डाकू इन सम्मानित घरों की लक्षिमयों का शरण कर देगे, कोई कह नहीं सकता था ।

ऐसा खोया और लुटा कोंकण कभी सम्पन्न था। वैसे तटवर्ती प्रदेश छोड़कर सारा कोंकण ऊपर। वर्ष भर पसीना बहाओ, तब कहीं दो-चार मास भर का अनाज उतरता। सारी भूमि अनुपजाऊ।

नागली, सवाँ, कोदो, कुटकी जैसा अनाज इसमें से उतरता। वह भी पर्वतों के ढलानों पर। इन पहाड़ी जंगलों में कहीं-कहीं दस-बीस झोपड़ों की वस्ती यहाँ-वहाँ वसी दिखतीं। दुबले-पतले सोते वरसात में भयंकर रूप धारण करते समुद्र की ओर वहते। उनमें हाथी तक उतरते हुए डरते। उन सोतों के मंवरों में फँसते ही वे भी वह जाते। पर वरसात बीतते ही ये सोते ऐसे सूखते कि किसी-किसी में तो घूंटभर पानी भी मिलना दुर्लभ होता।

ऐसी वीरानी में भी जीवन को जगाया था, फुलाया था, तो वह इस समुद्र-तट के बन्दरगाहों ने। बीते दो-ढाई हजार वर्षों में नाना देशों के जल-पोत मूल्यवान वस्तुओं के ढेर के ढेर इन बन्दरगाहों पर उतारते रहे। ठीक अरब, ईरान, ग्रीस जैसे देशों से छः पालों की नौकाएँ यहाँ माल लाती थीं। इस कोंकण के व्यापारियों की संसार में साख थी। प्राण भी दे देंगे, पर दिया वचन तोड़ेंगे नहीं, ऐसी इन व्यापारियों की कीर्ति सभी देशों में थी। नाना प्रकार की आने-जाने वाली सामग्रियों से इन बन्दरगाहों के गोदाम भरे रहते थे। कपास, गुड़, हल्दी, काली मिरच, तिल, हाथी-दाँत, चन्दन और चमड़ा जैसी वस्तुएँ बाहर के देशों में जाती थीं और ताँवा, रँगा, जस्ता, सीसा, अरबी घोड़े जैसा माल इन बन्दरगाहों पर उतरता था और इन उत्तरते-चढ़ते मालों के व्यापारिक आवागमन के कारण कितने ही लोगों के जीवन चल रहे थे। हजारों हम्माल, अनेक गोदाम वाले, कितने ही लेखावही लिखने वाले मुनीम, बहुत से दलाल, बड़े-बड़े कुठीले बनाने वाले कुम्हार, मसक सीने वाले चमार, चटाई बुनने वाले बसोड़ और भी कितने! इस सारे माल को ढोकर धाटों के उस पार नगरों तक पहुँचाने वाले लमाण, इन लमाणों को बैल बेचने वाले हेड़ये, बैलों के नाल बनाने वाले लुहार, नाल ठोकने वाले नालदार, ऐसे कितने ही धन्वों वाले लोगों से सारा कोंकण भरा था और उस जीते, वहते जीवन की मलाई-सी कोमलता, उसकी स्तिरधता इस पर्वतीय प्रदेश पर

दमकती थी ।

इस सारे माल को लादकर पर्वतों और घाटों में से हजार-हजार बैलों के यूथ घाटों के मार्गों से चढ़कर ऊपर नगरों तक जाते । ये सभी सदा चलते मार्ग बड़े-बड़े समृद्ध नगरों तक जाते थे । तेर, मालखेड़ा, प्रतिष्ठान, करहाट, देवगिरि, नन्दुरवार, करवीर, जुन्नर, बदामी, ये सभी नगर अत्यन्त वैभवसम्पन्न थे । सारे व्यापारी कोंकण में से गुजरते । स्थान-स्थान पर इनके पड़ाव पड़ते । इनके लिये कितने ही गाँवों के पास वट और पीपल की राइयाँ होतीं । कितने ही अन्नछत्र होते । कितने ही प्याऊ होते ।

इस प्रकार यह सारा कोंकण भरा-पूरा था । छोटे-छोटे राज्य थे । इन राज्यों का विस्तार बहुत छोटा होता था । एक-दो दिन में कोई भी प्रवासी इन राज्यों की परिक्रमा कर सकता था, इतने छोटे । पर इन राज्यों में भी युद्धों की नहीं, दान देने की स्पर्धा और ईर्ष्या थी । कितने ही प्रस्तरों और चट्टानों को काटकर खनिकोंने सुन्दर चित्र-गुफाएँ बनायीं । इन सारी प्रस्तर-कलाओं के रत्नहार का श्रेष्ठ रत्न था धारापुरी का त्रिमूर्ति का शिल्प ! ऐसा शिल्प अब क्या होगा ! यह सारा कलाओं का काम होता था सामन्तों और मण्डलेश्वरों के दानों से और कुछ द्रव्य मिलता था नगरशोठों के महासंघरों से ।

इस व्यापार के बहाने कितने ही अरब खलासी यहाँ के बन्दरगाहों में आकर बसे थे । कितने ही मूर थे । कितने ही सिद्धी थे । कितने ही इस-राइली भी थे । ये सभी यहाँ रहे और यहाँ के होकर रहे । यहाँ की प्रजा में हिल-मिल गये, एकरूप हो गये । कभी कहीं थोड़ी सी गड़बड़ होती, पर वह भी गाल पर काले तिल के समान । और उसके बाद कोंकण की उस पट्टी के बन्दरगाहों का समृद्ध जीवन फिर से सदावहार बहने लगता ।

इस कोंकण में प्रसिद्ध राजवंश भी कितने थे ! कदम्ब, यादव, चालुक्य, शिलाहार, मौर्य, दलपति, शिंके, और भी अनेक थे । और इन राजकुलों के भी अपने-अपने विरुद्ध थे : पश्चिम-समुद्राधिपति ! कोंकण-चक्रवर्ती ! महामण्डलेश्वर ! राज्य होता था छोटा सा, किन्तु राजा का विरुद्ध होता था — महामण्डलेश्वर !! फिर भी ये सभी राजवंश आनन्द से और सुख से अपना अपना राजपाट चला रहे थे ।

इन राज्यों में उत्तरास से होलिकोत्सव होता। नारलीपूनम को समुद्र की पूजा होती। बड़े ही उत्साह से लोग समुद्र को नारियल चढ़ाते। नौकाओं की प्रतियोगिताएँ होतीं। इन प्रतियोगिताओं में यहाँ के लोगों के साथ परदेशी भी सम्मिलित होते और प्रतियोगिताओं में मिलने वाले पुरस्कारों का गर्व से प्रदर्शन करते। कोंकण के घाट पारकर, ऊपर मैदानों में देवगिरि के यादवों का सुवर्णध्वज कलंकित होकर धूल में मिल गया था और उसके स्थान पर चाँदतारा फड़कने लगा था। फिर भी कोंकण स्वतन्त्र ही था। कोंकण के बन्दरगाहों में कोंकण के राज्यों के परवाने ही चलते थे। जल-दुर्गों पर पश्चिम की छवाओं के साथ फड़कते ध्वज भी इन कोंकण के राज्यों के सामन्तों के और कोंकण-चक्रवर्तियों के ही होते थे।

एक दिन परदास्य के काले मेघ कोंकण के क्षितिज पर मँडराने लगे। यह आपदा भी समुद्र से नहीं आयी थी, वह आयी थी घाटमाथे के मैदानों से ही। इन आपदाओं को निमन्त्रण दिया था इन बन्दरगाहों में आकर वसे अरबों ने और मूर लोगों ने ही। पराजित देवगिरि के तुर्कों के दरवार में कोंकण के छोटे-छोटे राज्यों की शिकायत की थी इन परकीय अरबों ने।

दिल्ली से दक्षिण तक के मैदानों को पैरों तले राँदती तुर्कों की सेना ऐसे निमन्त्रण की बाट देख रही थी। तुर्काधिपति अलाउद्दीन खिलजी ने मलिक काफूर को कोंकण की दिशा से आगे बढ़ने का संकेत किया। उसी क्षण उसकी विजयी अश्वसेना कोंकण के मार्ग पर चल पड़ी। कोंकण के उत्तर से दक्षिण तक बन्दरगाहों पर गर्व से फड़कते अपरान्त देश के राजकुलों के निशान इस अश्वसेना ने उखाड़कर समुद्र में डुबो दिये और उसी के साथ कोंकण पर तुर्कों की सत्ता प्रारम्भ हुई।

पर यह सत्ता प्रारम्भ मात्र हुई। मलिक काफूर उत्तर की ओर लौटा तो फिर से कोंकण के राजकुल उठकर खड़े हो गये। उन्होंने यावनी सत्ता उखाड़कर फेंक दी। कोंकण प्रदेश प्रकृति से दुर्गम, यहाँ के जंगल इतने घने कि बनपशु भी उनमें घुसते हुए डरते थे। घाटों के मार्ग भी इतने टेढ़े-मेढ़े और घुमावदार तथा उलझे-उलझे कि उनकी तुलना धुंधराले अलकों से भी नहीं की जा सकती। कोंकण के पूरब की ओर खड़ी चट्टानों का दर्यन इतना उग्र और भयंकर होता कि भिशाच भी एक बार भयभीत हो जाये। वृक्षों

के और लताओं के जंगल भी इतने घने कि उनके तल तक सूरज की किरणें भी मानो डरते-डरते ही उतरती थीं। यहाँ की वढ़ती धास के सूचीमुख भी शत्रुओं को सर्पों के दंश से चुभते थे। इन जंगलों की हवाओं में भी इन परदेशियों को अजगरों के इवासोच्छ्वास की गन्ध आती थी।

ऐसे इस भयावह प्रदेश में तुकों के पैर प्रथम प्रयत्न में टिक ही नहीं पाये। पर उन तुकों ने कोंकण की सुख और समृद्धि पर जो प्रथम आघात किया, उसके चिह्न और धाव वहते ही रहे। मलिक काफूर के पीछे-पीछे ही वहमनी सलतनत का सेनापति मलिक उत्तुजार कोंकण की ओर मुड़ा। उसने विशालगढ़ के घने जंगल पर आक्रमण किया। वहाँ शिंकों और मोरों की सेना ने उसे ऐसे ठोका कि उसके बाद दस-बीस वर्षों तक कोंकण की ओर आँख उठाकर देखने का वहमनी सलतनत की सेनाओं ने कभी साहस ही नहीं किया।

दाभोल सा स्वाभाविक सुन्दर बन्दरगाह कोंकण में दूसरा नहीं है। ठीक तट तक गहरा पानी। दो समुद्री चट्टानों के बीच में गहरी खाड़ी। उसमें से तट तक जलपोत सहज ही आते-जाते थे। यह खाड़ी भी पर्याप्त चौड़ी। खुले समुद्र में तूफान होने पर भी दाभोल बन्दरगाह के जलपोत और बड़ी नौकाओं का काफिला सुरक्षित रहता। खुले समुद्र में तूफान से पाल कट-फट जाते, तो इस बन्दरगाह के जलपोतों पर घूमते मुर्गों के पर भी नहीं हिलते थे।

इस खाड़ी के मुहाने पर अंजनवेल का ऊँचा दुर्ग खाड़ी को समुद्री तूफानों से सदा ही संरक्षण देता। दक्षिण से वहती तूफानी हवाओं को अपनी छाती पर झेलकर वह दुर्ग उन हवाओं को निराश लौटा देता। इसी कारण बन्दरगाह के उत्तरी भाग पर, किसी आङ्कड़े के बिना भी तूफान का प्रभाव नहीं होता था।

ऐसी सुरक्षित स्थिति होने के कारण ही इस बन्दरगाह पर देश-देश के जलपोतों का आना-जाना सदा ही होता रहता। खाड़ी से तट तक के गहरे पानी का मार्ग जलपोतों के आने-जाने से सदा ही भरा रहता। उस एक-मात्र मार्ग से तट तक पहुँचते जलपोतों, गलबतों और बड़ी नौकाओं के माँझियों में प्रतिदिन ही तंडे-वसेड़े होते। कभी-कभी हाथापाई तक की



नौवत आती, झटके के साथ तेगें निकलतीं, क्षणभर में समुद्र के पानी पर रुधिर की धारा एँवहने लगतीं और कितने ही खलासियों के स्पृण्ड-मुण्ड पानी में डूबते-उत्तराते दिखते।

यह दाभोल भी एक बड़ा-सा गाँव था। पुराण-प्रसिद्ध दालम्य ऋषि ने यहाँ तपस्या की थी, इसीलिये इसका नाम दालम्यपुरी रुढ़ हुआ। इसी दालम्य शब्द का बाद में दाभोल बना। यहाँ से कुछ ही दूर महेन्द्र पर्वत पर भगवान् परशुराम का स्थान है।

महारथी कर्ण ने परशुराम से अस्त्रविद्या सीखने के लिये इसी पर्वत पर आकर निवास किया था। ऐसा है यह दाभोल का परिसर, जहाँ पुराण और इतिहास के पदचिह्न आज भी अंकित हैं।

इस बन्दरगाह पर बड़े-बड़े गोदाम हैं। इस देश के व्यापारियों के साथ अरब और मोपले जैसे विदेशियों के गोदाम भी हैं। ये व्यापारी कितने ही वर्षों से यहाँ आकर बसे। इन विदेशियों के जलपोत कोंकण के किनारों पर दूर-दूर तक माल लादकर ले जाते। इस प्रकार अनेकानेक परदेशी व्यापारियों के आने-जाने के कारण बन्दरगाह भरा रहता था। पर बन्दरगाह पर शासन चलता नागोजी कोली का ही। सारे परवाने उसी के नाम से चलते। नागोजी ने अत्यन्त उदारता से इन विदेशी व्यापारियों को इस बन्दरगाह पर व्यापार के केन्द्र खोलने की अनुमति दी।

पर इन विदेशी व्यापारियों ने अपनी परम्परा के अनुसार ही नागोजी के उस उदार व्यवहार का कभी हृदय से सम्मान नहीं किया। धर्मबुद्धि से भीख देने आगे बढ़ी जानकी का हाथ पकड़कर रावण ने उसका अपहरण किया था, यही सब इन विदेशी व्यापारियों ने भी किया। मलावारी मोपलों ने अपने देश से गाजी आजमखान को बुलाया। वह आया, युद्ध की तैयारी के साथ। उसके जलपोत सैनिकों से भरे थे।

पर नागोजी कोली की दृष्टि भी तीखी थी। अंजनवेल की बुर्जी से दूर-दूर तक के समुद्र पर उसकी दृष्टि रहती। संकेत मिलते ही उसके लड़ाकू जलपोत खाड़ी के बाहर खुले समुद्र में निकल पड़े। धमासान जूझ दुई। उन लड़ाकुओं ने आजमखान को काटकर समुद्र में फेंक दिया। उस गाजी के सारे जलपोत समुद्र में डुबो दिये। यह जूझ जगड़ की खाड़ी से

दाभोल की खाड़ी तक चली थी ।

दाभोल के उस छोटे से युद्ध में आजमखान कट-खप गया । पर तभी से मोपलों ने दाभोल में पैर जमा ही लिये । मोपलों ने आजमखान की दो कवरें बनायीं । जयगढ़ के नीचे नवसावला में मोपलों ने आजमखान का मस्तक दफनाकर वहाँ उसकी मजार खड़ी की और उसका कबन्ध दाभोल में दफनाया । इन यवनों की यही विशेषता थी । बन आयी तो तेग चलाकर अमीर पद पर बैठते, जूझ में पराजित होने पर जंगल भागते और हाथों में कटोरा लेकर फकीर बन जाते । मरने पर पीर पद अपने आप मिलता । इसी परम्परा के अनुसार दाभोल की जूझ में गाजी आजमखान का मुर्दा गिरा, और वह दाभोल में पीर बन गया । वह मनौती पूरी करता है, ऐसी उसकी मान्यता गढ़ ली गयी । मुसलमानों के साथ बुद्ध हिन्दू भी उसको मानने लगे ।

इसी प्रकार दाभोल में मुसलमानों की बस्ती बढ़ने लगी । उनके पीछे उनके फकीर आये, उनके मुर्शद आये और विशाल मस्जिदें बनीं । धीरे-धीरे दाभोल के मूल निवासियों का शासन नष्ट होता गया और दाभोल की बस्तियों में जहाँ देखो वहाँ नारियलों के और सुपारियों के वृक्षों में से मस्जिदों के मीनार मस्तक उठाने लगे । ऐसा कहते हैं कि उन दिनों दाभोल में ही साढ़े तीन सौ मस्जिदें थीं और इन मस्जिदों को बनवाने के लिये भी इन मोपलों को अनेक कारण मिलते गये ।

आदिलशाह की एक लाडली शहजादी थी । उसका नाम था आयेशा । उसका रोग विचित्र था । आयु से बड़ी हो रही थी, पर स्त्रीमुलभ मासिक धर्म उसे होता नहीं था । किसी ने बताया, मक्का जाकर आओ, सब ठीक होगा । आयेशा शहजादी मक्का जाने के लिये निकली । साथ में बड़ी सेना थी । उस सेना को साथ लेकर आदिलशाह की शहजादी दाभोल बन्दरगाह पर आयी और उस आपदा से दाभोल की बचीखुची स्वतन्त्रता भी नष्ट हो गयी । उस दिन से दाभोल बन्दरगाह पर आदिलशाही सत्ता दृढ़मूल हो गयी ।

आयेशा दाभोल बन्दरगाह पर आयी और उसे आगे मक्का को जाना ही नहीं पड़ा । दाभोल पहुँचते ही वह रजस्वला हो गयी । कितना बड़ा

अनुभव था यह ? इसी निमित्त से दाभोल में एक बुलन्द मस्जिद बनायी गयी । और इस रूप में पुराणकालीन पवित्र और स्वतन्त्र दाभोल बन्दरगाह पर परदास्य की मुहर पक्की हो गयी ।

दाभोल बन्दरगाह की मूल देवता—विचारी चण्डिकाई—दाभोल के समीप की एक पहाड़ी में अकेली बैठे-बैठे दाल्म्यपुरी की वह दुर्दशा टुकुर-टुकुर देख रही थी ।

कोंकण के ऊज्जतुल्य प्रस्तर-पृष्ठ पर सिंही के रूप में कालफोड़ उठा । मुरुण्ड का जलदुर्ग जंजीरा, एक अजेय दुर्ग था । उसकी अजेयता देखकर नामी सेनापति भी दाँतों तले अंगुली दबाकर पीछे हटते । मुरुण्ड की प्रचण्ड खाड़ी के मुहाने पर हनुमन्त के समान वीरासन लगाकर वह जलदुर्ग बैठा था । इसी कारण उस खाड़ी की ओर टेढ़ी दृष्टि से देखने का साहस कोई करता नहीं था । सागर के गहरे पानी में खड़ा जंजीरा तट की मार की पहुँच से भी दूर था । ज्वार-भाटे के समय पानी तट से कितने ही दूर तक उतरे, इस जलदुर्ग के समीप गहरे पानी की लहरें इसकी बुर्जियों से खेलती ही रहतीं । ऐसे इस उत्तम स्थान को अपने अधीन करने के लिये यवनों की सत्तनतों ने अनेक बार इस जलदुर्ग पर आक्रमण किये । लड़ाकू जलपोतों से इस पर आग की मार की । “या अली मदद” की कक्षण गर्जनाओं के साथ तुकोंने कितनी ही बार चारों ओर से घेरकर इस जलदुर्ग पर आक्रमण किये, पर इतनी सेनाएँ भी इसके ध्वज के गौरव को किंचित् भी झुका नहीं पायीं । इस जलदुर्ग की बुर्जियाँ गढ़े हुए पत्थरों की नहीं थीं । उसकी तटबन्दी लकड़ी की ही बनी थी । फिर भी वह दुर्ग अजेय था । शत्रुओं को जलदुर्ग से दूर रखने के लिये उसे प्रस्तरों की तटबन्दी की आवश्यकता भी नहीं थी । रामकोली का ऊज्जतुल्य निश्चय ही पर्याप्त था । “सारी कोंकणपट्टी अरबों और तुकों की गर्जनाओं से और विजयोन्माद की आवाजों से निनादित होती है तो होती रहे, वे उधर भूमि पर चाहे जो कुछ करें, पर दरिया पर सत्ता रामकोली की ही है और रहेगी । मुरुण्ड की खाड़ी से गुजरते समय सभी को परवाने आदि के लिये रामकोली का ही अभयवचन लेना होगा । वह लिये विना पश्चिम समुद्र के पानी में छाँड़े डुवाना सम्भव नहीं !” इसी प्रतिज्ञा के साथ रामकोली जलदुर्ग पर

ताल ठोककर खड़ा था ।

खिलजियों की सल्तनत डूबी, वहमनी सल्तनत के चाँदतारे भी धूमिल हो गये । यवन-सत्ता की तीसरी पीढ़ी उठी, निजाम की । इन तीनों ही सल्तनतों ने इस जलदुर्ग के बज्रतुल्य निश्चय पर सिर पटक-पटककर अन्त में हार मानी थी ।

पन्द्रहवीं शती के अन्त में इस जलदुर्ग पर अन्तिम आक्रमण किया था मलिक मुहम्मद ने । पर उसे भी लज्जास्पद पराजय लेकर ही लौटना पड़ा था । सारी सागरी सत्ताओं को आह्वान देता हुआ वह जलदुर्ग अजेय ही रहा था ।

चौदह सौ नव्वे में निजामशाही की राजधानी में इस उत्तुंग जलदुर्ग को जीतने के लिये एक षड्यन्त्र की योजना तैयार की गयी ।

आने वाले संकटों से तनकर लोहा लेते हुए और भंभावातों के आघात अपनी चौड़ी छाती पर झेलते हुए एक दिन रामकोली ने आँखें मूँद लीं । जलदुर्ग के अधिकार-सूत्र रामकोली के पुत्र ऐतवारराव के पास आये । ऐतवारराव भी साहसी था ।

उसकी तलवार भी तीखी थी । पर जलदुर्ग का यह स्वामी कुछ असावधान रहता था । जलदुर्ग जैसे ठिकाने के स्वामी को सदैव जागरूक और सन्नद्ध होना चाहिए । दृष्टि सदा ही पैनी और जाग्रत होनी चाहिए । आँखों में थोड़ी भी तन्द्रा आना ठीक नहीं होता । पर यह सारी चतुरता ऐतवारराव को रुच नहीं रही थी । परिणाम ? और क्या होता ? एक दिन जलदुर्ग पराजित हो गया !!! एक सान्ध्य वेला में सागर शान्त था, ज्वार-भाटे जैसी उसमें उथल-पुथल नहीं थी । लहरों के हल्के-हल्के यपेड़े जलदुर्ग के परकोटे पर टूटकर लौट रहे थे । ऐतवारराव की दृष्टि दूर उत्तर की ओर सागर को निहार रही थी । उसे उस ओर से दस-बीस जलपोत एक पंक्ति में खाड़ी की ओर मुड़ते दिखे । ये सभी जलपोत चार-चार पालों के थे । ऐतवार का संकेत मिलते ही उसके सैनिक कोलियों ने जलते वाण धनुषों पर चढ़ाये । उसके चतुर खलासी फत्तेमारी पोतों पर कूद पड़े और सामने से आते जलपोतों पर आक्रमण करने के लिये तेजी से ढांडें चलाने लगे । तभी शरणागतता का सफेद निशान उठाते हुए एक

‘चोटी नौका उस पंक्ति से अलग होकर शीघ्रता से जलदुर्ग की ओर आने लगी। ऐतवारराव ने अपने लड़ाकुओं को रुकने का संकेत किया। वह नौका जलदुर्ग के बड़े द्वार के समीप घाट पर आ लगी। भुक-भुककर चन्दगी करता हुआ एक काला भुजंग, धुँधराले बालों बाला सिंही व्यापारी नौका से नीचे उतरा। पैरों तक लम्बे अपने अंगे को सँभालते हुए वह ऐतवार के सामने आया और फिर से सिर नवाकर बोला—

“किलेदार साहब का शुक्रगुजार हूँ। कुछ नजराना लाया हूँ, पहले वह कुबूल हो, तब आगे अर्जी पेश करना चाहता हूँ।”

ऐतवारराव के संकेत के साथ ही दो-चार हृद्दी खलासी रेशमी रूमालों से ढके थाल लेकर आगे बढ़े। उन्होंने बड़े ही ‘अन्दाज और अदब’ से थालियों के ऊपर रखे रूमाल हटाये, थाल में हीरों से मढ़ी एक पौँछी थी और शराब की एक सुन्दर सुराही थी। वह सुराही खास इस्तम्बूल की बनावट की थी। ऐतवारराव चकित आँखों से उन दोनों ही वस्तुओं को देख रहा था। सुराही उसे निमन्त्रण सा दे रही थी। सिंही की तीखी दृष्टि ने ऐतवारराव की आँखों में लोभ देखा और उसने उसी में ‘फतह’ का संकेत पा लिया। उसने ऐतवारराव को कुर्निसात करते हुए कहा—

“हम कीमती माल लेकर सूरत से गोवा की ओर सफर पर निकले हैं। खाड़ी में दरिया एकदम शान्त सा लग रहा है, पर खुले दरिया में आसार कुछ ठीक नहीं है। हवा खराब है। आज की रातभर के लिये हमारा माल आप अपने इस दुर्ग में रखने दें तो बड़ा एहसान होगा। हम अपनी ओर से इस उपकार की भरपाई दिल खोलकर करेंगे।”

नजराने की थाल में रखी सुराही को उठाते हुए ऐतवार ने कहा—

“पर तुम्हारे खलासी? उनको दुर्ग में ठिकाना नहीं मिलेगा। उन्हें दरिया में ही रहना पड़ेगा।”

“बिलकुल ठीक फरसाया आपने। पर हमारे कीमती माल के पिटारे दुर्ग में आने दें... तो...”

तभी ऐतवारराव ने संकेत किया। जलदुर्ग का ऊँचा दरवाजा कर-कर करता खुल गया। धीरे-धीरे सिंही व्यापारी के जलपोत एक पंक्ति में बन्दर-गाह में आकर रुके। सिंही के हशमों ने ‘कीमती माल’ के पिटारे हल्के हाथों

से जलदुर्ग के दालानों में लाकर लगा दिये। ये पिटारे भी करीब सौ-सवा सौ थे। इन पिटारों के पीछे-पीछे ही शराब के लकड़ी के पीपे भी दुर्ग में पहुँचाये गये। उन पीपों के मुँह खुल गये। उत्तम स्वादिष्ट मदिरा पी-पीकर दुर्ग के सभी कोली नशे में धूत्त हो गये। आधी रात तक शराब के दौर चलते रहे और……इसी दौर में एकाएक एक तीखी सीटी वजी। उसी क्षण दालानों में लगाये गये पिटारों के ढक्कन खोल-खोलकर भीतर छिपे हुए सौ-सवा सौ करोल सिंही जवान बाहर निकले। 'दीन-दीन' की गर्जना करते हुए वे तेगें चलाने लगे और नशे में डूबे कोली सैनिकों को उन्होंने काटना प्रारम्भ कर दिया। दस-बीस सिंही सैनिकों ने जलदुर्ग का महाद्वार खोल दिया। खाड़ी के बन्दरगाह में सिंही के अन्य सैनिक राह देख ही रहे थे। सभी 'फतह' के जोश में जलदुर्ग में घुस गये। अब तक ऐतवारराव का नशा काफूर हो चुका था। पर अब बहुत देर हो चुकी थी। सिंही व्यापारी ने एक ही धात में ऐतवार को साफ किया। उसका सिर भाले पर लटकाकर महाद्वार पर टाँग दिया। इस प्रकार एक छोटी-सी, पर दक्ष और चतुर योजना से सिंही पेरीमखान ने मुरुण्ड के वेलाग जलदुर्ग के ठिकाने को हस्तगत कर लिया और इसी के साथ कोंकणपट्टी में स्वतन्त्रता का जलता-जागता अन्तिम दीपस्तम्भ भी बुझ गया।

इन विदेशियों को कोंकण के वैभव और समृद्धि से, उसकी सुख-शान्ति से कोई लगाव नहीं था। इनका कबीला और इनके मन का लगाव इस देश से दूर था। ये परदेसी तेग की धार के नीचे कोंकण के इन लंगोटी पहने ग्रामीण श्रमिकों और किसानों पर अत्याचार करते थे। जो चाहते लूट लेते। खाते-पीते। अपने वैभव का उन्मत्त और वीभत्स प्रदर्शन करते। देवालयों की मूर्तियों को तोड़-फोड़कर फेंक देते।

चिपलूण की विन्ध्यवासिनी की, नजर लग जाये ऐसी, गण्डकी नदी के श्यामल और चिकने प्रस्तर की मूर्ति थी। उसकी सुन्दरता ऐसी कि कुछ कहा नहीं जाये। उस मूर्ति को देखते ही लगता कि किसी भी क्षण जगन्माता स्मित कर आशीर्वाद देंगी। वह मूर्ति थी ही नहीं, मूर्तिकार का देखा हुआ वह एक अप्रतिम स्वप्न था।

उस मूर्ति की सुरक्षा के लिये वारह वीर सेवक सदा ही शस्त्रसज्ज
रहा करते थे ।

ऐसा वह सुखद स्वप्न भला इन विदेशी अधर्मियों को कैसे सहन हो
सकता था ?

विद्यवासिनी के उस पवित्र क्षेत्र पर तीन अमुरों की सेनाएँ बढ़-चढ़
आयीं । एक के बाद एक ऐसे तीन आदिलशाही सरदार, आकुसखान, भाई
खान और शेख बहादुर । तीनों ने विद्यवासिनी के देवालय को भ्रष्ट करना
चाहा । वारहों वीर सेवकों ने प्राणों की बाजी लगाकर इस आक्रमण का
प्रतिरोध किया । इस युद्ध में तीनों ही मुस्लिम सरदारों की कवरें वहीं
खोदी गयीं, किन्तु वीर सेवकों का सामर्थ्य पूरा नहीं पड़ा । वे भी मारे
गये और उनकी सती-साध्वी पत्नियों ने अपने वीर पतियों के साथ सहगमन
किया । विजय के उन्माद में उन विदेशी यवनोंने विद्यवासिनी के देवालय
पर पर्वत की कगार गिराकर उसे माटी में मिला दिया । प्रस्तरों के उस
द्वेर में विद्यवासिनी का वह अप्रतिम शिल्प टुकड़े-टुकड़े हो गया ।

बोर्डीपंचतन के पास दिवेआगर में रूपनारायण और सुन्दरनारायण
नाम की दो विष्णु-मूर्तियाँ थीं । उन्हीं के समीप गहरे हरे रंग के प्रस्तर
की हनुमान जी की मूर्ति भी थी । ये तीनों ही शिल्प सुन्दर थे । नारायण
का विशाल मन्दिर था । उसके सामने सरोवर था । उसमें सदा ही कमल
खिले रहते थे । उसके आस-पास सुपारी और नारियल का उपवन था ।
किन्तु उन विघ्वंसकों को वह सुन्दरता खटकती रही और एक दिन उनकी
खन्तियाँ और हथोड़े उस शिल्प पर भी आ गिरे । उन सुलक्षणी मूर्तियों
को टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया । हनुमान की मूर्ति तो माटी-माटी कर दी
गयी । इस देश का जो भी कोमल, पवित्र और सात्त्विक स्वरूप था, उस
सभी का इन विघ्वंसकों ने नाश कर दिया और उसके स्थान पर प्रतिष्ठित
किया उच्छृंखल और वीभत्स भोगवाद ! ! केवल भोगवाद !!

विदेशी सत्ताएँ कोंकण में स्थिर हुईं और उनके बहकावे से दरिया में
यात्रा की सुरक्षितता समाप्त हो गयी । इसके पूर्व घर का चाकर नाव
देकर भेजा जाता था, और उन नावों में आमों और हर्र के वृक्षों की राइयों
से ढकी-ढकी खाड़ियों के किनारे-किनारे से भले घरों की बहु-वेटियों का

सम्मुखी और मायके आना-जाना होता था। वह जल-प्रवास कितना सुखकर होता था! स्थल-मार्ग से कोंकण प्रदेश का प्रवास विकट था। कितनी तो पहाड़ियाँ चढ़ना-उतरना। दलदल जंगलों को पार करो तो सारा शरीर पसीने से लथपथ हो जाता, तब कहीं समुद्रालंय मायके के गाँव और उपवन दिखते। पर जलप्रवास अत्यन्त सुविधा का होता। खाड़ियाँ भीतर इतनी शान्त रहतीं कि पेट का पानी भी नहीं हिलता। सायंकाल नौका में बैठो, पाल को बाँधकर उसे हवाएँ भर लेने दो, विश्वास का माँझी नौका की पतवार संभालने बैठा दो और नौका में बहू-वेटियों को निश्चन्त सोने दो। गन्तव्य पर पहुँचकर वे माँझी की आवाज से ही उठतीं। नाव बन्दर-गाह के घाट पर लगते समय ही जो धक्का लगता, वस वही। उन दिनों दरिया का जलप्रवास इतना भरोसे का तथा निर्भय था। किन्तु इन विदेशी सत्ताओं के आते ही खाड़ियों की घर-आँगन सी निर्भयता और निरापदता ही नष्ट हो गयी। सारा विश्वास और भरोसा समाप्त हो गया। विधि-विधान की शान्ति-व्यवस्था का गला घोटा गया। सागरी डाकुओं की हल्की और फुर्तीली नौकाएँ खुले सागर के समान ही शान्त खाड़ियों में भी निर्द्वन्द्व घूमने लगीं।

कोई भी पाषाणहृदय व्यक्ति अपने ही जैसे पांच-सात साथी लेता। वे कुशल मल्लाह होते। उनकी दृष्टि वाज-सी तीखी होती। आँधी-तूफानों से जूझने का उनमें साहस होता। ये लोग कोई वढ़िया लड़ाकू जलपोत लूट लेते। अनेक बन्दरगाहों से भागकर आये अपराधी वृत्ति के कच्छी, मूर, मेमाणी जैसी जाति के खलासियों को लेकर उनके बल पर जलपोत दरिया में उतारते। कमर की तीखी तेग उन उद्दण्ड खलासियों पर ताने रहते और इन साधनों से दरिया में आते-जाते जलपोतों को लूटते रहते। इन समुद्री डाकुओं की वस्ती रात-दिन दरिया में ही रहती। पीने के लिये मीठा पानी और अन्न लेने भर के लिये रात में किसी छोटे बन्दरगाह पर इनकी नौकाएँ लगतीं।

वहाँ भी तेगों के आतंक से ही ये डाकू अपने आवश्यक सामान को पूरा करते और फिर से पाल उठाकर रातों-रात दरिया में दूर निकल जाते। आती-जाती नौकाएँ और जलपोत ही इनकी खेती थी। वे नौकाएँ

भी अनायास इनके सामने पहुंच ही जातीं। ये अचानक घात लगाते, मार-काट करते, शीघ्रता ही तो गहनों के लिये स्त्रियों के नाक-कान भी काट डालते। इसी में कोई रूपसी युवती मिली तो उसे भी उठाकर साथ ले जाते। फिर वह रूपसी होती, साथ में शराब के प्याले होते। सागर में चाँदनी रातें वे इसी प्रकार अध्याशी में विताते। समुद्री डाकू बहुत सा लूटते, तब उसमें से बन्दरगाहों के अमलदार को भी उसका थोड़ा सा भाग दे देते। कभी इन अमलदारों से ही संकेत पाकर धनवन्तों और कुलवन्तों के जलपोत लूटते। उनकी बहु-वेटियों का शील-सम्मान लूटते। पुरुषों को काटकर दरिया की मछलियों को खिलाते। जलपोत और नौकाएँ डुबो देते। इसी प्रकार कभी-कभी नरसंहार की रातें भी मनाते। ये डाकू दरिया के मानो पंछी!! चार-चार पालों की इनकी नौकाएँ, हवाओं की दिशा में उड़ते-उड़ते ले जाते। सारा सागर उनका जाना-पहचाना सा। समुद्र के सारे मौसम और सारे तेवर उनके जाने-पहचाने से। हवाएँ चाहे जिस दिशा की हों, उन्हें चीर इनकी नौकाएँ चाहे जिस मोहरे पर धूमतीं, और ये दरिया में ऊधम मचाते रहते।

ये समुद्री डाकू ही मानो कुछ कम थे कि इन्हीं के साथ निजामशाही और आदिलशाही सल्तनतों के परवाने लेकर फिरंगी बलन्देज, टोपकर, डिंगमार जैसे अनेकानेक परदेशी प्रवासियों ने भी कोंकण में अपने पैर जमा लिये। जब भी और जहाँ भी उन्हें ठौर मिलता, वहाँ वे अपनी सत्ता प्रस्थापित करते और नित नये-नये स्थानों की ओर कूच करते। इनमें से कभी कोई फिरंगी उन्मत्त होता, तब तो कोंकण की निरीह जनता पर आपदाओं का आकाश ही टूट पड़ता। ऐसे फिरंगी समुद्री डाकू भी अपने जैसे सात-आठ साथी साथ रखते। ये सभी कड़वे और जातिवन्त दर्याविर्दी होते। इनके पास भी नौकाएँ होतीं। इनका पाला वैरियों से भी न पड़े! क्योंकि इनके पास तेगों, तलवारों जैसे शस्त्रों के साथ ही कड़ाविनी होती, पिस्तौल होती, कभी तोपें भी होतीं। जिस भी जलपोत पर या नौका पर फिरंगी डाकुओं की घात पड़ती वे तो जल उठते ही, साथ ही दरिया भी जलता-सा लगता।

समुद्र में इन समुद्री डाकुओं के आक्रमण और भूमि पर अदिलशाही

हङ्गमों की और अमलदारों की मारपीट, लूट। इस प्रकार सारा कोंकण इन दो पाटों के बीच पिसता त्रस्त हो गया था।

खाड़ी के तट पर वसे गाँव का नाम था दिवे। यह नाम रुढ़ होने का भी एक कारण था। दरिया का पानी ज्वार की भरती के समय गाँव के समीप से ही भीतर घुसता। उस पानी से सारा गाँव धिर जाता। प्रातः काल पानी उतरने पर गाँव की पूरब की सीमा खुल जाती। इस प्रकार सागर की लहरों से रात-दिन जूँझते इस गाँव के ग्रामदेव थे उत्तरेश्वर। उत्तरेश्वर का मन्दिर छोटा सा ही था, पर स्थान अलौकिक था। ऐसा कहा जाता था कि उत्तरेश्वर के मन्दिर में रात को दीपक जलाने की आवश्यकता नहीं होती थी। साँझ उत्तरते ही मन्दिर का गर्भगृह अनायास ही किसी प्रकाश से दमक उठता। प्रातःकाल पूरब में सूरज उगते ही वह प्रकाश भी शान्त हो जाता। इस प्रकार अपने आप ही दीपक के जलने और बुझने के कारण इस गाँव का नाम ही 'दिवे' पड़ गया। गाँव को प्रतिदिन ही घेरते दरिया के पानी से दिवे गाँव को उत्तरेश्वर ने ही बचाया है, यह दिवे गाँव के लोगों की श्रद्धा थी।

बाद में निजामशाही आयी। एक दिन समुद्री डाकू एकाएक घात लगाकर दिवे गाँव पर चढ़ आये। रात के अंधेरे का लाभ लेकर वे गाँव लूटने आये थे। उनकी नौकाएँ गाँव के समीप समुद्र-तट पर आते ही बन्दर-गाह की सारी वस्ती में 'डाकू आये, डाकू आये' की आवाजें उठीं। उसी के साथ जलती मशालें लिये डाकू गाँव में घुस आये। दिवे गाँव की आधी से अधिक वस्ती मछुओं की थी। सारे पुरुष रात में ही मछली के लिये समुद्र में दूर निकल गये थे। वस्ती में स्त्रियाँ और बालक या बृद्ध ही थे। दिवे गाँव की उस निचली वस्ती की बहू-वेटियाँ सम्मान बचाने के लिये केतकी के घने जंगलों में जा छिपीं। अनेक बहू-वेटियों ने अपना सम्मान बचाने के लिये उसी वन में गले में फाँसी लगा ली। उस भयंकर घटना के बाद कई-कई दिनों तक केतकी के वनों में उन अभागी स्त्रियों के बाल और चूँड़ियाँ पेड़ों में अटकी मिलती रहीं। उनके शरीर की हड्डियाँ वहाँ की रेत में पेरों तक नहीं। उसी वन में पशु भी चरते। कभी कोई पशु किसी झाड़ी

में घुसता तो उसके सींगों में किसी अभागिन की पसलियाँ अटकी चली आतीं। उस दिन समुद्री डाकुओं ने दिवे गाँव की सभी वस्तियों को लूटकर साफ किया और अन्त में उनका मोर्चा उत्तरेश्वर के मन्दिर की ओर मुड़ा। उनका लक्ष्य था उत्तरेश्वर के पुजारी का घर। कारण? कारण था उसके घर का एक ताम्रपत्र। डाकुओं को उस ताम्रपत्र से कुछ भी लेना-देना नहीं था। उनके लिये उस ताम्रपत्र पर खुदा लेख ही महत्वपूर्ण था।

लगभग दस अंगुल लम्बे और पाँच अंगुल चौड़े उस ताम्रपत्र पर अक्षर खुदे थे। ताम्रपत्र शक संवत् ६८२ का था। उसमें संवत् १८२ के शार्दूल नाम संवत्सर, मार्गशीर्ष पूर्णिमा शुक्रवार को घटी घटना का उल्लेख था।

उस दिन बृद्ध भट्ट वासुदेव अपनी वाटिका को और घरवार को बेचकर काशी-यात्रा के लिये निकले थे। काशी से वे लौटने वाले नहीं थे। संन्यास लेकर काशीवास करने वाले थे, काशी में ही देहत्याग करने वाले थे। उन्हें कोई सन्तान नहीं थी। पीछे किसी का पाश भी नहीं था। उनके पास दो प्राचीन ताम्रपत्र थे। वे उन ताम्रपत्रों को बाजार में बेच सकते थे। पर पितृधन आगे की पीढ़ी के हाथों सौंपने का उन्होंने निर्णय लिया। गाँव के सभी ब्राह्मणों को बुलाया। उनमें मुख्य थे—पाँगदेव षडंगविद्, तिक्कभट्ट षडंगविद्, जीवनभट्ट, नागरुद्रभट्ट, मधुभट्ट षडंगविद्, मधुभट्ट देवल। ये सभी ब्राह्मण विद्वान और वेदपाठी थे।

भट्ट वासुदेव ने इन सभी ब्राह्मणों को मधुपर्क अपित करके उनका स्वागत किया। इसके पश्चात् भट्ट वासुदेव हाथ जोड़कर खड़े हुए और सभी ब्राह्मणों को नमस्कार कर निवेदन किया :

“ब्रह्मवृन्द! मेरी बृद्धावस्था आ पहुँची है, जीवन की घटी अब भरने आ गयी है। अब यहाँ से आगे अपने गाँव रहना नहीं है। जाह्नवी-तट पर श्रीक्षेत्र काशी को जाने का विचार है, वहीं चतुर्थाश्रम स्वीकार करने का वज्र-निश्चय है, इसमें अणुमात्र अन्तर नहीं आना है।

“तस्मात् मेरे पास जो भी पितृधन है उसका सत्कार्य में उपयोग करने की इच्छा है। यहाँ विद्वानों की सभा बैठी है। इसमें षडंगविद् ऋष्यप धेसास, तथा सीत्रभट्ट षडंगविद्, ये दो प्रमुख हैं। इनमें से महावलभद्र के पास

दो ताम्रपत्र रखता हूँ। पश्चिम समुद्राधिपति चन्द्रसेन ने स्थितिपुरी और श्रीस्थानक, इन दो स्थानों के देवतों के नाम से दान दिये हैं, उनका इन ताम्रपत्रों में उल्लेख है। विद्वज्जन हो! इस विद्वत्सभा का योगक्षेम यथावत् चले, इस हेतु मेरे पास जो कुछ काष्ठ-तृण-तरु-पाषाण था, उस सभी को बेचकर उसका सुवर्ण एक शत सत्ताईस मुद्रा आया है। उस सारे सुवर्ण को सुवर्ण-शलाका में गूँथकर श्री दामोदर भट्ट के पास रखा है। इसके लिये आप सभी ब्रह्मवृन्द और महादेव साक्षी हैं।”

भट्ट वासुदेव ने वह सारा सुवर्ण विद्वत्सभा के योगक्षेमार्थ रखा था, किन्तु विद्वत्सभा ने निश्चित किया कि उस सुवर्ण का उपयोग नहीं किया जायेगा तथा उसे उसी रूप में सुरक्षित रखा जायेगा। उस निर्णय के अनुसार भट्ट दामोदर ने उस सुवर्ण को भूमि में गाढ़कर रखा था। उस गाढ़े गये सुवर्ण का विवरण उन ताम्रपत्रों में अंकित था। वह दामोदर भट्ट दिवे गाँव के पुजारी का पूर्वज था।

इस पुजारी का नाम था विश्वेश्वर भट्ट। उसका एक पुत्र था, छोटा सा, उसका नाम था बाबल भट्ट। समुद्री डाकू उन ताम्रपत्रों के लिये गाँव में उतरे थे किसी के संकेत पर ही। डाकुओं का मोर्चा विश्वेश्वर के घर की ओर मुड़ा। विश्वेश्वर भट्ट ने समुद्री डाकुओं की ललकार सुनी और वह सजग हुआ। घर में बाबल और उसकी बहिन आवई दोनों ही छोटे बच्चे थे। डाकुओं के चिल्लाने-पुकारने की आवाजें मन्दिर की ओर आती हुई विश्वेश्वर भट्ट ने सुनीं। शीघ्रता से उसने दोनों बच्चों को अनाज भरने के एक बड़े से टूटे कुठीले में रख दिया। विश्वेश्वर को कुछ आशंका हो गयी थी, तभी घर का नौकर दौड़ता हुआ घर में घुसा। उसके कहने पर तो विश्वेश्वर भट्ट को पूरा ही विश्वास हो गया। नौकर घबरा गया था, उसने जैसे-तैसे बताया—

“अजी, वह तांबे का टुकड़ा...। भागो-भागो, उनका मोर्चा इसी ओर आ रहा है, मैंने स्वयं सुना, जलमुँहे कह रहे थे, नहर के पास ! ! ”

यह सुनकर विश्वेश्वर भट्ट ने देवघर की ओर जाते हुए कहा—“छोटे रे ! ये दोनों ही बच्चे वहाँ कुठीले में हैं।”

छोटे ने कहा, “मैं देख लूँगा, आप पहले वह तांबे का टुकड़ा

संभालिए ।"

तब तक डाकू अपनी तेगें पेलते विश्वेश्वर भट्ट के घर में धुस गये । उनको देखते ही विश्वेश्वर भट्ट देवघर के द्वार पर मार्ग रोककर खड़ा हो गया । विश्वेश्वर भट्ट का वह अनोखा आवेश देखकर एक डाकू ने अपनी तेग विश्वेश्वर भट्ट के पेट में धोंप दी । मर्मान्तक पीड़ा से चीखते हुए विश्वेश्वर भट्ट पीछे देवघर में जा गिरा । उसका मृत शरीर खीचकर एक ओर हटा कर डाकू घर में धुस गये । मशालों के उजाले में उन्होंने सारा देवघर छान डाला । लकड़ी के देवघर में पीछे टिकाकर रखा हुआ ताम्रपत्र उन्हें मिला । उसी के निकट दूसरा भी एक ताम्रपत्र रखा हुआ था । इस पर बीचों-बीच श्रीचक्र था, नीचे दाहिने कोने में वेलबूटेदार रेखाओं के बीचोंबीच एक कमल था । देवघर में पीतल की मूर्तियाँ और एक-दो नर्मदा के शिवलिंग के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था । डाकुओं ने पूरा घर खोद डाला । दो-चार हाथ भूमि खोदकर भी उन्हें गड़ा हुआ धन मिला नहीं । तब उन्हें विश्वेश्वर भट्ट को पूछने का स्मरण आया । पर अब तक बहुत देर हो चुकी थी । उसके प्राण शरीर छोड़कर कब के जा चुके थे ।

डाकुओं का सरदार तिलमिलाते हुए आँगन में खड़ा था । उसने तीखी सीटी बजायी । उसे सुनते ही सभी डाकू उसके आसपास खड़े हो गये । उसने लौट चलने का संकेत किया । सारे ही डाकू जितनी चपलता से आये थे, उतनी ही चपलता से दौड़ते-भागते लौट गये ।

बड़े से कुठीले में बच्चों को पेट से सटाये दुबककर बैठा छोटू डाकुओं की सारी करतूत देख रहा था । डर के मारे उसे पसीना छूट रहा था, सिर से चुहता पसीना आँखों में समा रहा था, पर मारे डर के हाथ उठाकर पसीना पोंछने तक की उसे सुध नहीं थी ।

विश्वेश्वर भट्ट देवघर के सामने काट दिया गया । उस समय आवई और बाबल की माँ कुछ दिन के लिये श्रीवर्धन गयी थी । वह लौटकर आयी तो उस घर का नौकर, छोटे, रोते-चिल्लाते दोनों बच्चों को समझाता, दुलारता रोता बैठा था । वह स्त्री बड़ी ही साहसी थी । वह इस आपदा पर रोती नहीं बैठी । उसने नौकर छोटे को लेकर सारा घर सँवार लिया । उसी वर्ष उसने आवई का विवाह और बाबल का जनेऊ, ये दोनों ही कारज

कर लिये ।

कमर में चार अँगुल की लंगोटी पहने बाबल भट्ट उत्तरेश्वर की पूजा करने लगा । जिस सोने के लिये समुद्री डाकुओं का धावा पड़ा था, वह सोना किसा को मिला ही नहीं । उसका ठौर-ठिकाना बाबल की माँ को भी ज्ञात नहीं था । वह सोना जहाँ रखा था, वह स्थान बाप से बेटे को, इस परम्परा से बताया जाता रहा । पर वह रहस्य बाबल को बताने तक का समय विश्वेश्वर भट्ट को मिल नहीं पाया । एकाएक ही वह मारा गया था और वह रहस्य अब ऐसा ही अनजाना रहने वाला था ।

पर आदिलशाही सरदार, जंजीर के सिद्धी और समुद्री डाकू, किसी को भी बाबल भट्ट पर भरोसा नहीं हो रहा था । सभी सोच रहे थे, वह सारा सोना घर में ही कहीं तो गढ़कर रखा हुआ है और वह स्थान विश्वेश्वर भट्ट के घर के लोगों को ज्ञात होना ही चाहिए, और होगा भी ।

दीवान की कचहरी से इसी जानकारी को बताने के लिए बाबल को पकड़कर ले जाने के लिये दीवानी हशम बार-बार आते । एक बार बाबल और उसकी माँ को जंजीरा की चौकी पर पन्द्रह दिन रहना पड़ा था । आखिर एक दिन दिवे गाँव के सारे ही लोग जंजीरा के सिद्धी के पास गये । सभी ने उसको समझाया । उसकी खुशामद की । मिन्नतें कीं । तब कहीं जाकर बाबल और उसकी माँ को उस दुर्दशा से छुटकारा मिला । पर सिर पर लटकती वह तलबार दूर नहीं हुई थी । हारकर बाबल की माँ ने गाँव का घर ही छोड़ दिया और पहाड़ी पर एक ओर झोपड़ी बनाकर वह बाबल को लेकर अकेली रहने लगी । समय बीता और बाबल भट्ट का विवाह हुआ । उसकी वहू घर में बरतने आयी, वह भी इसी पहाड़ी पर बने घर में ही । बाबल की माँ को लकवा लगा, उसका देहान्त हुआ, वह भी इसी घर में । उसकी अर्थी उठी, वह भी इस घर से । धीरे-धीरे बाबल के आसरे से दो-चार मछुओं ने और गाँव के श्रमिकों ने भी दो-चार झोपड़े डाल लिये, और इस प्रकार उस घनी झाड़ी के आसरे से दुबकी एक नयी बस्ती बस गयी ।

बाबल भट्ट की बहिन आबई के पति की हैजे से अकालमृत्यु हो

गयी। आवई बाबल के आसरे से उसी के घर रहने लगी। आवई ससुराल में कुल चार-पाँच वर्ष ही रही थी, पर उस थोड़े से समय में उसने ससुराल का एक गुण सीख लिया था। उसके ससुर का बगीचा बहुत बड़ा था। आवई के ससुर और देवर मिलकर घर में छः-सात लोग थे। सभी परिश्रमी थे। सभी ने मिलकर बगीचा अच्छा सजाया था। उन्होंने अनेक प्रकार के पेड़ अपने बगीचे में लगाये थे। घर के पुरुष बगीचे में दिनभर लगे रहते थे। उसी प्रकार घर की बहू-बेटियों, यहाँ तक कि छोटे-छोटे बच्चों को भी बगीचे में काम करना पड़ता था। उस घर में बेकार बैठा कोई कभी दिखता नहीं था।

ऐसे घर के संस्कार लेकर आवई मायके आयी। मायके में भी आवई ने बाग के काम में सहचर लेना प्रारम्भ किया। बाबल भट्ट की पत्नी आलसी थी। रोटी सेकने के बाद घर में ही वह लेटी रहती। पर आवई धुँधले में खुरपी उठाकर बगीचे में जाती तो दोपहरी की धाम तपने तक वहाँ खट्टी रहती। पहाड़ी की खोह में से बहते झरने पर एक स्थान पर छोटा सा बाँध बनाकर बाबल भट्ट ने पानी अपने बगीचे की ओर मोड़ लिया था। वह झरना पहाड़ी की टूटी कगार के पास से जाता था। वहाँ चट्टान बिना तोड़े बाबल भट्ट ने सुपारी के पेड़ का पनाला सा बनाकर पानी का बहाव बगीचे की ओर कर लिया था। बाबल भट्ट की माँ ने उस भूमि में दस-बीस नारियल के पेड़ लगाये थे। उनके साथ आज अनेक पेड़ खड़े थे। पहले का छोटा सा बाग आज उत्तम बगीचा बन गया था।

पहाड़ी के पास की वह भूमि रेतीली ही थी। पर पानी और खाद के साथ ही बाबल भट्ट और उसकी बहिन के परिश्रम से उसी भूमि में लगे नारियल के पेड़ अब आकाश को छू रहे थे। एक-एक पेड़ में सौ-सवा सौ नारियल लदे थे। आवई को केवल नारियल और सुपारी के पेड़ों पर समाधान नहीं था। उसने बाबल भट्ट के पीछे पड़-पड़कर कहाँ-कहाँ से नाना प्रकार की कलमें और पेड़ मंगाये थे। गोवा के प्रदेश तक से लायी गयी आमों की कलमें आवई के बगीचे में पहाड़ी की गीली हवा से भर पूर बढ़ रही थीं। उस बगीचे में फूलों की क्यारियों की एक अलग ही पंक्ति थी। उसमें मोगरा, लटमोगरा, पारिजात, जाई-जुही, शेंवती, तगरी,

मालती और अन्य अनेक प्रकार के फूलों की बहार आती, उन फूलों से सारा बगीचा पट जाता था। जंगली पशुओं को रोकने के लिये बगीचे के मेड़ पर काँटेदार पेड़ लगाये थे। उसमें भी शिर्केकाई, सागरगोटा जैसे पेड़ ही लगाये थे। बावल भट्ट ने नींबू, ईडनींबू, पपनस, सक्करनींबू, तुती, अनार, कैथ, जामुन, अनन्नास जैसे फलों के पेड़ भी लगाये। उसी में इलायची और काली मिरच की बेलें भी फैली थीं। उत्तरेश्वर की पूजा करने के बाद अपने घर लौटते ही फावड़ा लेकर बावल भट्ट भी बगीचे की ओर मुड़ता था।

सुपारी के पेड़ पर चढ़ी काली मिरची की बेल पर फलों के हरे-भरे गुच्छे लदे थे। उन्हें उत्तारकर सुखाना था नहीं तो वे नींचे गिरकर धूल में मिल जाते। बावल भट्ट सिर पर कपड़ा बाँधकर ऊपर चढ़ा था, और आवई उसे फलों के गुच्छे नींचे से बता रही थी, तभी हरमल हाँफता-दौड़ता बगीचे में धुसा और बावल भट्ट के नाम से चिल्लाने लगा—

“अरे भट्ट ! ओ आवई ! तुम लोग कहाँ हो ?”

हुआ यह था कि एक दिन लतीफ याकूतखान के पास बैठा था। याकूतखान हुक्के की नली एक ओर कर बोला—

“आप फर्मति हैं कि हमने कोशिश नहीं की? सी बार की। लेकिन उस बुतफरोश का बालिद विना बताये ही मारा गया। हुं, अब जर्मी, तू न जाने किस-किसका क्या-क्या निगल गयी ?”

लतीफ ने साहस बटोरकर, गही को छूकर अपना हाथ चूम लिया और बड़े ही अन्दाज से कहा—

“खुदा सलामत सौ साल जिलाये सदरे आला को, आपका फर्मानि सर आँखों पर। अमा, अर्ज यह है कि क्या दोजख में जाने के पहले बन्दर ने कहीं कोई एकाध अत्फाज लिखकर न रखा होगा ?”

हुक्के का कश-खीचकर याकूतखान ने कहा, “विरादर, हमें तो ऐसे कोई आसार नजर नहीं आते, लेकिन अगर तुम्हें शक है तो आजमाकर देखो, जाओ, हमारा हुक्म है।”

इसी को हुक्म मानकर लतीफ नौका में बैठा। नौका को छूटे तीर सी बढ़ाकर वह दिघी की ओर लपका। वहाँ पहुँचते ही सईस द्वारा आगे

लाये गये घोड़े पर बैठकर लतीफ दीवे गाँव की ओर सरपट भागा । अब तक रावजी उसी की बाट देख रहा था । लतीफ के पास आते ही रावजी ने उसी के साथ अपना भी घोड़ा दौड़ाया । रावजी ने पूछा —

“क्यों, हो गया काम ?”

लतीफ ने हँसकर कहा, “हम मनहूस थोड़े ही हैं कि किसी काम के लिये गये और वहाँ से बिना काम किये मुँह लटकाकर लौट आयें ।”

लतीफ और रावजी अब तक दिवे गाँव के समीप पहुँच चुके थे और उन्हीं के धावे की बात बताने हरमलने चिल्ला रहा था ।

बाबल भट्ट ने सुपारी के पेड़ से ही आवई से कहा —

“आवई ! देख तो इसे यों चिल्लाने को क्या हो गया है । कहीं किसी को सांप ने तो नहीं काट खाया है ?”

आवई ने भी हरमल की आवाज सुनी थी । उसने भी पूछा —

“अरे हरमल ! तुझे हो क्या गया है ?”

आवई की आवाज सुनकर सुपारी के बगीचे की बाढ़ पर से भागता-चिल्लाता हरमल आवई के समीप पहुँचा, और बोला —

“भट्ट ! तू भाग जा । ऐसे इस पगडण्डी से, ऊपर के घने जंगल में छिप जा ।”

यह सुनकर आवई ने उसे टोककर कहा, “क्यों रे ? ऐसे यमराज के भैसे के सींग पर उठाये जैसा डर क्यों रहा है ?”

“अरी, आवई, यमराज का भैसा भी एक वारठीक । सिंही की ओर से इस भट्ट को पकड़ने के लिये हशम आ रहे हैं ।”

यह सुनते ही बाबल भट्ट सुपारी के पेड़ से सरसराता हुआ उतरा और उसने हरमल से पूछा —

“हरमल, तुम यह क्या सब सही बता रहे हो ?”

“तो क्या झूठ बता रहा हूँ ? अरे आठ-दस सवार पहाड़ी की चढ़ाई चढ़कर अब इधर ही आ रहे हैं । मैंने उनको देखा और बीच के मार्ग से तुम्हें बताने भागा आ रहा हूँ ।”

सिंही के हशमों के आने की बात सुनकर आवई ने गाली देना प्रारम्भ कर दिया, “यह फिर आया मरी का फेरा ! आओ जलमुँहो ! अब हमें ही

उठाकर खा जाओ तो तुम्हारा आत्मा शान्त होगा । क्या आफत है ! अरे हम जानते ही नहीं वह कौन सा और कैसा सोना था और कहाँ रखा है, नहीं तो अब तक फेंक दिया होता तुम्हारी कवर पर । तुम्हारी पीठ पर चिपका दी होतीं वे सब सोने का मुहरें !! इन शंतानों के डर से गाँव छोड़कर इस जंगल में रहने आये तो यहाँ भी ये जोंक पीछा नहीं छोड़ रहे हैं ।

बाबल भट्ट चिंतित सा क्षणभर खड़ा रहा । कुछ सोचकर वह कमर में बैंधे हँसिये को टटोलता घर की ओर बढ़ चला । वह जानता था कि सिंही की ओर से आयी पकड़ राजा की आज्ञा ही है । वरसता पानी और राजा, दोनों की मार की फरियाद करने से कुछ बनता नहीं । उसकी मार तो सहनी ही पड़ती है । आवर्द्ध हारकर बाबल भट्ट के पीछे-पीछे बड़-बड़ती चल रही थी ।

बाबल भट्ट पिछले दरवाजे से घर में घुसा ही था कि घर के आगे उसके नाम से हो रही पुकार उसे सुनाई पड़ी ।

“अरे ओ बाबल भट्ट ! अरे, कहाँ गया ?”

कुछ ही क्षणों में बाबल के घर का आँगन सिंही के हशमों से भर गया । उन्हें देखकर बाबल भट्ट घर के दरवाजे में खड़े-खड़े बोला—

“यह मैं यहाँ खड़ा हूँ । क्या चाहिए तुम्हें ? तलवार से अब मेरा यह सिर काटना है ? लो, काट डालो इसे भी एक बार ।”

बाबल भट्ट की बातों को अनुसुना कर लतीफ ने अपने हशमों को संकेत किया । उसे समझकर हशम आगे बढ़े । उन्होंने बाबल को बाँह से पकड़कर एक ओर किया और सभी घर के भीतर घुस गये । लतीफ के पीछे रावजी और हरभट्ट को देखकर बाबल को आश्चर्य हुआ ।

बाबल भट्ट ने क्रोध से लाल होते हुए पूछा, “हरजी भट्ट ! तुम भी ?”

दाँत विचकाकर हरभट्ट बोला—

“क्यों ? अब क्यों मिरची लग रही हैं ? एक सौ सत्ताईस सोने की मुहरें दबाकर बैठे हो, तब ? वह सारा सोना लीलते बड़ा मीठा लगा । अब उसे यों उगलते हुए मुँह क्यों विगाड़ रहे हो ? किसका था वह सारा

सोना ? ब्रह्मवृन्द का था न ? तेरा कौन था वह मरा, दादा या परदादा ? दामोदर भट्ट !! उसके पास वह सारा सोना रखने को दिया था कुछ थोड़े दिनों के लिये तो वह सब दबाकर बैठ गये और ऊपर से यह मुँहजोरी कर रहे हो ?”

हरभट्ट की ये सारी बातें सुनकर बाबल भट्ट ने अपना सिर ठोक लिया और उससे बोला—

“हरभट्ट, तुम जानते नहीं कि मुझे कुछ भी न बताये हुए ही मेरे पिता का मृत शरीर यहीं पड़ा था !”

“यहीं, यहीं तो बात है। घर में कहीं तो कोई कागज होगा तेरे बाप का लिखा। अरे, तेरा बगीचा यां ही इतना फल-फूल रहा है ? उन सोने की मुहरों में से अँजुरी भर सोने की मुहरें तुमने इस बगीचे में खर्च की ही होंगी !”

बीच में ही मुँह डालकर रावजी भी बोला—

“और नहीं तो क्या ? हमारे भी तो बगीचे हैं। पर हमारे नारियल पर एक यहाँ तो दूसरा वहाँ, ऐसे नारियल लगते हैं और इसके पेड़ों पर ये इतने बड़े-बड़े भारी बोझ लदे हैं !”

इनकी बातें बाहर चल रही थीं, तभी हशमों ने भीतर बर्तनों की उठा-पटक कर दी। उसकी आवाज बाहर तक आने लगी। उसी में आवई का रोना-चिल्लाना भी सुनाई दे रहा था। उसे सुनकर बाबल भट्ट पागल सा भीतर भागा। तब तक आवई की चीखें आँगन तक आने लगीं। उसे सुनकर हरभट्ट भी भीतर की ओर बढ़ा। उसने लतीफ से कहा—

“मियाँ, पोथियों के बस्ते खोलकर देखने होंगे, घर के लोगों से धींगा-मस्ती करने की आवश्यकता नहीं है !”

मियाँ लतीफ ने हरभट्ट को एक ओर कर कहा—

“देखो जी ! जरा जोर से खुजलाने पर खून तो निकलता ही है !”

हरभट्ट और मियाँ लतीफ दोनों ही भीतर गये। उन्होंने देखा कि बाबल भट्ट को एक हशम ने एक कोने में दबा रखा है और दूसरा आवई की साड़ी की खींचातानी कर रहा है और बाबल भट्ट की पत्नी दोनों छोटे बच्चों को पेट से संटाये डरी आँखों से, काँपती हुई यह सब देख रही है।

लतीफ मियाँ को देखकर आवई से खींचतान करता हशम थोड़ा डरा भी, पर आवई का हाथ बिना छोड़े बोला—

“देखिए, डायन ने हाथ में काट खाया।”

यह सुनकर आवई चिल्लाकर बोली—

“जलमूँहे, तो तू देवधर में क्यों घुस रहा था?”

हरभट्ट बोला, “मियाँ, देवधर में जंग खाये दो धातु के टुकड़ों को छोड़कर कुछ मिलने वाला नहीं है। ढूँढ़नी पड़ेगी यह अलमारी, जो पोथियों से भरी पड़ी है।”

लतीफ के उस ओर संकेत करते ही सारे हशम उस अलमारी की ओर लपके और कुछ क्षणों में ही सारी अलमारी भूमि पर खाली कर दी। उसमें ऊनी कपड़े में बँधे पीताम्बर थे, यज्ञ के लकड़ी के पात्र थे, सन्ध्या करने की आचमनी और पंचपात्री थी। उसमें कुछ पोथियाँ भी थीं। हरिवंश, भागवत, सिद्धान्तरत्नावलि, व्रतसार, अष्टांगयोग जैसी कितनी ही पोथियाँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी सँजोकर रखी गयी थीं। हर पोथी के ऊपर-नीचे ठीक-ठीक तराशी हुई लकड़ी की पट्टियाँ थीं। उन्हें बन्द लगे कपड़े से व्यवस्थित बाँधकर रखा था।

हरभट्ट स्वयं आगे बढ़कर कहने लगा—

“लो, यहीं तो है सब। इसी को ठीक-ठीक देखना होगा।”

एक कोने में दबा पड़ा बाबल भट्ट बोला—

“नहीं रे ! मेरे भाई, नहीं !! मैं बार-बार बता रहा हूँ, कहीं भी कुछ भी नहीं लिख रखा है।”

उसकी ओर एक आँख दबाकर हरभट्ट बोला—

“हाथ कंगन देखने को तेरी फूटी आरसी की क्या आवश्यकता है ? अभी सब कुछ जात हो जायेगा।”

लगभग पहर भर तक उन सभी ने पोथियों को उलट-पलट दिया। यज्ञ-मंजूषा की पोथी में यज्ञकुण्ड की रेखाकृतियाँ थीं, उन्हें देखकर लतीफ मियाँ प्रसन्न हो उठा और बोला—

“ऐ भट्ट, ये देख तो क्या लिखा है ?”

सारी पोथी देखकर नाक-भाँ सिकोड़कर हरभट्ट बोला—

“कुछ नहीं मियाँ, ये यज्ञकुण्ड कैसे बनते हैं, उसके चित्र हैं।”

“याने ?”

“कुण्ड में होम करना, माने आग जलाकर उसमें धी डालना । वया समझे ?”

इसे सुनकर लतीफ मुँह बनाकर बोला—

“तुम लोगों का भेजा सड़ गया है क्या ? आग वार-वार कर उसमें धी डालते हो । अरे उस धी में सरंगे क्यों नहीं तलते ?”

यह सुनकर धीमे स्वर में हरभट्ट बोला—

“अपना-अपना धर्म है । हाथ की पाँचों अंगुलियाँ कहीं एक जैसी होती हैं ? रहने भी दो, इसमें तो कुछ मिल नहीं रहा है ।”

हाथ की पोथी नीचे पटककर हरभट्ट बाबल भट्ट से बोला—

“अरे बाबल भट्ट ! कुछ होश में आओ । नहीं तो मुट्ठी भर चनों की खुराक खाते हुए खोड़े में बँधकर रहना पड़ेगा, जंजीर की चावड़ी में ।”

लाल होकर बाबल भट्ट चिल्लाया, “अरे बोरे में बँधकर समुद्र के पानी में डुबा भी दिया, तो भी तुम्हारे हाथ कुछ नहीं लगेगा । भले मानस ! अरे कुएँ में ही कुछ नहीं है तो डोलची में भरकर भी ऊपर क्या आयेगा ?”

निराश स्वर में हरभट्ट ने लतीफ से कहा—

“क्या समझे मियाँ ? उठाइए बाबल भट्ट को । हाथ-पैर खोड़े में जकड़े जायेंगे तभी मुँह खुलेगा । हो जाने दो वह भी ।”

रावजी भी खिसियाते हुए बोला—

“लोहा तपाकर दाग दो स्साले को, तुरन्त मुँह खुल जायेगा ।”

लतीफ के संकेत पर हशमों ने धकियाते हुए बाबल को घर के बाहर निकाला । उसके पीछे-पीछे आवई घर के दरवाजे में आकर खड़ी हो गयी और चिल्लाने लगी—

“अरे, जलमुँहो ! जलें तुम्हारे हाथ । उसे अकेले को ही ले जा रहे हो ? सारे घर को उठाकर ले चलो उस कैदखाने में, तभी तुम्हारे अड़े-खड़े पितर तर जायेंगे ।”

रावजी ने पलटकर आवई की ओर मुक्का तानकर कहा—

“स्त्री की जात, और मुँह कितना चला रही है । आवश्यकता ही

पड़ी तो तुझे भी ले जायेगे डायन, पीछे नहीं रहने देंगे ।"

जैसे गिर्द किसी मृतक को फाड़ खाते हैं, उसी प्रकार लतीफ के हशमों ने घर का सामान फैला रखा था। लौटते हुए भी बगीचे की बेलों और केले के पेड़ों को तलवारों से काटते-छाँटते और बाबल भट्ट को आगे धकेलते वे पहाड़ी के नीचे झाड़ियों में ओझल हो गये।

पीछे रह गयी थी आबई। वह दरवाजे पर सिर रखकर खड़ी थी। आँखों से आँसू वह रहे थे, आँचल सिर से ढल गया था, नीचे का ओठ दाँतों से काटते हुए वह वहीं काँपती खड़ी थी।

वैसे देखा जाये तो मद्याघाट, वरंधघाट, सिंगापुर के पास का तली का घाट इन सभी पठारों पर चढ़ने वाले मार्गों पर सिंही की सत्ता नहीं थी। इस पूरे भाग पर आदिलशाही सरदार राजे जावलीकर मोरे की सत्ता थी।

आते-जाते लमाणों के काफिलों को सरदार मोरे के मुख्यालय पर जकात भरनी पड़ती थी। सरदार मोरे के कारिन्दे भी गंगा में नहाकर जकात का लेखा-जोखा लिखने बैठते हों, ऐसा नहीं था। छीना-झपटी वे भी करते थे। पर कम से कम जकात के बदले लमाणों के काफिले के साथ सरदार मोरे के सवार घाट चढ़ते-उतरते तो थे !

सिंही की सत्ता नीचे वाणकोट, श्रीवर्धन, मुरुण्ड जैसे बन्दरगाहों पर थी। विदेशी जलपोत इन बन्दरगाहों पर माल उतारते, उतना ही इस माल से सिंही का सम्बन्ध आता। पर जिसकी लाठी उसकी भैंस, यही उस राज्य का न्याय था। जो तेग गर्दन पर लगाये, उसके सामने कमर में बैंधा सारा माल रख देना, यही एकमात्र मार्ग यहाँ बचा था। पोतों के माँझियों को बन्दरपट्टी के नाम पर नगद देना पड़ता था वह अलग। सिंही से परवाने लेने पड़ते सो और भी अलग।

बन्दरगाह के आदिलशाही मजदूर बन्दरगाह की साफ-सफाई के नाम पर बोरियों में हाथ डालकर मूठ-मूठ माल निकाल लेते, उसका लेखा-जोखा था ही नहीं। सारा माल बैलों पर लादकर बन्दरगाह के बाहर निकलता तब हर बोरी का कर देना ही पड़ता था। जहाँ सिंही की सीमा समाप्त होती वहाँ खुशहाली कर के नाम पर जकात भरनी पड़ती ही थी, उससे

भी छुटकारा नहीं था । बैलों का काफिला घाट चढ़ने लगता तब काफिले के मुखिया को जंजीरा में स्वयं जाकर सिद्धी से परवाना लेना पड़ता था । उस समय भी ले जाये जाने वाले माल में से सबसे उत्तम वस्तु सिद्धी को नजराने के रूप में देनी पड़ती थी ।

इस प्रकार सभी ओर से अनेकानेक आतंकों से व्यापारी लमाणों के काफिले ग्रस्त थे, दुःखी थे, पर फरियाद भी करें तो कहाँ और किसके पास ?



एक दिन परवाने का गोल मुड़ा कागज सिर की पगड़ी में खोंसते हुए लिंगनायक लमाण दो ओर के अँधेरे मार्ग से दरवाजे के पास आया । उसके लिये दरवाजा खोलते हुए पहरेदार उसे धमकाते हुए बोला—

“देखो नाईक ! अब आते विषत हमारी चीज नहीं लाये तो……”

बनावटी हँसी हँसते हुए वह लमाण व्यापारी ‘हाँ हाँ’ करने लगा । तब तक अरब पहरेदार ने तेग व्यापारी की गर्दन पर टिका दी और कहा—

“देखना, तेरा सिर काटकर दरिया में वहा दूंगा ।” लिंगनायक लमाण ‘हाँ हाँ’ कहकर दरवाजे की खिड़की में से बाहर निकला, और उसने उस पहरेदार के नाम से एक बड़ी गाली उसकी ओर फेंक दी ।

लिंगनायक लमाण शीघ्रता से जंजीरा की सीढ़ियाँ उतरते हुए बन्दर-गाह के घाट तक पहुँचा । ताजी मछली, लकड़ी के गठ्ठर, साग-भाजी की टोकरियाँ और नाना प्रकार के माल से लदी कितनी ही नावें, डोंगियाँ और तराफे घाट तक लगने के लिये दरिया में रुके पड़े थे । मखमली पर्दों से ढका और शाही चौकी से सजा एक शानदार जलपोत बन्दरगाह के घाट पर आकर लगा । उस पर खड़े कलि-काले हृषी खलासी आसपास मैंडराती नावों पर चिल्लाकर उन्हें दूर होने को कह रहे थे । तभी एका-एक किसी मछुए ने घबराकर अपनी नाव आगे बढ़ा दी । चिढ़कर एक हृषी खलासी ने रस्सी का फाँसा उसके गले में फेंक कर उसे अपनी ओर खींचा और उसकी वह छोटी सी नाव दरिया में डुबो दी ।

शाही जलपोत बन्दरगाह के घाट पर लगते ही हशमों ने ऊँचे स्वर से पुकार लगाना प्रारम्भ किया । उसे सुनकर तुरन्त सभी खलासी, माँझी, मल्लाह और दूसरे सभी पुरुष सिर नीचे झुकाकर और हाथ छाती पर

बाँधकर खड़े हो गये। एक विदेशी खलासी खोया-खोया-सा सिर ऊपर उठाकर देखने लगा, तभी उसकी पीठ पर हंटर की फटकार आ गिरी। वह बिलबिलाता नीचे गिरा और सीढ़ियों से गिरता-पड़ता दरिया के पानी में जा गिरा, वहाँ जैसे-तैसे तैरता हुआ वह एक नाव को पकड़कर खड़ा रहा।

गढ़ी का बड़ा द्वार करकराता हुआ खुला और हाथों में भाले लिये हवशी सैनिकों से धिरी एक पालकी जलपोत के समीप आकर रुकी। चार लौंडियों ने हाथ देकर पद्म से ढकी दो शहजादियों को उस पोत से नीचे उत्तारा, पालकी में बिठाया, तुरन्त ही भोइयों ने पालकी उठायी और वह पालकी गढ़ी में ओझल हो गयी।

समुद्र में ज्वार का समय था। बीच खाड़ी में खड़े ऊँचे किले के तटों पर सागर की लहरें आ-आकर टूट रही थीं। बन्दरगाह के घाट के समीप पानी ऊपर चढ़ रहा था। छोटी-छोटी डोंगियाँ और नौकाएँ ऊँचे-नीचे हिल-डुल रही थीं। शाही पालकी किले के दरवाजे के भीतर जाते ही दरवाजा करकराता हुआ बन्द हो गया और बन्दरगाह के घाट के आतंक की लहर भी बीत गयी, घाट पहले जैसा खुलकर बोलने-चिल्लाने लगा। माँझी झगड़ने लगे, खलासी आपस में गाली-गलौच करने लगे। छोटी-छोटी नावों में बैठे मछुए बड़ी-बड़ी नौकाओं के माँझियों की और जलपोतों के नायकों की, मार्ग देने के लिये मिन्तें करने लगे। घाट तक पहुँचने का मार्ग पाने के लिये इधर लिगनायक का जलपोत निकलने को था। लिगनायक पोत में जा बैठा, पर पोत चलने के लक्षण नहीं दिख रहे थे। जलपोत किसलिये रुका है यह लिगनायक समझ नहीं पा रहा था।

कुछ क्षणों के पश्चात् किले के बड़े द्वार की खिड़की खुली और भीतर से हशमों ने एक टूटे पैर वाले दुर्बल बन्दी को लाकर जलपोत पर लाद दिया। उस बन्दी के तन पर कपड़े थे कहने के बजाय नहीं थे, यही सही था। उसका टूटा पैर चीथड़े से ढका हुआ था। कमर में बँधी लैंगोटी छूटी जा रही थी। सिर पर बालों का जंगल उलझा था। मुँह पर दाढ़ी और मूछों के उलझे-उलझे जाल से छा गये थे। उसके पैर की हड्डी पर खोड़े के चिह्न दिख रहे थे। बन्दी जलपोत में आते ही लड़खड़ाया और कुछ

क्षणों बाद जैसे-तैसे सँभलकर बैठ गया। हशमों ने यात्रियों की शंकाओं को और कौतूहल को दूर करते हुए बताया—

“खाला साहिवा के आने की खुशी में रिहा कर दिया है बन्दर को। अच्छा ही हुआ, नहीं तो आठ-दस दिन में दोजख की राह चलने लगता। अच्छा, चलने दो।”

जलपोत के खलासियों ने बन्दरगाह के पत्थर के बड़े खूटे से बैधे रस्से को खोल दिया। आसपास के पोतों पर लगी के टेके दे-देकर अपना जल-पोत घाट से दूर निकाल लिया। जलदुर्ग के समीप से धूमकर निकलने तक खलासियों ने डाँडे चलाये, खुले समुद्र में आने पर पोत के पाल चढ़ा दिये गये और जलपोत पूरे वेग से भागने लगा।

जलपोत दिघी बन्दरगाह के घाट पर लगा। सभी यात्री नीचे उतर गये। अन्त में बचा था वही दुर्वेल लैंगड़ा बन्दी। खलासी उस पर चिल्लाने लगे—

“ए, मर गया क्या? चल उठ, उतर नीचे या यहीं रहने का विचार है?”

वर्ष-सवा वर्ष बाद उस बन्दी को खुली हवा और धाम मिल पायी थी। इससे उसे तन्द्रा-सी लगी थी। जलपोत से उतरते कितने ही यात्रियों का शोर हो रहा था, पर उसे उस कोलाहल का भान ही नहीं था। जल-पोत दिघी बन्दरगाह के घाट पर कब लगा, यह भी वह जान नहीं पाया। खलासियों के चिल्लाने के तीखे स्वर से वह डरकर जाग उठा था। वह जग गया था, पर जलपोत से उतरकर घाट तक पहुँचने की अपनी असमर्थता भी उसे अब अनुभव हुई। बुझी-बुझी आँखों से वह उस पर चिल्लाते खलासियों की ओर देख रहा था। कुछ देर पश्चात् दो खलासियों ने उसकी गठरी बनाकर उसे घाट पर लाकर उतार दिया और गाली बकते वे लौट गये। तभी लिंगनायक घाट पर उतरा। गैवीलाल लमाण लिंगनायक को बाट देख रहा था। उसे नीचे उतरते देखकर गैवीलाल आगे बढ़ा और उसने लिंगनायक से पूछा—

“क्यों जी, इतनी जलदी काम हो गया?” पसीना पोंछते हुए लिंग-नायक ने कहा—“हाँ-हाँ, भाई! हो गया। मरें वे कलमनवीस। उनकी

शान और अकड़ हुजूर से भी बढ़कर। उन सभी को खुश करते-करते सिर से पसीना टपकने लगा। चलो अब। चार दिन तक वैलों को ठिकाने पर बाँधकर चराना पड़ा।"

तभी गैबीलाल का ध्यान उस लँगड़े की ओर गया। दुःखी होकर उसने कहा—

"अरे वाप रे वाप ! इस विचारे का तो पैर टूट गया है।"

इस पर लिंगनायक ने कहा—

"किया होगा इसने कुछ, तभी तो..."

तिलमिलाकर, पर किचित् सावधानी से आसपास देखकर गैबीलाल ने कहा—"अरे, इस सलतनत में सतियों के ही वेहाल हो रहे हैं और छिनालों की चाँदी है। विचारा धाम में असहाय पड़ा है, कहाँ जायेगा ? क्या करेगा ?"

ऐसा कहते हुए गैबीलाल ने लँगड़े के पास जाकर उससे पूछा—

"वाबा ! कहाँ जाओगे ?"

थके-थके स्वर में उसने बताया—

"दिवे गाँव को।"

"अरे, हम श्रीवर्घन तक जा रहे हैं, हमारे वैल पर बैठ लोगे ?"

लँगड़ा सब सुनकर भी गैबीलाल की ओर चुपचाप ताकता रहा।

गैबीलाल ने लिंगनायक की ओर देखकर कहा—

"क्या करेगा यह विचारा ? लेना है इसे अपने साथ ?"

लिंगनायक रुष्ट होकर बोला—

"किसलिये ? फोकट की आफत।"

गैबीलाल ने कहा—

"ले लो, मैं पैदल चल लूँगा। इसका पैर टूटा है, चलेगा भी तो कैसे ? हो कोई भी, कुछ धरम ही तो होगा।"

न चाहते हुए भी लिंगनायक ने कहा—

"तुम्हारी इच्छा ही है तो ले चलो।"

दोनों ने मिलकर लँगड़े को उठाकर वैल पर बिठाया और दोनों ही वैलों को धाट से निकालकर अपनी राह चलने लगे।



कुछ दिनों बाद पहाड़ी पर बाबल भट्ट के घर के आगे, आँगन में, अंडी के तेल का दिया जल रहा था, उसके धूँधले प्रकाश में उकड़ू वैठकर दोनों हाथ धुटनों में बाँधकर गैबीलाल और लिंगनायक आँख फैलाकर चकित से बाबल भट्ट की कंदखाने की कथा और उसके पीछे आवई के साहस की गाथा सुन रहे थे ।

लतीफ मिर्यां बाबल भट्ट को जंजीरा के सिद्धी के किले की ओर ले गया, उसके बाद अकेले आवई ने ही अपनी सारी शक्ति लगाकर उस जंगल में भी, बगीचा हराभरा रखा । आमों के दिनों में रात-बेरात हाथ में मशाल लेकर आमों की कलमों की रखवाली की । भैंस के छोटे पाड़े के लिये लपके बाघ के लिये रात-रात जागी थी । एक दिन तो अचानक बाघ ने पाड़े को पकड़ ही लिया, तब उसने साहस कर बाघ से पाड़े को बचाया था । बाबल भट्ट की पत्नी दो छोटे बच्चों को छोड़कर अपने मायके रहने गयी, तब उन दोनों बच्चों की भी उसी ने देखभाल की थी । बाबल भट्ट को जंजीरे के सिद्धी के कारागार से छुड़वाने के लिये भी उसने भाग-दौड़ की थी । एक छोटे बच्चे को लेकर उसने उत्तरेश्वर की पूजा और उत्सव भी किये । जब-तब आये आँधी-तूफानों से टूटा सारा घर समीप ही वसी बस्ती के लोगों की सहायता से फिर से खड़ा किया था । आवई ने अपार कष्ट सहन कर बाबल भट्ट के पीछे उसका घर खड़ा और जीवन्त रखा था ।

यह सारी कथा-गाथा गैबीलाल और लिंगनायक आश्चर्य से सुन रहे, और बाबलभट्ट अपनी बहिन के उस साहस और कष्टों को सुनकर अपने आँसू पांछ रहा था । उसने आवई से कहा—

“मेरी दीदी ! तू व्यर्थ ही लड़की बनी । लड़का बनकर जनमी होती !!”

पास में सोये दोनों बच्चों पर ओढ़ना ठीक करती आवई बोली—

“जो नहीं हुआ वह भी ठीक ही है । लड़का होती तो तेरे जैसे ही खोड़े में बाँधकर मुठ्ठी भर चने की खुराक पर अँधेरे आदबखाने में सड़ना पड़ता । लेना एक न देना दो, फोकट की आफत ! उस पुरखे को भी क्या दुर्बुद्धि सूझी थी जो उसने वह सोना पास रख लिया । उन कलमुँहों ने

केवल अफवाह पर यह आफत ढायी। कहीं सच ही वह सोना तन पर पहना होता तो हमारे सिर काटकर हमारे ही घरों पर टाँग दिये होते।”

— हरमल यह सब सुनकर उठते हुए बोला —

“बाबल भट्ट, तुम और आई ही हो, जो इतना सारा सहन कर गये, मुझ जैसे तो इस आफत से भागकर दरिया में कूद मरते।”

गर्दन हिलाते हुए लिंगनायक ने कहा —

“भाई, यह तो तुमने एकदम सही कहा, पर इस सल्तनत में तो ऐसे सूरमा लोगों को भी कुत्तों की मौत ही मरना पड़ता है।”

बाबल भट्ट ने लिंगनायक को टोका, और कहा —

“नायक ! यह तुम्हारा कहना भी बेकार है, अरे जहन्नुम में जाने पर भी वे ही ढाक के तीन पात। कहीं भी इससे कुछ अलग नहीं है।”

बाबल भट्ट को रोककर गैबीलाल ने कहा —

“भट्टजी ! तुम्हारा कहना भी गलत नहीं है, पर कभी-कभी सूरज भी पश्चिम में उगते देखा गया है, नहीं तो आज रात तुम्हारे घर पर थाली पर तुम्हारे साथ होने के लिये हम जीवित ही नहीं रहते।”

इतना कहकर उसने लिंगनायक की ओर देखकर पूछा —

“क्यों रे भाई ! उस दिन की आफत याद है ?”

लिंगनायक हृषित होकर बोला —

“क्यों नहीं ! वाह रे न्याय ! वाह रे कदरदान !! सौ वर्ष जिये वह राजा शिवा ! जनम भर उसका मुँह मीठा होता रहे !!”

बाबल भट्ट ने कौतूहल से पूछा, “कौन शिवा ?”

गैबीलाल और लिंगनायक ने सारी कथा सुनायी —

“लगभग सौ-सवा सौ बैलों का काफिला लेकर लिंगनायक और उसके साथी लमाण उम्बर धाटी से धाट माथे पर चढ़ रहे थे। चौल वन्दरगाह में उतरा सीसा उन्हें औरंगाबाद पहुँचाना था। बढ़िया नस्ल के चार अरबी घोड़े भी इस काफिले के साथ औरंगाबाद जा रहे थे। एक दिन पहले उनका पड़ाव नीचे कोंकण में पड़ा था। वहाँ काफिले के सात-आठ बैल अस्वस्थ हो गये थे। इसीलिये काफिला धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था। कारुन्दी नदी के तट पर एक छायादार बड़े वट के पेड़ के नीचे लमाणों

ने पड़ाव डाला । रात में लमाणों ने रोटी सेंकने के लिये तीन-तीन पत्थर जोड़कर चूल्हे जलाये थे । उन्होंने के भिलमिल प्रकाश में सारा जंगल उन्होंने जगाया था । प्रातःकाल शीघ्र उठकर कम से कम चाकण तक का मार्ग कल ही पार कर लेना चाहिए, ऐसा विचार करते हुए लमाणों का काफिला सो गया । आधी रात धूल उड़ाते उसी मार्ग से घाट चढ़ते दस-बीस घुड़-सवारों को जागते और पहरा देते लमाणों ने देखा, तो क्षण भर के लिये वे डर गये । परन्तु परवानों के कागज उनके पास सब ठीक थे, काफिले के साथ कोई बहुमूल्य सामान भी नहीं था, इसलिये डरने का कोई कारण नहीं, ऐसा विचार कर वे चुप रहे । दूसरे दिन प्रातः धुंधलके में ही लमाणों का हो-हल्ला होने लगा । बैलों को हाँकते, ठेलते हुए उन पर सामान लादा गया । खाने-पीने का सारा सामान भी ठीक से बैलों पर लादा गया । तब कहीं इतना बड़ा काफिला निकल पड़ा । बैलों के गले में वैधी घण्टियों और धुंधरओं की रणक पहाड़ियों में गूंज रही थी । दिन उगते-उगते यह काफिला उम्बर का घाट चढ़ गया और आगे तुंगारण्य का जंगल पार करने लगा । घाट की अन्तिम चौकी उन्होंने पार की और सामने ही तुंगी किले के ऊचे-ऊचे शिखर दिखने लगे ।

काफिले का आगे का भाग पहाड़ी के सँकरे मार्ग से आगे बढ़ रहा था । तभी वहीं दुक्के वैठे घुड़सवारों की टुकड़ी ने इस काफिले को टोका । इसका भी एक-कारण था ।

इरान से सौदागर बहुमूल्य जवाहरात लेकर चौल बन्दरगाह पर उतरे हैं, और वे इसी काफिले के साथ औरंगाबाद के सूवेदार के यहाँ जा रहे हैं; ऐसा समाचार था । पर चलते समय वे सौदागर औरंगाबाद जाने का विचार बदलकर बीजापुर चले गये थे ।

घुड़सवारों की इस टोली को उस अफवाह की सूचना मिली थी । पर उन सौदागरों ने विचार बदल दिया, यह बात वे नहीं जान पाये थे । इसी कारण इस टोली ने उन रत्नों और हीरों के लिये इस काफिले पर धावा बोल दिया था । वे यही समझ रहे थे कि वे ही सौदागर भेष बदलकर सीसे की गठरियों में अपना बहुमूल्य माल छिपाकर ले जा रहे हैं । उन्होंने इन लमाणों को बहुत मारा-पीटा और अन्त में उनके लिये उस जंगल के

पेड़ों पर रस्सी के फाँस लटका दिये। पर इन लमाणों के पास कुछ होता तो मिलता !

इसी समय अचानक आकाश से देवों के विमान उतरे हों, ऐसे कुछ भालाधारी मावलों की एक टोली उसी संकरे पहाड़ी मार्ग से वहाँ उतरी। मावलों का वह पथक राजा शिवाजी की सेवा का था। लोहगढ़ से तिकोना दुर्ग की ओर जाते हुए उन्होंने इन लमाणों की चौखें सुनीं, काफिले के कुछ भागते बैल भी उन्होंने देखे। क्या हुआ है और क्या हो रहा है, यह सब वे समझ गये और दूसरे ही क्षण इन भालाइतों ने अपना मोर्चा उस ओर मोड़ दिया।

डाकुओं की टोली ने भी पहले इन मावलों से दो-दो हाथ करने का प्रयत्न किया, पर अपनी शक्ति कम पड़ती देखकर वे भागने लगे। मावलों की सहायता मिलते ही अब लमाण भी दोर बन गये, दो-चार घुड़सवार भाग गये, पर बाकी सभी को मावलों ने पकड़ लिया।

सुर्दैव से राजा शिवाजी का मुकाम उस दिन चिंचवड में ही था। मावलों ने यह सारा झगड़ा राजा के सामने प्रस्तुत कर दिया। एक साधारण, छोटे से तम्बू के सामने लकड़ी की चौकी पर राजा शिवाजी बैठे थे। सामने रस्सी से बैंधे डाकू खड़े थे। उन पर तीखी दृष्टि डालते हुए शिवाजी ने उनसे पूछा—

“तुम क्या समझे थे ? इस देश में कोई शासन करने वाला ही नहीं है ? जो चाहे उठे और जैसे मन में आये वैसे अविचार से काम करता रहे ? ये लमाण बिचारे मजदूरी करने वाले मजदूर। इस बाजार का माल उस बाजार तक पहुँचाते हैं। इन्हीं पर तलवारें चला दीं ?”

इतना कहकर शिवाजी ने अपने मावलों से कहा—

“इन सभी के दायें हाथ छाँट डालो।”

यह दण्ड सुनते ही रोते-चिल्लाते और मिन्नतें करते डाकुओं को एक ओर ले जाने के बाद मावलों की उस टोली के मुखिया ने शिवाजी से कहा—

“विनती यह है कि राजगढ़ के नीचे तोपों का कारखाना है। वहाँ सीसा लगता ही है। यह सीसा अनायास हाथ लगा है तो...”

यह सुनते ही उसे रोककर राजा ने कहा—

“नहीं, नहीं, ये लमाण क्या सोचेंगे ?

“इन व्यापारियों को जो कुछ सहायता की आवश्यकता हो वह करनी चाहिए। किंचित् सोचो। ये धूमते व्यापारी हैं। इस देश के अपने इस न्याय की कीर्ति चारों ओर पहुँचती है। सभी समझते हैं कि इस राज्य में अन्याय नहीं होता, सौदागरों और व्यापारियों के काफिलों को यहाँ कोई भय नहीं। निर्भयता से यहाँ आवागमन होता रहता है। इसके विपरीत व्यवहार इस राज्य के लिये हानिकारक है। इसलिये इस काफिले को भोजन का सीधा दो और इनको इनके मार्ग से जाने दो। कारखाने के लिये सीसा चाहिए तो औरंगाबाद जाकर टूट पड़ो, वहाँ लड़कर सीसा उठा लाओ। इन लमाणों के काफिले पर धावा बोलकर इनका माल लेने की आवश्यकता नहीं है।”

मावलों के मुखिया को चेतावनी देकर शिवाजी ने लमाणों से कहा—

“तुम जाओ। तुम्हें यहाँ किसी प्रकार का भय नहीं है।”

यह तो सारे संसार से उल्टा हो रहा था। अब तक का दस्तूर ऐसा था कि कोई झगड़ा दीवानी में पेश होता, तो अपराधी को दण्ड दिया जाता और जिस माल पर झगड़ा हुआ, वह माल दीवान की कचहरी में जब्त कर लिया जाता। इससे भिन्न व्यवहार किसी ने किया हो, ऐसा इन लमाणों ने सुना ही नहीं था।

अब तक सारा माल तो जब्त होता ही था, साथ में काफिले के बैल भी दीवान की कचहरी के अँगन बांध नहीं लिये तो अहोभाग्य माना जाता था।

इन सारी बातों की इन लमाणों को आदत सी हो गयी थी। इसके विपरीत भी कुछ अच्छा हो सकता है, यह इनके लिये कल्पना के परे था।

पर उस दिन का कुछ अनोखा अनुभव आते ही लिंगनायक शिवाजी राजा के पैरों पर गिर पड़ा। शिवाजी राजा ने उसे उठाकर एक बार फिर से अभय का विश्वास दिलाया, और उसे निश्चिन्त होकर जाने को कहा; साथ ही पास खड़े अपने मावलों के नायक को आज्ञा दी—

“इन लमाणों की किसी बहू-वेटी को कष्ट हुआ हो तो उसे साड़ी-चोली देकर आदर के साथ विंदा दो।”

यह सारी कथा लमाणी भाषा में सुनाकर गैबीलाल ने कहा—

“बाबल भट्ट ! सूखे ठूंठ को भी कभी-कभी कोपले फूटती हैं।”

उसी बात को आगे बढ़ाते हुए गैबीलाल ने कहा—

“फूटती ही हैं जी ! सौ साल जीये वह राजा शिवा, उसके पूत राजपाट भोरे ।”

बाबल भट्ट और आबई बड़े ही कौतूहल से वह सारी कथा बैठे सुन रहे थे । वैसे देखें तो बाबल भट्ट सिंही के यातनागार से आज ही छूटा था । उसका टूटा पैर दुख रहा था । उसे आराम की बहुत आवश्यकता थी । पर पश्चिम की ओर उगे उस सूर्यनारायण की कथा इतनी अनोखी थी कि बाबल भट्ट अपने सारे कष्ट ही भूल गया और उसके मन में एक नया ही विचार आया । उसने आबई की ओर मुड़कर कहा—

“आबई ! एक बात मन में आ रही है, वह कह देता हूँ । इसमें से कुछ दूर की बातें मन में सोचना ।”

“क्या है ? वह तो बताओ ।”

“यों ही, मन में आता है कि ऊपर धाट माथे पर जाकर एक बार उस राजा शिवाजी को देखकर आऊँ ।”

यह सुनकर क्षणभर रुककर आबई ने कहा—

“बाबल ! यही बात मेरे मन में भी आ रही है, पर मैं आज ऐसी विधवा हो गयी हूँ, वहाँ कैसे जाऊँगी, कैसे पहुँचूँगी ? तुम तो आज ही आग से निकलकर आये हो, खा-पीकर ठीक हो जाओ और फिर जहाँ चाहो जाओ । मैं तो, जैसे बीते वर्ष-सवा वर्ष घर संभाला, वैसे ही कुछ दिन और घर संभाल लूँगी ।

यह सुनकर गैबीलाल ने कहा—

“बाबल भट्ट ! एक पखवाड़े वाद हमारा काफिला वाणकोट से रामरस, बरद धाट से बीजापुर की ओर ले जाने वाला है । चलो हमारे साथ । तुम लौंगड़े आदमी । तुम्हें बैल पर बिठाकर ले जायेगे ।”

“आबई वहिन ! तू अपने इस भाई को कुछ भोटा-ताजा बनाकर हमारे साथ जाने दे । भरोसे के साथ ले जाऊँगा ।”

यह सुनकर उत्साह से भरकर बाबल भट्ट ने कहा—

“आऊँगा तुम्हारे साथ, अवश्य आऊँगा । तुम ले चल रहे हो तो मुझे चलने को क्या हुआ ?”

□

पन्द्रह दिनों बाद लिंगनायक के बैलों के काफिले के साथ बावलभट्ट राजा शिवा को देखने के लिये निकला । बावल भट्ट वैसाखी टेकते-टेकते काफिले के पीछे-पीछे मानो दोड़ रहा था । गैबीलाल बार-बार उसे चैल पर बैठने को कह रहा था, और हर बार बावल भट्ट उससे कहता—

“क्यों भाई, महादेव के शृङ्खला-मृङ्खला सा मैं भी बैल पर बैठूँ ? थोड़ा-चहुत चलने दो । बैसे अब ये वैसाखियाँ तो जन्मभर साथ देने वाली हैं; इनकी भी थोड़ी आदत कर लूँ । यक जाने पर तो बैल पर बैठना ही है ।”

दरिया के तट पर जन्म होने के कारण बावल भट्ट दरिया के किनारे और उससे लगी पहाड़ियों, दर्रों और उनमें से चढ़ती-उत्तरती पगड़ण्डियों से परिचित था । उसका घर भी पहाड़ी पर ही था । पर वे पहाड़ियाँ अधिक ऊँची नहीं थीं । सह्याद्रि की प्रचण्ड खड़ी चोटियाँ, सीधी उत्तरती कगारें बावल भट्ट ने इतने निकट से कभी देखी नहीं थीं । आज सह्याद्रि के उस गगनचुम्बी, भयंकर, भव्य, दिव्य, रौद्र एवं दुर्गम रूप को देखकर उसका मन विस्मय से भर गया था । सह्याद्रि के इस रूप में केवल कगारें ही नहीं थीं, उसमें एक से एक भयंकर और एक के पीछे एक सटकर अनेक पर्वत-शिखर खड़े थे और उनके बीच में से होकर बहने वाले पानी के स्रोते आड़े-तिरछे दोड़ते हुए महाड़ के समीप सावित्री नदी में मिलते थे ।

सह्याद्रि की उन भयावनी कगारों के पेटे के नीचे धनी झाड़ी थी । बावल भट्ट बावला या सीधा-साधा नहीं था । उसकी बुद्धि में जिज्ञासा थी । उसने जानकार लोगों से पूछ-पूछकर कितने ही वृक्षों की जानकारी जुटायी थी । पर सह्याद्रि की वह बनराजि बावल भट्ट की जानकारी की खिल्ली उड़ा रही थी ।

बावल भट्ट ने उस जंगल में आंवेहिरडी, बहेड़े, आइन, साग जैसे वृक्षों को एक ही दृष्टि में पहचान लिया था । वृक्षों की उस भीड़ में कारवी, घाणेरी, निर्गुण्डी जैसे छोटे-छोटे पेड़ों को भी उसने देख लिया था । पर इन नित्य परिचय के पेड़-पौधों और वृक्षों से भिन्न कितने ही वृक्ष, पेड़

और पौधे उस घने जंगल में खड़े थे। उस सब ओर घनी-घनी झाड़ी में से पगडण्डी कैसे और कहाँ से पहाड़ी की चढ़ान चढ़ती है, यह भी बाबल भट्ट को गूढ़ सा लग रहा था। देखते-देखते उस काफिले ने वरंध पीछे छोड़ दिया। इसके बाद राजा शिर्के की चौकी थी। इस काफिले ने वहाँ अपने दस्तक और परवाने दिखाये, माल की भी जाँच की गयी। उसी मार्ग से कभी कोई घुड़सवार धोड़े की बलगा हाथ में लेकर धीरे-धीरे नीचे उतर रहा था; कभी कोई भालाई जवान हाथ में चमकते फल वाला भाला लिये घाट चढ़ रहा था। उस घाट को चढ़ते समय बाबल भट्ट को बैसाखी से ऊपर चढ़ना कठिन लगने लगा, तब कहाँ वह एक बैल की पीठ पर बैठा। वे बैल थे तो दुबले-पतले से, पर उनमें बल अद्भुत था। एक सी लय में वे धीरे-धीरे घाट चढ़ रहे थे। माजेरी के समीप एक झरने पर बाबल भट्ट ने अपना बैल रोका; नीचे उतरकर उसने पानी पिया, तब तक सारे ही काफिले ने वहाँ कुछ विश्राम कर लिया। काफिले के बैल आस-पास की झाड़ियों में मुँह मारने लगे। पानी पीने के बाद बाबल भट्ट ने गैबीलाल से कहा—

“भाई, लमाणराज ! यही मार्ग है ना आगे बढ़ने के लिये ? मैं चलूँ थोड़ा आगे ? जंगल में आगे बढ़कर कुछ वृक्षों और पेड़ों को देखना चाहता हूँ ।”

गैबीलाल ने कहा—

“हाँ बाबल भट्ट ! चलो। हम भी पीछे आ रहे हैं।”

इसी मार्ग से समर्थ रामदास के दो शिष्य भी जा रहे थे। एक दिन पूर्व, मार्ग में रात हो जाने के कारण कल्याण गुसाई और छोटा वासुदेव गुसाई हिरडोशी में हनुमानजी के मन्दिर में रुके थे। धुंधलके में उठकर दोनों ही घाट चढ़ने लगे। घाट माथे पर थोड़ी देर सुस्ताकर वे दोनों ही दूसरी ओर घाट की ढलान उतरने लगे। उस उत्तरती राह पर छोटे वासुदेव गुसाई को भागते हुए उत्तरते देखकर कल्याण गुसाई ने छोटे वासुदेव से कहा—

“वासुदेव गुसाई ! ऐसी चंचलता नहीं करते।”

“क्यों ?” एक शिला पर पैर टिकाकर वासुदेव ने पूछा।

गम्भीर बनकर कल्याण गुसाईं ने कहा—

“अरे, इससे गुसाईं धर्म में वाधा पड़ती है।”

“कल्याण स्वामी ! हनुमानजी गुसाईं ही थे ?”

“थे ही ।”

“तो उछलने-कूदने और भागने से उनके गुसाईं धर्म को वाधा नहीं पहुँची ?”

वासुदेव गुसाईं के इस तर्क का कल्याण गुसाईं के पास उत्तर था ही नहीं, इसलिये हँसते हुए बोले—

“तुम ठहरे महातार्किक । तुम श्री स्वामी से भी ऐसे ही कुछ न कुछ पूछते रहते हों । अरे ! स्वामी दयावन्त हैं, इसलिये वे तुम्हें कुछ कहते नहीं ।”

कल्याण गुसाईं की ये वातें सुनकर छोटे वासुदेव की आँखों में पानी भर आया । अपनी सजल आँखों को एक हाथ से पोंछते हुए छोटे गुसाईं ने कहा—

“गलती हो गयी, आगे कभी ऐसा नहीं होगा ।”

वासुदेव गुसाईं अभी बालक ही था, अंभई के कुलकर्णी का यह पूत । समर्थ पर उस दम्पति की श्रद्धा थी । इसीलिये उन्होंने इस छोटे वासुदेव को समर्थ के पास रख दिया था । समर्थ ने भी वासुदेव को कल्याण गुसाईं के अनुशासन में रखा था, हेतु यह था कि ऊधमी स्वभाव के वासुदेव को कल्याण गुसाईं जैसे गम्भीर स्वभाव के श्रद्धाशील और एकनिष्ठ शिष्योत्तम के पास अनुशासन में रहने का अभ्यास होगा ।

इस समय वस्तुतः उस छोटे वासुदेव को पास लेकर उसके आँसू पोंछने चाहिए थे, किन्तु इतनी भावुकता कल्याण गुसाईं के अनुशासन में आती ही नहीं थी । फिर कल्याण गुसाईं यह भी जानते थे कि बुझा-बुझा सा यह छोटा गुसाईं कुछ ही क्षणों में तितली सा हँसने-उछलने लगेगा ।

और कुछ ही क्षणों में वैसा हुआ भी ।

बैल की पीठ पर बैठकर जंगल की शोभा देखते हुए धीरे-धीरे घाट चढ़ते लौंगड़े बावल भट्ट को अचानक देखकर छोटा गुसाईं सिलखिलाकर हँसने लगा । अब तक कल्याण गुसाईं ने बावल भट्ट को देखा ही नहीं था;

उसने वासुदेव से पूछा—

“क्षण में रोना और क्षण में हँसना ! क्या हो गया जो हँस रहे हो ?”

वासुदेव गुसाईं ने बाबल भट्ट की ओर अंगुली दिखाकर कहा—

“देखो, साक्षात् पशुपति की सवारी जो आ रही है।”

अब कहीं कल्याण गुसाईं की दृष्टि बाबल भट्ट की ओर गयी। एक पैर टूटा होने के कारण बाबल भट्ट को कुछ कटिनाई हो रही थी। उसने एक हाथ से बैसाखी पकड़ रखी थी, दूसरे हाथ से बैल के पीठ की कंधेली कसकर पकड़ रखी थी। वह कंधेली घोड़े की जीन जैसी सुदृढ़ नहीं थी। बाबल भट्ट उससे कभी भी नीचे गिर पड़ता, पर उसने उसे कसकर पकड़ा होने के कारण वह अब तक गिरा नहीं था।

वृक्षों को देखने में वह इतना तल्लीन था कि अपनी उस हास्यास्पद स्थिति की ओर उसका ध्यान ही नहीं था। बैल अपनी गति से धाट चढ़ रहा था। बड़ी-बड़ी चट्टानों और शिलाओं को धूमकर पार करता। बड़े बड़े वृक्षों के बीच में से चलती वह राह उसकी जानी-पहचानी थी।

शिवथर की ओर जाने वाला मार्ग जहाँ दायीं ओर मुड़ता था, वहाँ ये दोनों ही गुसाईं खड़े थे। उन तक बैल पहुँचने पर ही बाबल भट्ट को उनका भान हुआ। तरुण, ऊचे-पूरे, बलिष्ठ शरीर के, बालों की जटाओं को माथे पर वर्धि हुए, अन्तर्मुख दृष्टि के उस कल्याण गुसाईं को और उसके समीप ही कीरुक से देखते हुए, अपनी हँसी दबाते उस छोटे वासुदेव गुसाईं को देखकर बाबल भट्ट चकित हुआ। ऐसे सुन्दर और उत्साही चपल गुसाईं इस जंगल में मिलेंगे, यह कल्पना उसने कभी की ही नहीं थी। उनको देखकर कुछ उत्साह से बाबल भट्ट ने उनसे कहा—

“यह जो ऊंचा सा वृक्ष है, इसे मैं देख रहा था। हमारे जंगलों में यह होता नहीं।”

कल्याण गुसाईं ने बाबल भट्ट की इस बात को टालकर अत्यन्त सहानुभूति से पूछा—

“ये बैसाखियाँ नयी-नयी दिखती हैं—यह पैर कैसे टूटा ?”

यह सुनते ही बाबल भट्ट के मुख का कौतूहल खो गया और कुछ

खिन्नता और आवेश से ही उसने कहा—

“दुर्देव का भोग ! जंजीरे के आदबखाने में सड़ रहा था । खोड़े में पैर अटकाकर, वहाँ एक पैर हज्जाम ने काटकर फेंक दिया । भोगना है सो भोग रहे हैं ।”

कुछ आश्वासन देते हुए से स्वर से गुसाई ने कहा—

“बुरा न मानो तो एक बात पूछूँ । आदबखाने में पढ़ने का क्या कारण था ?”

यह सुनते ही बाबल भट्ठे ने तीखे स्वर में कहा—

“पुरखों के करम भोग रहा हूँ । किसी पुरखे ने ग्रामसभा का सुवर्ण अपने पास रखा । उस पर अनेकों की दृष्टि । उसी के पीछे पिता कटकर खप गये । उनको वह सारा कहाँ रखा है, यह तो विदित था । हमें तो वह भी पता नहीं । आज तो विना कारण ललाट का लिखा भोग रहे हैं । कौन करे और कौन भुगते !”

यह सुनकर कल्याण स्वामी ने आँखें बन्द कर लीं, और गम्भीर स्वर में कहा—

“सदा राम भक्ति करो रे
सदा दुःख को छोड़ने का मन करो रे
सदा देह के दुःख को सुख कहो रे
सदा विचारो, भजो राम को रे ।”

आँखें खोलकर कल्याण ने बाद में कहा—

“पुरखों को भला-बुरा नहीं कहना चाहिए । राम पर भरोसा करो, उससे दुःख सहन होता है ।”

यह सुनकर बाबल भट्ठे ने चिढ़कर कहा—

“अहो, परोपदेशो पाण्डित्यम्, दूसरों को उपदेश देने में क्या लगता है ? दुःख क्या होता है, कभी देखा-सुना भी है ?”

“जिन्होंने सारा देश पैदल धूमकर संसार के नाना दुःखों को आँखों से देखा, वे हमारे श्रीस्वामी हैं । हमारे बदले वह सारा उन्होंने ही देखा और भोगा भी है । हमें उन्होंने दे रखी है, गंगाजल सी निर्मल राम की उपासना ।” इतना बताकर कल्याण गुसाई ने बाबल भट्ठे से फिर कहा—

“समर्थ के दर्शन को चलना है ? बहुत दूर नहीं चलना पड़ेगा, यहाँ निकट ही पहाड़ की गुफा में।”

कुछ हँसते हुए वाबल भट्ट ने पूछा—

“एकदम समर्थ ? इधर-उधर बीच में कुछ नहीं ? हम यहाँ सड़ते कुत्ते से भोग भोग रहे हैं, और ये एकदम समर्थ !!”

शान्त चित्त से कल्याण गुसाई ने कहा—

“आप किस ओर जा रहे हैं ? हम जैसे वैरागी गुसाई को बताने में कुछ संकोच न हो तो……।”

वाबल भट्ट ने कहा—

“हम जैसे दुर्देवी कहीं जायें, हमारे लिये वे ही ढाक के तीन पात । भोग कहीं टलने वाला नहीं है । सोचा किसी दूसरे के प्राक्तन से अपना प्राक्तन घिसकर देखें । सुना है कोई शिवा राजा है ऊपर धाट माथे पर । उसी के पास जा रहा हूँ ।”

“आपके काम को कुछ दिन और लग सकते हैं । हमारे साथ गुफा तक आओ तो एक दिन ही अधिक लगेगा, पर इस दिन को यों विताने का कभी पछतावा नहीं होगा, इतना मैं भरोसा दे सकता हूँ ।”

अब तक पीछे छूटा बैलों का काफिला आ गया था । गैवीलाल ने पूछा—

“वाबल भट्ट जी ! क्या कह रहे थे विरागी गोसाई ?”

वाबल भट्ट ने कहा, “लमाणराज ! यहाँ किसी गुफा में कोई स्वामी-महाराज हैं ।”

“होंगे जी, होंगे । अवश्य होंगे ।”

“उनके दर्शन को……।”

“तो फिर हमारे काफिले का साथ छूट जायेगा ।”

यह सुनकर कल्याण गुसाई ने कहा—

“राजा शिवाजी तक इनको पहुँचाने की कोई दूसरी व्यवस्था न हो पायी तो मैं स्वयं ही इनको अपनी पीठ पर उठाकर वहाँ तक पहुँचा दूँगा ।”

यह सुनकर कुछ निश्चय से वाबल भट्ट बैल से कूद पड़ा । उसने काँख-

में वैसाखी अटका ली, अपनी गठरी बैल से उतारकर अपने कंधे पर रख ली, और कहा—

“चलो, अपने भाग्य की यह भी एक परीक्षा हो जाने दो।”

कल्याण गुसाई ने बावल भट्ट की गठरी हठात् लेकर अपनी पीठ पर लदे सामान में रख ली और वे तीनों उस पहाड़ी के समीप धूमकर जाने वाली पगडण्डी से शिवथर गाँव के निकट की खोह की ओर चल पड़े।



काले विशाल प्रस्तरों की ऊँची कगार के नीचे खोह के भीतर एक गुफा थी। उसका अन्तभाँग विस्तीर्ण था। उसमें एक साथ पाँच सौ लोग बैठकर बरसती रात विता सकते थे। उस पहाड़ी की कगार से वहता केनिल जल सामने की बड़ी सी चट्टान पर बरस रहा था। उस सुन्दर उग्र कगार पर चारों ओर चबैणी की झाड़ी फूलों से भरी थी। कगार की ढलान पर उगी रान-के-वाड़ी की लताओं के जाल खोह में नीचे तक लटक रहे थे। कगार की ढलान पर नीचे तक ‘येकली टाकली’ के छोटे-छोटे पेड़ों के झुरमुट यहाँ-वहाँ विखरे थे। पहाड़ी की तलहटी में वहती काल नदी के वहते प्रवाह को छोड़कर पहाड़ी के चारों ओर घनी झाड़ी थी, जिसमें कोई मनुष्य खो गया तो उसे कल्पान्त सा दिखने लगता था।

ऐसे निसर्ग-सुन्दर खोह में तेज से दमकता एक भव्यदर्शन पुरुष धूनी के एक ओर व्याघ्राजिन पर सुखासन में बैठा था। पीछे टिकने के लिये एक शिलापट्ट था। सामने धूनी थी, उसके आसपास राख ठीक थोपकर जमायी गयी थी। उसके बीचोंबीच राख में दबी गोवरी में से धुआँ ऊपर उठ रहा था। उस व्यक्ति के कमर में लंगोट बैंधा था। शेष सारे शरीर पर कोई वस्त्र नहीं था। धाम में तपते-तपते स्वाभाविक गौर शरीर ताँबे जैसा बन गया था। शरीर भरा-भरा सा था। मस्तक पर जटाभार था। लम्बी नासिका मुख के गौरव को बढ़ा रही थी। कपाल पर उभरा शंख था। इन सभी से अधिक मन को छू जाने वाली, देखने वाले को चकित कर देने वाली दो तेजस्वी आँखें थीं। उनमें गम्भीर सरोवर सी तृप्ति थी। मुख पर गम्भीरता थी, पर एक शुद्ध सात्त्विक स्मित की छटा दमक रही थी।

सामने उकड़ू बैठे चरवाहों से वह समर्थ पुरुष बातें कर रहा था।

एक चरवाहे ने कहा—

“अजी बाबाजी ! वे दोनों रातभर यहाँ गरज रहे थे ।”

“हमें पता है ।”

“बड़े वेग से लड़ रहे थे ।”

“हाँ ।”

“मैं समझ रहा था कि वे दोनों ही लड़ते-झगड़ते इस खोह तक पहुँचे होंगे ।”

“ठीक कह रहे हो, यहाँ नीचे दोनों का तमाशा रातभर चलता रहा ।”

“बाप रे बाप ! उन शेरों से आपको डर नहीं लगा ?”

हँसकर समर्थ ने पूछा—

“वयों दद्दा, तुम्हें दो ही आवाजें सुनायी दीं, तीसरी नहीं ?”

“कौन-सी जी ?”

“हमारे खर्राटों की आवाज नहीं सुनी तुमने ?” इतना कहकर समर्थ पुनः हँसे। क्षणभर रुककर कहने लगे—

“जंगल में रहकर इन व्याघ्रों से क्या भय ! हमें बताओ कि यह जंगल किसका है ? इन व्याघ्रों का ही तो है। हम लोग उनके पाहुने हैं ।”

यह सुनकर सामने बैठे चरवाहों में से एक बूढ़ा उत्साह से बोला—

“बाबाजी ! यह तो आपने खरी बात बता दी ।”

उस बूढ़े की बात को सुनकर समर्थ ने थोड़ी दूर पर बैठे मायनाक से पूछा—

“वयों जी मायनाक ! सागर किसका ? तुम्हारा कि मछलियों का ?”

यह सुनकर सागर का पंछी मायनाक क्षणभर असमंजस में पड़ गया। मायनाक को समझाते हुए समर्थ ने कहा—

“थोड़ा सोचो, कि जल के बिना मछली क्षणभर भी जी नहीं सकती; यह तो सही है ?”

मायनाक ने सिर हिलाकर कहा—

“यह तो एकदम खरी बात हुई ।”

“तद तो नदी-समुद्र उन मछलियों के ही हुए। या नहीं ? हम सब

तो बीच में यों ही धुसने वाले, उनके राज्य में धुसते हैं और आपस में
लड़ते-झगड़ते हैं कि यह दरिया हमारा, वह तुम्हारा ।”

इतना बोलकर एकाएक समर्थ गम्भीर हो गये। क्षणभर रुक्कर फिर
कहने लगे—

“सागर जैसे मछलियों का सर्वस्व है, बाहर निकालते ही तड़पती
रहेंगी, मरेंगी, वह सागर ही उनका स्वर्ग है, उसी प्रकार जिस समाज ने
किसी भूमि को अपनी प्रियतम आत्मीय मान लिया, वह भूमि भी उन्हीं
की है। उनके कितने ही पुरखे उस भूमि पर वास करते रहे, उस भूमि में
जन्मे, खेले, उसकी ममतामयी गोद में सोये। वही भूमि उनके लिये देवता
स्वरूपा है। अरे, प्रभु रामचन्द्रजी ने अपने भाई लक्ष्मण से कहा नहीं था ?

‘अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते ।

जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गदिपि गरीयसी ॥’

ऐसा भाव जिनका हो, उनके लिये जननी-जन्मभूमि सर्वस्व है। उन्होंने ही
उस भूमि को अपना कहना चाहिए, औरों को व्यर्थ गाल वजाने की आव-
श्यकता नहीं। पीठ पर गोबर लीपकर व्यर्थ में वृषभ क्यों कहलाना ?
स्वाधीन हो, स्वतन्त्र हो, मस्तक उठाकर स्वाभिमान से, स्वातन्त्र्य से,
तेजस्विता से जीना चाहिए ।”

इतना कहकर अचानक समर्थ अपने आसन से उठकर खड़े हो गये,
गुफा में ही एक ओर टंगी ऊँची सी कुबड़ी उतार ली और गुफा के मुहाने
तक आकर चट्टान पर कुबड़ी टिकाकर उसके सहारे चुपचाप खड़े रहे।
समर्थ बोलते-बोलते क्षणभर में भावसमाधि में रम गये थे। एक सामान्य
सी बात बताते-बताते समर्थ किसी गम्भीर समस्या में डूब क्यों गये, यह
उन चरवाहों की समझ में नहीं आ रहा था। मायनाक समर्थ की उस
स्थिति को कुछ-कुछ समझ रहा था।

मायनाक भोर में काल नदीतट पर स्नान कर गुफा की ओर लौट
रहा था तो उस समय समर्थ से मिलने आये राजे चन्द्रराव मोरे लौटते हुए
खोह के मुँह के समीप क्षणभर खड़े दिखे थे। कुछ गम्भीर चर्चा चल रही
है, यह उसने समझ लिया था। वह उन दोनों से कुछ दूरी पर रुक गया।
मोरे कह रहा था—

“हम यह धृष्टता चलने देंगे क्या ? वादशाही के सेवक कहलाते हैं ‘हम ! हमें ‘राजे’ की पदवी खुद हजरत ने दी। ऐसे हम इन चोरों को मानेंगे क्या ? क्या खूब बोलते हैं वे !”

यह सुनकर समर्थ ने उससे पूछा—

“राजे ! तुम्हारे वे वादशाह माने कौन ? इस देश से उनका क्या सम्बन्ध ? उनकी पादशाही का ऊपरी सिन्दूर निकाल लेने पर, वे इस देश के शत्रु नहीं दिखते ? इन्हीं वादशाहों ने यहाँ के तीर्थक्षेत्र नष्ट-भ्रष्ट नहीं किये ? इनकी करतूतों से यह सारी भूमि आक्रोश नहीं कर रही है ? इनके अन्याय से इस देश के धर्मस्थान भ्रष्ट नहीं हुए ? ये उद्घण्ड पापी और क्रूर नहीं हैं क्या ? इन्होंने इस देश के देवी-देवता नष्ट-भ्रष्ट नहीं किये ? ऐसे इन वादशाहों को तुम जैसे ही लोग अपने सिर पर नहीं बिठा रहे हो क्या ? इनके पक्ष के साथ होकर स्वजनों का द्वोह करने के उपाय क्यों करते हो ? जहाँ तक उपाधि की बातें हैं, ऐसी उपाधियाँ तो वे ही शोभा देती हैं जो स्वपराक्रम से अजित की हों, परदास्य की विवशता ढोते हुए सर्व-श्रेष्ठ ‘सिंहासनाधीश्वर’ जैसा विरुद्ध भी मिला, तो भी उसका महत्त्व कीड़ी के मोल का भी नहीं ।”

समर्थ के उन ओजस्वी विचारों को सुनकर चन्द्रराव मोरे हतप्रभ सा खड़ा रहा। क्षणभर के बाद तलवार पर हाथ कसकर क्रोध से तिलमिलाते हुए राजे शिक्के पहाड़ी की चढ़ान चढ़ने लगा। अपनी खिन्नता साथ के ‘हुजूरियों’ पर उतारते हुए राजे उन पर चिल्लाया और उनको घने जंगल से ऊपर कुछ ही दूरी पर खड़ी अपनी गढ़ी की ओर दौड़ाया।

सारी घटना को स्मरण कर मायनाक समझ गया था कि समर्थ इसी स्थान पर इसी स्थिति में खड़े थे और इस क्षण भी उसी स्थान पर अचल खड़े हैं तो सामने गहरे आकाश में देखते हुए उनके मन में प्रातः के वे ही सारे विचार काँध रहे हैं।

उसी समय बावल भट्ट को कन्धे पर बिठाकर खोह की ढलान चढ़ते कल्याण गुसाईं की ओर समर्थ का ध्यान गया। कल्याण के पीछे-पीछे छोटा वासुदेव गुसाईं सामान की गठरी जैसे-तैसे संभालते हुए छोटे-छोटे डग भरता चल रहा था। छोटे वासुदेव गुसाईं की वह अवस्था देखकर गम्भीर

‘विचारों में डूबे समर्थ को भी हँसी आ गयी। उन्होंने पीछे मुड़कर मायनाक से कहा—

“अरे नाईक ! वह छोटा गुसाईं बोझ के भार के नीचे ढूबा जा रहा है। उसका उद्धार करने भागोगे क्या ?”

यह सुनकर मायनाक उस ओर दौड़ा। उसने वासुदेव गुसाईं का बोझ उतारकर कंधे पर बाँध लिया और वासुदेव की उछलकूद तथा बात न मानकर बलपूर्वक उसे भी उठाकर वह ऊपर ले आया और खोह की गुफा के समीप समर्थ के सामने उन दोनों ही बोझों को रख दिया। वासुदेव अपनी उस स्थिति से रुआंसा हो गया था। उसकी आँखों में पानी भर गया। उसे देखकर समर्थ वासुदेव के समीप गये और उसे निकट खींचकर उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहने लगे—

“रोने को क्या हो गया वासुदेव गुसाईं ? ये तो मायनाक भण्डारी हैं, कोई दैत्य नहीं। उन्होंने तुम्हारा उस बोझ से जो उद्धार किया उसे देखकर हमें स्मरण हुआ कंधे पर लक्ष्मण को विठाकर रणांगण पर उछलते हनुमान गुसाईं का। पर इस दृष्टान्त में कणभर कमी है। यहाँ के हनुमान गुसाईं की पूछ नहीं है, और यह छोटा सा लक्ष्मण पैर फैलाकर ऊचे स्वर से रोने की तैयारी में था।”

अब तक कल्याण गुसाईं भी ऊपर आ गये थे और उन्होंने बाबल भट्ट को समर्थ के सामने उतारकर साष्टांग दण्डवत् किया तथा उठकर बताया—

“स्वामी ! ये बाबल भट्ट हैं। हनसाणा के सिद्धी के यातनागार में थे। वहाँ खोड़े में बंधे होने से एक पैर पीड़ित हो गया। शिवराया को मिलने घाटमाथे पर जा रहे थे। सताये गये हैं। इनको बीच मार्ग में से ही यहाँ खोह में लाया हूँ।”

समर्थ ने सुना, और उनकी करुणापूर्ण दृष्टि बाबल भट्ट के शरीर पर टिकी। स्तन पीते शिशु के शरीर पर माँ जैसी ममता से भरा स्पर्श फेरती है, बाबल भट्ट को समर्थ की उस दृष्टि का बैसा ही सुखद आश्वासन भरा स्पर्श हो रहा था। उस स्पर्श से बाबल भट्ट का मन और आँखें भर आयीं। प्रथम क्षणभर वह कुछ गड़बड़ा गया। उसकी वह अवस्था क्षणभर बाद

कुछ कम हुई और एकाएक उसकी आँखें छलछला उठीं। बाबल भट्ट के समर्थ के सामने दण्डवत् किया और वह धाढ़ मारकर रो पड़ा।

समर्थ ने आगे बढ़कर उसे उठाया, अपनी छाती से लगाया और कहा—

“रोने से क्या होगा बाबल भट्टजी ?”

अपनी गर्दन हिलाकर मना करते हुए बाबल भट्ट ने कहा—

“मैं वड़ा पापी हूँ। समीप लेने की योग्यता का भी नहीं।”

समर्थ ने कौतूहल से पूछा—

“क्या अभिप्राय है ?”

बाबल भट्ट स्वयं के गाल पर मारकर कहने लगा—

“यह वही मुंह है जिसने अभी-अभी समर्थ स्वामी जैसे महायोगी की निन्दा की थी।”

समर्थ ने कल्याण गुसाईं की ओर देखा। कल्याण गुसाईं ने बताया—

“दुःखी है। निन्दा नहीं थी वह, वे तो मन में जलती पीड़ा की चिंगारियाँ थीं।”

समर्थ ने बाबल भट्ट को अपने समीप बिठाया और समझाते हुए कहा—

“सुनो बाबल शास्त्री ! हमारा मन व्यर्थ की चिन्ता ढोता रहता है, और एकाएक जो होनी है वह हो जाती है। अब वह सब जाने दो, यहाँ दो-चार दिन हमारे साथ रहो, पतित-पावन रघुपति की सेवा करो, पश्चात् वह जो प्रेरणा देंगे वैसा करो। हम भिक्षा का अन्न ही ग्रहण करते हैं। तुम्हारे लिये भी दो घर और माँग लेंगे।”

“सुनो, कल्याण गुसाईं ! इन ब्राह्मण को तुम यहाँ लाये हो। इनकी व्यवस्था तुम्हें ही करनी है। इनके पैर में ओषधि का लेप और...।”

कल्याण ने बीच में ही कहा—

“आज्ञा स्वामी !”

समर्थ बोले, “अभी इन्हें स्नान करने ले जाओ, इनका सारा काम हो जाने पर इनकी दुर्गति की कथा रघुपति को सुनायेंगे।” इतना बताकर समर्थ ने वासुदेव गुसाईं की ओर देखकर पूछा—

“हाँ, तो, वासुदेव गुसाईं ! अक्का व्यवस्थित घाटमाथे पर भोर गाँव

तक पहुँची ?”

हर्षित होकर वासुदेव गुसाईं ने उत्साह से बताया—

“पहुँच गयी स्वामी ! पर हमारे साथ राजे शिंके के सवार यों ही दिये थे ।”

“क्यों ? क्या हुआ ?”

“स्वामी, वे मार्ग में बुरी-बुरी बातें करते रहे । मेरे पूछने पर कल्याण गुसाईं ने बताया कि वे शृङ्खालिक गीत गा रहे थे । वे गाने लगे तो मैंने कल्याण गुसाईं से पूछा कि यह कौन-सा गीत है, ये ‘जीजीग, जीजीग जीजी’ कहकर जीजी को क्यों पुकार रहे हैं ? तब कल्याण गुसाईं ने मुझसे कहा—

“‘वासुदेव ! यह लावणी है ।’

“मैंने पूछा—इस गाने का छन्द कौन सा, इसमें कितनी मात्राएँ होती हैं ?

“तब गुसाईं ने कहा—

“‘जिस मार्ग से जाना नहीं, उस मार्ग को पूछने की भी आवश्यकता नहीं । यह गाने का प्रकार अच्छा नहीं होता ।’

“थोड़ी देर बाद मुझे भी लगा कि ये जो गा रहे हैं वह कुछ ठीक नहीं है ।”

यह सब सुनकर समर्थ ने वासुदेव से हँसते हुए पूछा—

“वासुदेव ! तुम्हें ऐसा क्यों लगा ?”

वासुदेव ने बड़े ही भोले भाव से कहा—

“स्वामी ! वे उस गाने में किसी स्त्री को न जाने क्या-क्या कह रहे थे । कहीं चलने के लिये कहते थे । मैंने उन्हें गाने के लिये मना किया, तब वे हँसकर पूछने लगे—

“क्यों भट्टजी ! हमारे गाने में क्या कुछ बुरा है ?”

“इस पर अकका ने हमें कहा—

“‘वासुदेव ! हमें राम-नाम का स्मरण करना चाहिए । उधर ध्यान न दो । पैरों तले देखकर राह चलनी चाहिए ।’

“तब मैं माला निकालकर राम-नाम का जाप करने लगा, फिर भी उनकी लावणी मेरे कानों पर आ ही रही थी । कल्याण गुसाईं ने जाकर

उनको समझाया, तब वे कुछ दूर आगे चलने लगे। घाट चढ़ जाने पर वे लौट गये।

“स्वामी ! ‘होंठों में अनार लाल’ का क्या अर्थ है ? ऐसा वे गाने में कह रहे थे ।”

यह सुनकर समर्थ ने हँसकर कहा—

“वालक तैलवुद्धि है; जो सुनता है, वही पूछ लेता है। अभी रहने वो वासुदेव ! अब तुम अपना नित्यकर्म करो, होंठों के अनार और क्या-क्या है, वह सब हमसे बाद में आराम से सुनो ।”

रात में नित्यपाठ समाप्त हुआ, नित्यपाठ के नाम-संकीर्तन का घोष उस खोह से दूर तक गूँजता रहा। उपासना और ध्यान-धारणा समाप्त कर समर्थ व्याघ्राजिन पर लेट गये। कल्याण गुसाइं समर्थ के पैर दवा रहे थे। उस शान्त समय में समर्थ ने बाबल भट्ट की सारी व्यथा-कथा बीच-बीच में टोककर सारे सूत्र जोड़कर सुनी और बाबल भट्ट से कहा—

“शास्त्री जी ! अब निद्रा लेनी चाहिए, रात बहुत हो गयी ।”

उस शान्त खोह में और सारे लोग सो गये थे, पर मायनाक को नींद नहीं आ रही थी। गुफा के बाहर पहाड़ी की टूटी कगार से पानी का प्रवाह गिर रहा था। उसकी गम्भीर आवाज चारों ओर गूँज रही थी। रात की स्तब्धता में वह छवनि और भी तीखी लग रही थी। उसकी लय को सुनते हुए मायनाक कभी इस करवट तो कभी उस करवट पलटता लेटा था।

उसे पानी की ऐसी आवाज की आदत थी। समुद्र में इससे भी भयंकर और कान फाड़ने वाली आवाजें उठती थीं। बरसात के दिनों में दरिया का गर्जन-तर्जन रात-दिन चलता रहता है। चट्टानों जैसी लहरें सागर में उठतीं, एक दूसरे पर टूटतीं, पानी चारों ओर फूटता, चारों ओर झाग ही झाग होता और पानी में अनगिनत बुलबुले उठते। कभी-कभी ऐसी ही लहरें भागतीं-दौड़तीं और तट की चट्टानों पर आकर टूटतीं। उसकी आवाज दूर तक पहुँचती थी। वे लहरें चट्टानों पर टूटने के बाद फिर से दरिया में उतरकर लौटती थीं। उनके पीछे दरिया के पानी में अनगिनत बुलबुले चारों ओर तैरते रहते। ऐसा छवनि-ताण्डव मायनाक के नित्य परिचय का

था। इतना ही नहीं, यह सारा उसके जीवन का अंग ही बन गया था। पर उस खोह के उस बहते सोते जैसी एक लय में उठने वाली पानी की आवाज उसके लिये नवीन थी। इसी कारण उसका सूना-सूना मन उस एक लय में उठते पानी के संगीत में डूब गया था।

कुछ क्षणों बाद एकाएक उसके मन में विचारों का कोलाहल जाग उठा। बीते पखवाड़े में और उसके कुछ दिन पूर्व घटी कितनी ही घटनाएँ जाग-जागकर उसके मन को व्याकुल करने लगीं।

साईमलंग नौका पर आक्रमण किया गया। गहराती रात में मस्तूल के सहारे बढ़ता हुआ मायनाक दरिया में कहीं किसी किनारे पर लगा था। दशमी की रात थी वह। आकाश में चाँद निकल चुका था। दरिया के तट पर छोटे-छोटे केकड़े इधर-उधर निकलते-भागते फिर रहे थे और उस चाँदनी में उनकी आहट पाकर एक ही झपट्टे में उनको पकड़कर खाते सियार इधर-उधर दौड़-भाग कर रहे थे। मायनाक को देखकर सियार डरकर भाग गये।

मायनाक एक ऊँचा पूरा पट्ठा था। उसका साहस भी प्रशंसा के योग्य था। पर पेट में तेग का धाव था। उसमें से कितना तो रुधिर रिस गया था। उस धाव में समुद्र के खारे पानी के कारण भयंकर जलन हो रही थी। साथ ही रक्त की गन्ध से दरिया में आसपास आने वाली मछलियों से भगड़ते हुए लहरों में अपने को संभालते हुए वह मस्तूल पकड़कर वह रहा था। इन सब कष्टों-कठिनाइयों के कारण वह थक गया था। तट के समीप पहुँचते-पहुँचते उसकी चेतना लुप्त होने लगी। पैर भूमि पर टिकने पर तट से लौटती लहरों द्वारा फिर से दरिया में फेंके जाने के भय से वह संभल-संभल कर, डग जमाकर किनारे की ओर बढ़ रहा था। तट की बालू पर आने पर भी वह दस-बीस पग तक सावधानी से चलता गया। योड़ी दूर पर बालू का एक टीला सा दिखा। उस पर उसने अपना शरीर अक्षरशः फेंक दिया। और उसी क्षण उसकी चेतना लुप्त हो गयी। वह कराहता उसी अचेत अवस्था में पड़ा रहा।

उत्तरती रात में दरिया की ठण्डी-ठण्डी हवाएँ बहने लगीं। उस शीतल वायु के स्पर्श से मायनाक की चेतना लौट आयी। वह अब कुछ ऊँचा-ऊँचा

कराहने लगा। पर वहाँ वह कैसे और कब आ पड़ा, यह मायनाक को स्मरण नहीं आ रहा था। उसकी स्मरण-शक्ति पर धुंध छा गयी थी। कुछ समय बाद मायनाक ने अपनी स्मरण-शक्ति पर दबाव डालना प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे उसने अपने विचारों पर वश पा लिया और फिर सारी घटनाएँ स्मरण हो उठीं।

सागर में विश्वासघात के साथ हुए आक्रमण की बात स्मरण आते ही मायनाक के मन में क्रोध जाग उठा। उन समुद्री डाकुओं की भाषा से उसने उनको पहचान लिया। वे सारे ही मूर मेमाणी और कच्छी खलासी थे। वे जाति से कोई भी हों, पर तेगों के बल पर जहाजों के माँझियों को, यात्रियों को और खलासियों को निर्दयता से मृत्यु का मार्ग दिखाने वाले तथा उनका सर्वस्व लूटने वाले वे आखिर डाकू ही तो थे। उन निष्ठुर डाकुओं ने केवल साईमलंग नौका को ही नहीं लूटा था, अपितु उस पर बैठे यात्रियों को और खलासियों को भी काटकर समुद्र में फेंक दिया था। जहाज तोड़ दिया था और समुद्र में हवाओं पर वहने को छोड़ दिया था। इतना सारा करने के बाद पीछे समुद्र पर किसी भी प्रकार के सुराग छोड़े बिना वे अपनी राह चले गये थे। इन सारी घटनाओं को स्मरण कर क्रोध से मायनाक का रक्त उबल उठा। वह उठा और उस धुंधलके में ही दरिया में दूर कहीं उन डाकुओं का सुराग दिखता है क्या, यह देखने लगा। उस परिश्रम से उसके धाव में से फिर से रक्त वहने लगा। रक्त की धारा पेट से नीचे जाँघों और घुटनों तक बहने लगी। मायनाक उस रक्तस्राव से असहाय होकर प्रातः होने की प्रतीक्षा में वहीं पर पड़ा रहा।

अनेक वर्षों से मायनाक इन डाकुओं के बारे में सुनता आ रहा था। उनके तेगों के धाव शरीर पर लिये अनेक खलासी उसे अब तक मिले थे। दरिया में उतरना भी इन डाकुओं ने दूभर कर दिया था। एक-दो बार इसके पूर्व मायनाक का इन डाकुओं से आमना-सामना भी हुआ था। पर उस समय मायनाक के खलासियों की शक्ति कुछ अधिक थी। इसी कारण अंधेरे का लाभ लेकर डाकू बचकर भाग निकले थे। पर अबकी बार उन्हीं डाकुओं ने भरे दिन के प्रकाश में मायनाक के जहाज पर आक्रमण किया था। वह भी सीधे-सीधे नहीं, जहाज में पानी भर जाने से ढूबने का झूठा

दिखावा करके। सहायता को दौड़कर आये सेमनाक और मायनाक की राम-लक्ष्मण जैसे भाइयों की जोड़ी पर उन्होंने दुर्देव का आघात किया था। इस प्रकार एकाएक छल से घात कर मायनाक के भाई को उन्होंने काटकर समुद्र में फेंक दिया था। अब घर पर लौटकर भाभी को क्या बताऊँ? अपनी घरवाली को मुँह कैसे दिखाऊँ? नहीं, नहीं, अब घर जाकर मुँह दिखाने योग्य नहीं रहा। यह घाव प्राणघातक लगता नहीं, फिर भी पेट के इस घाव में टाँके लगाने ही पड़ेगे। समय पर ओषधि करनी पड़ेगी और एक बार फिर से चलने-फिरने की शक्ति जुटानी पड़ेगी। सब ठीक होने पर अमलदार के पास इस घटना की फरियाद करनी ही पड़ेगी। पर वे अमलदार भी न्याय दिलवाने के लिये हमारे पीछे खड़े रहेंगे क्या? वे भी क्या इन्हीं के मीसेरे भाई नहीं हैं? ये डाकू एक बार लूटते हैं तो लूट लेंगे, पर अमलदार का पौसा एक बार पीछे पड़ा तो फिर उससे पिण्ड छुड़ाना सरल नहीं, उससे तो मरना भला।

तब क्या करें?

मायनाक ने लंगोटी की एक चिंदी फाड़ ली और उसी से अपने पेट पर पट्टी बाँधकर वह तट पर ठण्डी व्यार से जूझता पड़ा रहा।

दिन निकलते ही मायनाक जागा तो उसे दिखा कि दूर तक पसरे किनारे पर अनेक शव आ लगे थे। प्रातःकाल शैच के लिये आये दो-चार गाँववाले उन मृतकों के समीप जाकर बोल रहे थे—

“कल कहीं तूफान भी तो नहीं हुआ था।”

“और क्या? रातभर नारियलों के पत्ते तक नहीं हिले। भोर में ही जो हवाएं चलीं, वस वही चलीं।”

“तब इनको हो क्या गया?”

“कौन जाने? मरने वाला भी एक है क्या? ये देखो, चार-पाँच हैं।”

“राम! राम!!”

“और इस और पड़े मुर्दे का तो पेट भी फाड़ दिया है।”

“देखूँ! देखूँ!”

“हाँ! हाँ! उसे छूना मत रे, व्यर्थ की तोहमत गले में आ पड़ेगी।”

इतने में उन्हें विसर्ता हुआ उसी दिशा से आता मायनाक दिखा।

उसने अपना एक हाथ पेट पर कसकर दबाया हुआ था। सभी आश्चर्य से, “वह कौन?” ऐसा सोच ही रहे थे, तभी मायनाक ने एक शव को देखा, दूसरे को उलट-पलटकर देखा! तीसरा शव औंवा पड़ा था, उसे भी उसने उलटकर देखा और “मेरे भाई रेस्स” कहकर रोता हुआ मायनाक उस पर गिर पड़ा तथा कसाई के छुरे के नीचे आये बकरे के समान वह हाथ-पैर झाड़ता-पटकता आक्रोश करने लगा।

मायनाक जहाँ किनारे पर लगा था, वह मछुओं का एक छोटा सा गाँव था। खाड़ी के आसरे से इस गाँव की दस-बीस डोंगियाँ इसी खाड़ी के मार्ग से दरिया में उतरतीं और दरिया बिगड़ने की आशंका होते ही उसी मार्ग झट से गाँव लौटती थीं।

वे मछुए मायनाक को उठाकर गाँव में ले आये। उन्होंने नारियल के झूलते पेड़ों वाले आँगन में उसे रखा और उनमें से एक-दो निकट के गाँव के बैद्य को बुलाने दौड़े। कुछ ही क्षणों में उस छोटे से गाँव के सभी लोगों की भीड़ मायनाक के आसपास जुट गयी। उनमें बूढ़ी स्त्रियाँ कलकल करने लगीं, “ओरी मेरी माँ! जला उसका घर। मरी पड़े उसके घर। कैसे मारा है री!” भीड़ में से हर एक आगे बढ़ता मायनाक का घाव कितना है, यह देखता और दूसरे को अपने हाथ की अंगुलियों से घाव की मापतील बताने लगता तथा मायनाक की आंतें ही नहीं, उसके पीछे का कलेजा भी उसने देखा, यह सौगन्ध खाकर बताता। इधर मायनाक थक गया था। रक्त बहुत वह जाने के कारण आती मूर्च्छा अब उसे तीव्रता से भासने लगी। वह अँखें बन्द कर चुपचाप पड़ा था। समीप ही एक बूढ़ा हाथ में नीम की ठहनी लेकर मायनाक के घाव पर बैठती मिखियाँ को उड़ा रहा था और आसपास चीखती, कलकल करती स्त्रियों को गालियाँ दें-देकर दूर कर रहा था।

टट पर पड़े मृतकों को आग देने गये गाँव के कुछ मछुए अब लौट आये थे। उन्होंने भी मायनाक के आस-पास कलकल करती, रोती-चिल्लाती स्त्रियों को डाँटकर दूर करने का प्रयास किया। इससे इतना ही हुआ कि उस शोर को सुनकर कुछ और लोग उस भीड़ में आ मिले।

योड़ी देर में निकट के गाँव का बैद्य आया और उसके साथ ही उसी

गाँव का एक नाई भी आया। उनके आते ही दूर खड़े लोग फिर से मायनाक के आसपास घिर आये। उनको दूर भगाकर वैद्य ने ओषधि की एक चटनी सी तैयार की और मायनाक की जीभ पर चढ़ाते हुए नाई से कहा—

“देख रे, कितने टाँके लगाने पड़ेंगे? और हाँ, सँभलकर, टाँके मनुष्य को लगने हैं, किसी पशु को नहीं।”

नाई बिगड़कर बोला—

“यह मैं रहा एक और, जो कुछ नक्काशी करनी है वह तुम अपने आप कर लो। अरे घाव में टाँके लगाते-लगाते सिर पर सफेदी उतर आयी! जन्म भर मैंने ढोर ही नहीं फाड़े हैं। क्या समझे? मुझ जैसा कारीगर तुम्हें इन छत्तीसों गाँवों में कहीं भी नहीं मिलेगा।”

बड़बोले नाई को वैद्य ने डाँट दिया और कहा—

“वह सारी कथा वाद में सुन लेंगे, पहले देख ले टाँके कहाँ और कितने लगने हैं। और हाँ, पहले अपने होंठों को टाँक ले। वहुत अधिक बकवक कर रहा है तेरा मुँह।”

इस डाँट से नाई का मुँह कुछ अधिक ही चलने लगा। शान पर सुई धिसते हुए वह अपनी कुलकथा कहने लगा। कौन से युद्ध में उसके बाबा ने कितने पेट टाँके थे, उसकी गिनती बताने लगा।

“इधर तेगों वाले पेट फाड़ते और उधर मेरा बाबा पेट टाँकता, दोनों में मानो चढ़ गयी थी, कौन हारता है, ये या वे।”

आखिर जैसे-तैसे उसने अपना काम प्रारम्भ किया। नाई ने मायनाक के घाव की जाँच कर देखी और उसी क्षण बताया—

“क्या समझे? ओ वैद्य बाबा! अब तुम कह रहे हो, इसीलिये टाँक रहा हूँ इसे, पर बता देता हूँ, यह घाव कोई साधारण नहीं है।”

“तब ?”

“मुझे जो दिख रहा है, वह बता रहा हूँ।”

“अरे हाँ, हाँ, पर क्या बतायेगा भी ?”

“अजी, यह घाव विष कुम्भाये हथियार का है। देखो, यहाँ का मांस कैसा काला पड़ गया है।”

यह सुनकर वैद्य ने आसपास के लोगों को दूर सारकर मायनाक को

उजाले में लेकर अच्छी प्रकार से उसको देखा और जाँचा । नाई का कहना उसे सही लगा । कुछ सोचकर वैद्य ने नाई से कहा—

“तू टाँके तो लगा । औषध का क्या करना है, वह मैं देखता हूँ ।”

इतना कहकर वैद्य ने अपना बटुआ निकाला और उसमें से देखभाल कर उसने एक मात्रा ढूँढ़कर निकाली और आसपास के लोगों को दिखाकर बड़े ही गर्व से बोला—

“इस मात्रा का नाम है विपहरणी, दूसरी भी इसी प्रकार की गुणकारी है, उसे कहते हैं महा विषघ्नी । वह इस क्षण मेरे पास नहीं है । लक्षण के लिये जब हनुमानजी द्रोणाचल उठाकर लाये, उसका एक टुकड़ा नीचे गिरा, वह आ पड़ा पेण के समीप मिर्या पहाड़ी पर । उस छोटी सी पहाड़ी पर जाकर हमारे पिताजी ने दुर्लभ वनस्पतियाँ ढूँढ़कर यह मात्रा तैयार की ।”

इतना सब बताने के बाद वैद्य को कुछ स्मरण आया, उसने निकट खड़े लोगों से पूछा—

“क्यों जी, यहाँ किसी के पास मधु होगा ?”

सभी एक दूसरे की ओर ताकते रहे । फिर एक ने बताया, इस गाँव में शहद तो क्या, आवश्यकता हो तो गोमूत्र भी नहीं मिलेगा । आखिर वैद्य ने तुलसी के पत्तों के रस में घिसकर मात्रा मायनाक को चटा दी ।

तब तक नाई ने भी धाव सी दिया था । उसने उठते हुए बताया—

“क्या समझे ? अपना काम मैंने पूरा कर दिया, पर जहाँ भी इसका गाँव हो वहाँ इसे पहुँचाना ठीक होगा । बहुत दिनों तक इसकी दवा-पानी और सेवा-टहल करनी पड़ेगी । अभी हुआ, वह सब मामूली और थोड़े समय तक के लिये ।”

अपने गाँव पहुँचने पर मायनाक ने नौका की आपदा बतायी तो सारा गाँव रोने-चीखने में डूब गया । कुछ दिनों बाद धीरे-धीरे सारा गाँव और मायनाक का घर भी अपनी पूर्व प्रकृति में लौट आया । मछुओं की पत्तियाँ एक ही हाथ में चूड़ियाँ पहनती हैं । उनके एक हाथ का चूड़ा सदा ही दरिया को दिया होता है, उनका सौभाग्य हर क्षण दरिया की लहरों पर झूलता रहता है ।

मायनाक अपने घर पर कुछ दिन रहा, पर फिर भी उसका दुःख, जैसा होना चाहिए था, कम नहीं हो रहा था। मन की चुभन और टीस भी हल्की नहीं हो रही थी।

कितना तो बलिष्ठ और कठोर था मायनाक, पर इन कुछ दिनों में ही वह दुबला-पतला हो गया! अन्त में उसने निश्चय किया कि यहाँ गाँव में रहकर दवा-पानी ठीक प्रकार से होगी नहीं, और इन समुद्री डाकुओं की आपदा का भी कोई उपाय मिलेगा नहीं, अतः यहाँ से निकलना ही पड़ेगा।

एक दिन उसने अपने कसे में कुछ पैसे रख लिये और किसी गुणी वैद्य को ढूँढ़ता मराड गाँव में आया। वहाँ एक वैद्य ने उसे ओषधि तो दी, पर मायनाक से यह पूछा—

“मेरे बच्चे! तू ओषधि तो अवश्य ले रहा है, पर मन में रात-दिन कुड़ता रहता है, तुझे क्या हुआ है?”

उसने उसांस भर ली। वह जानता था कि वेचारा यह वैद्य रोग को तो ठीक कर देगा, पर मेरे भीतर के रोग के लिये इसके पास कोई दवा मिल नहीं सकती।

एक दिन मायनाक को किसी ने बताया कि काल नदी की तलहटी की एक खोह में एक सत्पुरुष रहता है। उसके पास तन्त्र-मन्त्र है। वह बहुत धूमा होने के कारण उसे अनेक जड़ियों का और वनस्पतियों का ज्ञान है। विशेष बात यह है कि उसके पास बड़े-बड़े सरदार और अधिकारी आते-जाते हैं, वे सभी उसको मानते हैं। यह जानकर मायनाक तुरन्त ही शिवथर की खोह की ओर चल दिया। वहाँ समर्थ के सामने वह जाकर खड़ा हो गया। उसे देखते ही समर्थ ने प्रथम प्रश्न उससे पूछा—

“क्यों जी! जहाज पर काम करते हो क्या?”

यह प्रश्न पूछते ही चकित होकर मायनाक ने समर्थ के सामने दण्डवत् किया और उठकर पूछा—

“आपने कैसे जान लिया जी?”

“इसमें जानने जैसी कौन-सी बात है? मूलतः गोरा तुम्हारा शरीर धाम के कारण श्यामल हो गया है। वह सागर के पृष्ठ पर ही हो सकता है, यह तो कोई भी समझ लेगा। उदर पर यह धाव कैसा? किसकी तेग

पर जा गिरे ? तेग विष-बुझी थी क्या ? धाव अपनी कथा स्वयं कह रहा है ।”

समर्थ ने मायनाक की व्यथा की कथा खड़े-खड़े बताकर उसका निदान कर दिया । समर्थ की वे बातें सुनकर मायनाक ने जान लिया कि जिस पुरुष के सामने वह खड़ा है, वह सामान्य नहीं है । असामान्य बुद्धिमत्ता इसके यहाँ नित्य सेवा कर रही है । इसलिये देर से ही क्यों न हो, पर जिस द्वार को खटखटाना था, वहीं मैं आ गया हूँ ।

तब से प्रतिदिन ही मायनाक अपने जलपोत की कथा, सागर में डाकुओं का आतंक और इससे समुद्री यात्रा की कठिनाइयाँ, इन सभी का वर्णन करता और कोई भी एक समर्थ शासक न होने के कारण सब ओर उठी अराजकता और जनों की दुर्दशा भी वह बताता । अनेक बन्दरगाहों के व्यापार पर इन डाकुओं के कारण हुआ दुष्परिणाम सुनाता । और समर्थ, मायनाक के विषारी धाव पर अनेक वनस्पतियों के मूलों और पत्तों की ओषधि लगाते । साथ ही उसकी कथा सुन-सुनकर सायं-प्रातः एकान्त में मायनाक की कथा को मन में लाकर अपने ही विचारों में कहीं खो जाते ।

इसी प्रकार एक पखवाड़ा बीत गया । भले-भले घरों के और मान-सम्मान वाले लोग समर्थ को मिलने और उनका दर्शन करने आते । अपनी व्यथा-कथा उनको बताते । समर्थ सबको सुनते, सभी को सान्त्वना देते । कभी किसी से कहते—

“मन रे ! तुम्हीं ने पूर्व-संचित किया है ।

फल भी उसी का तुम्हें भोगना है ॥”

कभी किसी को धैर्य देते, कहते—

“सदा सर्वदा ईश सन्निधि खड़ा है, कृपालु बना अल्पसा धैर्य चाहे ।”

किसी की पीठ पर हाथ फेरकर गम्भीर स्वर से कहते—

“समर्थ के भक्त को देखे बला से ।

जन्मा कभी कौन जो इस पूरी धरा से ॥”

कभी संसार के ताप से सन्तप्त किसी व्यक्ति को उपदेश देते—

“रे मन, सज्जन ! भक्ति कर ले राम की ।”

यह सब सुनकर मायनाक को विश्वास हो गया कि यदि कोई इस-

निराशा के अँधेरे में से हाथ में मशाल लेकर माग दिखा सकता है, तो वह एक समर्थ ही हैं, दूसरा कोई नहीं।

■
किसी बृद्धे रीछ के बालों में जैसे जूँ खो जाये, उसी प्रकार इन चार लोगों की गत हो गयी थी। वरंध के पास घोड़े छोड़कर वहीं से बड़े-बड़े खेतों और छोटे-छोटे पानी भरे धान के खेतों को पार कर काल नदी के प्रवाह के साथ-साथ इन लोगों ने धाट चढ़ना प्रारम्भ किया था। कोंकण में उत्तरते हुए वाजीराव और राणोजी ने प्रतिज्ञा की कि शिवथर की खोह में समर्थ रामदास स्वामी का दर्शन किये विना लौटना नहीं है। समर्थ के दर्शन की बात सुनते ही स्वास्थ्य बहुत क्षीण होते हुए भी वाजीराव की पत्नी जानकी भी उनके साथ चली आयी थी। राणोजी ने समधी के घर से एक मार्ग दिखाने वाला सेवक साथ लिया था। पर उसका दिशाज्ञान अनोखा ही था। पश्चिम की ओर डूबते सूरज के विम्ब को दिखाकर जब उससे पूछा कि सामने जो दिखता है वह चाँद है या सूरज, तो उसने उत्तर दिया—

“हम यह तो नहीं जानते। हम कभी इस जंगल में आये नहीं।”

हारकर वाजीराव ने कहा—

“जाने भी दो, राणोजीराव ! यह नदी वह रही है। इसके प्रवाह को लेकर ऊपर चढ़ें तो ?”

राणोजी ने पूछा, “वह खोह इस नदी के दायें है या बायें ?”

“दाहिनी ओर है।”

“तब तो नदी के पानी में उत्तरने की आवश्यकता ही नहीं है। ऐसे कगार की ढलान से होते हुए चलें तो ठीक रहेगा।”

यह सब सोचकर सीधी खड़ी चट्टान की टूटी कगार की तलहटी से ये सभी चढ़ने लगे। पर, पत्थर से ईंट भली, इतना ही हुआ था। इस ढलान पर भी घने ऊँचे वृक्ष आकाश को छूते हुए फैले थे। उनके नीचे भाड़ियाँ नहीं थीं, पर उनके सहारे से चढ़ी लताओं के उलझे-उलझे घने जाल उन वृक्षों और प्रस्तरों में ऐसे फैले थे कि कभी-कभी उस घनी भाड़ी में श्वास लेना भी दूभर हो जाता था।

मार्ग दिखाने साथ आया व्यक्ति भी अब थककर रुथाँसा हो गया था।

वह कुछ जानता तो था नहीं, यों ही आगे-पीछे पूँछ सा मँडराता फिर रहा था । राह ढूँढते, खोजते, कमर के हैंसिये से भाड़-भँखाड़ छाँटते आगे बढ़ते राणोजी को ही उस वेचारे की भी चिन्ता करनी पड़ रही थी । मजाक में राणोजी ने उस मार्ग दिखाने वाले का नाम तखतराव रख दिया था । कुछ भाड़ियाँ काट-छाँटकर आगे बढ़ते हुए राणोजी ने उससे पूछा—

“तखतराव महाराज जी ! आ गयी वह खोह ?”

इन आगे बढ़ने वालों की पीठ न छोड़ते हुए जानकी ने हँसकर धीरे से कहा—

“आ गयी जी, आ गयी ।”

तब राणोजी ने कहा—

“धीरे-धीरे, सेंभलकर आइए महाराज ! किसी शिला पर से खसके तो दाँत मिलेंगे नहीं देखने को ।”

उस घनी भाड़ी से वे सभी जैसे-तैसे बाहर निकले और एकदम उनको सामने कुछ दूरी पर बायीं ओर कगार की ढलान के समीप खोह दिखाने लगी । उसे देखते ही राणोजी ने पूछा—

“वह देखो, यही वह खोह है ?”

आँखों पर हाथ रखकर दूर देखते हुए बाजीराव ने कहा—

“हाँ जी । हाँ, वही है ।”

और पीछे देखकर तखतराव से पूछा—

“क्यों जी तखतराव ! शिवथर की खोह यही है ?”

उसने डरते हुए कहा—

“हाँ जी, हो सकता है, वही हो ।”

“या दूसरी ही है ?”

“हाँ जी, दूसरी भी हो सकती है ।”

यह सुनकर राणोजी ने कहा—

“हाँ होगी, नहीं, नहीं भी होगी, यह भी होगी, दूसरी भी हो सकती है, वाह भई, वाह ! तुम तो निरे गोबर गणेश हो । छोड़ो इसे राव ! चलो आगे । वही है, वह खोह ।”

बीच की भाड़ियों को काटते-छाँटते, बीच की शिलाओं और रुकावटों

को पार करते ये सभी उस खोह के निकट तक पहुँचे तो खोह के पास दो-
तीन लोग किसी को पुकारते दिखे। ये सब भी खोह की ओर चढ़कर
अपना पसीना पोंछते हुए खोह के सामने जाकर खड़े हो गये। उनको देख-
कर बावल भट्ट ने पूछा—

“किस ओर से आये इस भयंकर मार्ग से…?”

राणोजी ने उत्तर दिया—

“जी, ऐसे ही आये विरवाड़ी की ओर से।”

चकित होकर बावल भट्ट ने पूछा—

“इस भयंकर धने जंगल में से होते हुए? और आपके साथ ये महिला
भी आयीं। बड़ा साहस किया आप लोगों ने।”

समर्थ व्याघ्रासन पर बैठे थे। दायें काँख के नीचे छोटी कुबड़ी थी।
सुखासन लगा था। दायें हाथ की अंगुलियाँ संकेत-मुद्रा में टिकी थीं।
अाँखें अर्धोन्मीलित थीं, मानो सीप का आवरण किंचित् खोलकर मोती-
बाहर झाँक रहा हो।

जैसे अंजलि में से अनेक मुन्दर मुघड़ रत्न विखर रहे हों, उसी प्रकार
समर्थ के मुख से स्वच्छ, निर्मल और मधुर शब्द धीरे-धीरे निकल रहे थे।
उनका स्वर गम्भीर था। शब्द-गंगा का प्रवाह कहीं भी स्खलित नहीं हो
रहा था। अर्थ मानो शब्दों के बोलों की प्रतीक्षा करते प्रत्यक्ष खड़े थे।
अन्तरतम से एक भाव से दूसरा सहज शृङ्खला में गुंथा चला आ रहा
था। शब्द भी कैसे थे? सत्य और सरल, सन्तुलित और मधुर, मानो
अमृत का प्रवाह प्रस्फुटित हो रहा हो। समर्थ के सामने ही सुखासन में
कल्याण गुसाई बैठे थे, एकचित्त। एक पालथी पर रखी लकड़ी की पाटी
पर मोटा सा जुन्नरी कागज था। समर्थ के मुख से बाहर निकलने वाला
हर शब्द कल्याण स्वामी तत्काल लेखनी से लिपिबद्ध कर रहे थे। कल्याण
स्वामी का अक्षर भी कैसा? सुवोध, प्रयत्नपूर्वक मुघड़ बनाया सा। उसे
देखते ही चतुरजन समाधान पा लें, ऐसा गोल, सरल और स्वच्छ, मानो
किसी चतुर ने मोती की माला पिरोयी हो। अथ से इति तक एक सा, और
पंक्ति से पंक्ति का स्पर्श नहीं।

समीप रखे लकड़ी के खोखे में सीस, कतरनी और नाना जाति के

लेखनी-हिंगूल और लेखनी बनाने की छोटी सी छुरी जैसी यत्नपूर्वक चुटायी विविध सामग्री रखी थी। थोड़ी दूर मसि (स्याही) का पात्र था। हर बार कल्याण स्वामी मसि-पात्र में लेखनी डुबोते, बाहर निकालते समय मसिपात्र के मुख पर लेखनी को ठीक से साधकर उसे उठाते थे। कागज कुछ टेढ़ा कर बहुत ही चतुरता से समर्थ की बहती वाग्धारा के साथ कल्याण स्वामी भाग रहे थे। समर्थ के वागीध के लिये मानो कल्याण स्वामी सहस्रार्जुन बन गये थे। आसपास बैठे सभी जन साँस साधकर गुरु-शिष्य की वह लीला देख-सुन रहे थे।

समर्थ कह रहे थे—

“शरीर परोपकार में रमे। बहुतों के कार्य साधे।

कमी न होने दो। कभी किसी एक को ॥१॥

कसक पीड़ा जानो सदा। यथाशक्ति कार्य साधो सदा।

बचन मृदु ही बोलो सदा। सर्वकाल सभी से ॥२॥

परदुःख से दुःखी। पर-सन्तोष से सुखी।

ऐसे जोड़ो सभी को। मधुर-मृदु बोलों से ॥३॥

बहुतों के अन्याय भूलो। बहुतों के कार्य जोड़ो।

अपने सदृश देखो। सदा सभी जन को ॥४॥

अन्यों का जानो अन्तःकरण। साधो वैसा ही वर्तन।

लोग परखो नित्य। नवीन नाना विधि के ॥५॥

सन्तुलित बोल भला। तत्काल प्रतिवचन भला।

ओध वसे दूर सदा। क्षमारूप बन जा ॥६॥

सदा सरे दूर तन्द्रा। यत्न पूरे नित्य सदा।

शब्द-मत्सर न हो सदा। कभी कहीं किसी से ॥७॥

उत्तम पदार्थ अन्यार्पण। विवेक शब्दों का उत्तम।

साधो सदा सावधान। संसार सारा अपना ॥८॥

मरण-स्मरण मन में सदा। हरिभक्ति-आदर सदा।

मृत्यु-पश्चात् कीर्ति शेष। साधो! इसी प्रकार ॥९॥”

अभी-अभी खोह में पहुँचे लोग नदी पर स्नान कर चुपचाप आकर श्रोताओं में बैठे थे। समर्थ अब मौन हो गये थे। उन्होंने आँखें बढ़ कर

ली थीं। कल्याण गुसाई ने भी कागज सेभाला, किंचित् भी आवाज न करते हुए अपनी सारी सामग्री व्यवस्थित की। श्रोता सभी वैसे ही शान्त और निश्चल बैठे थे।

कुछ क्षणों के पश्चात् समर्थ ने आँखें खोलीं, आसमन्त देखा और बाद में मन्द स्मित हँसे। सभी श्रोता चट-चट उठे और समर्थ के चरणों में माथा टेकने लगे।

ननावरे बाजीराव ने दण्डवत् किया और उठकर जानकी से कहा—
“माथा टेको।”

जानकी कुछ आगे बढ़ी। उसने अपना आँचल भूमि पर किंचित् सापसारकर उस पर माथा टेका। राणोजी भी उठकर दण्डवत् करके किंचित् एक ओर हटकर खड़ा रहा और अब क्या घटता है, इस ओर कौतूहल से देखता रहा।

बाजीराव समर्थ के सम्मुख खड़े थे। कुछ रुककर उन्होंने समर्थ से निवेदन किया—

“मुझे पहचाना नहीं, स्वामी ?”

स्नेहभरी दृष्टि से उसे निरखते हुए समर्थ ने कहा—

“बाजीराव ननावरे देशमुख ! पहचान न हो, यह कैसे हो सकता है। अजी, रायरेश्वर पर घटी घटना तो हमारे मन की घरोहर है। कब आना हुआ ? किस निमित्त ? साथ में गृहलक्ष्मी भी दिख रही है।”

जानकी ने प्रसन्न मन से एक बार फिर से बन्दन किया और धीरे से कहा—“जी”।

अत्यन्त ममता से समर्थ ने कहा—

“विटिया ! ऐसा धोर महारण्य चलकर आयी हो, कहीं कष्ट नहीं हुआ ?”

उत्तर दिया बाजीराव ननावरे ने—

“आपके दर्शन की उत्कण्ठा थी, आने का हठ ही कर बैठी थी।”

समर्थ ने तुरन्त कहा—

“पहले आशीष नहीं दिया था, अब देता हूँ, ‘कल्याणमस्तु’। ये दूसरे ज्ञोन लाये हो साथ, ननावरे देशमुख ?”

“जी ! ये महाराज के दोलत बंकी । राणोजी देशमुख कहते हैं : इनको ।”

“वाह जी; बड़े ही मान-सम्मान के लोग आज अपना मार्ग किंचित् मोड़कर इस ओर आये हैं । ठीक है, सभी का आना कहाँ से हुआ ?”

“जी, विरवाड़ी में समधी रहते हैं । उनके पूत के विवाह की बारात जानी थी वलणकोंडी की ओर, उसी बारात के साथ हम सभी गये थे । बारात लौटी । आपका निवास यहाँ है, यह ऊपर घाट पर ही जानकारी मिली, तब बिरवाड़ी से सीधे इस ओर आ निकले ।”

समर्थ चकित होकर बोले—

“अरे ! उस भयंकर मार्ग से ? कोई मार्गदर्शक ?”

यह सुनकर बाजीराव राणोजी की ओर देखकर हँसने लगे । राणोजी ने भी हँसी छिपाते हुए मुख एक ओर कर लिया ।

समर्थ ने आगे पूछा—

“वलणकोंडी की ओर क्या-क्या देखा ?”

“नदी का गम्भीर डोह, बड़े-बड़े भयंकर मत्स्य और सीपियाँ ।”

यह कहकर राणोजी ने आसपास देखा । तत्काल राणोजी का मन ताढ़कर समर्थ ने अपनी बात बहीं रोक ली । क्षणभर के बाद कहा—

“आप सभी थके हैं, क्षणभर विश्राम करने के पश्चात् ही ये सारी बातें होंगी । कल्याण गुसाई ! अरे आज तुम्हारे घर पाहुने आये हैं । दोपहर की व्यवस्था होगी क्या इन सभी की ?”

कल्याण गुसाई ने नम्रता से उत्तर दिया—

“आपकी कृपा से सारी व्यवस्था होगी ।”

प्रसन्न होकर समर्थ ने कहा—

“तब तो रघुपति को नैवेद्य समर्पित करो, होने दो सीताकान्त-स्मरण और सभी को प्रसाद परसो ।”

शिवथर खोह के सामने एक बड़ी सी चट्टान थी । उसपर चढ़ना अत्यन्त कठिन । सामान्य मनुष्य उसका आकार-प्रकार देखकर ही डर जाता । उसपर बैठने पर सामने से आते-जाते सभी दिखते थे ।

तीसरे पहर समर्थ उसी चट्टान पर सहजासन लगाकर बैठे थे । दोनों

हाथ घुटनों पर थे । उनसे थोड़ी दूरी पर राणोजी और बाजीराव अत्यन्त मर्यादा से बैठे थे । वलणकोंडी की ओर ही नहीं, पूरी कोंकणपट्टी में क्या-क्या देखा, वह सब वे समर्थ को बता रहे थे ।

समर्थ ने पूछा—

“रायरी का किला कैसा लगा ?”

बाजीराव ने उत्तर दिया—

“वहुत बाँका । राणोजीराव ! आप ही बताइए ।”

राणोजी ने बताया—

“ऐसा स्थान चौरासी किलों में नहीं है । किला लगभग डेढ़ गाँव ऊँचा । चारों अंगों से देलाग कगार ।”

प्रसन्न होकर समर्थ ने कहा—

“ईश्वर ने वह पर्वत किले के लिये ही गढ़ा है ।”

कुछ क्षण रुककर दृष्टि को मानो किसी दृश्य पर केन्द्रित करते हुए समर्थ ने कहा—

“हम भीख माँगने वाले, हमें कौन मना करता ? एक बार ऊपर चढ़कर सारा किला धूमकर देखा । आकाश स्वच्छ हो तो वहाँ से सागर तक दृष्टि पहुँचती है । समुद्र-तट पर दृष्टि रखने के लिये वैसा स्थान दूसरा नहीं ।”

फिर से कुछ क्षण रुककर, समर्थ दृष्टि को आकाश में ही स्थिर करते हुए कहने लगे—

“सागर-तट ! असहाय ! असुरक्षित !! कौरव-सभा में खड़ी द्रोपदी सा । कोई भी उठे और उसके वस्त्रों को हाथ लगाये, रोकने वाला कोई नहीं ।

“वहाँ की सारी प्रजा एकवस्त्रा द्रोपदी के समान ही किसी उद्धारकर्ता की प्रतीक्षा कर रही है । सारा कोंकण व्याकुल हो उठा है, चारों ओर बिखर रहा है । किसी का पैर ठिकाने पर नहीं है । जिसकी लाठी उसकी भैंस । तलवार के बल पर चाहे जो हड्डप ले । माँ-बहिनों का आता तो कोई वचा ही नहीं है । कितनी ललनाएँ जलपोतों में भरकर भगायी गयीं, कितनी ही रमणियाँ दुर्देशा भोग-भोगकर यमलोक सिधार गयीं ।

“इन सभी में हम संन्यासी । केवल सान्त्वना से अधिक क्या दे सकते

हैं ? बताते हैं कि देव सदैव समीप ही हैं । वे कृपालु हैं, थोड़ी सी परीक्षा ले रहे हैं । हमारी इन बातों पर विश्वास होता नहीं । जनस्वभाव तत्काल कुछ पाना चाहता है । दूर तक की गणना करना उसके लिये सम्भव नहीं । अधिक समय तक धैर्य धरना उसको भाता नहीं । यहाँ पर्वतों और कन्दराओं में आसन लगाकर हम बैठे हैं । इतना ही उनको आश्वासन है । पर कोई खड़गहस्त समर्थ व्यक्ति इस ओर न आया, तो केवल आध्यात्मिक समाधान बहुत दिनों तक धैर्य और साहस नहीं दे सकेगा ।

“हम इतना सब किसके लिये कह रहे हैं, यह आप समझ रहे हैं । आप सभी समझदार हैं, अधिक व्यावर्ता नहीं ।”

इतना कहकर समर्थ मौन हो गये ।

रात में बहुत देर तक समर्थ जानकी को सम्बोधित कर वातें करते रहे । उसे अनेकानेक दृष्टान्त बताये । कह रहे थे, “यह सारा महाराष्ट्र दुःखी है । जिनका घर टूटा, और-छोर तक नहीं बचा, वे गरीब किसकी ओर देखकर जीवन जियें ? इसलिये यह जो मानव-देह मिली है, इसको सार्थक करना चाहिए । दुःखी लोगों के अंसू पांछने के लिये हाथ आगे बढ़ना चाहिए ।”

मनुष्य जन्म के विषय में बोलते हुए उनके मुख से एकाएक धड़धड़ औरियाँ निकलने लगीं—

“नरदेह स्वाधीन । कभी नहीं पराधीन ।

कर इसे परोपकारकीण । कीर्तिरूप बनो ।

देह परमार्थलीन । तभी वह धन्य-धन्य ।

नहीं तो नष्ट व्यर्थ हीन । नाना अपघात मृत्युपंथ ।”

समर्थ इसी तत्त्व की व्याख्या करते हुए कहने लगे, “वैसे सोचें तो शरीर भी क्या है ? पाँच महाभूतों की पुतलीमात्र । दुःख का घर । सभी दुर्गन्धियों का स्थान । नाना रोगों का आगार । इसकी दुर्वलता भी कैसी ? तो, सुनो, “रोम-रोम में उपजे कीड़ । ब्रण हो तो पड़े कीड़ ।

नाना प्राणियों के । उदर में कितनी जन्तुकीड़ ।

दाँत कीड़ों से घिसें । अँख कीड़ों से नसें ।

कान पीव से दुखे । मक्षिकादंश की गणना क्या ?

ऐसी इस नरदेह की फजीहत होती रहती है। इसी देह का सोना भी हो जाता है, यदि इसका क्षरण ईश्वर-कार्य में हो, यह जन-जन के काम आये, तभी। कस्तूरी के गन्ध की संगत से माटी में सुगन्ध उत्तरती है, ऐसा ही इस शरीर का हो। ऐसे कामों में रमा यह तनिक सा शरीर जगदाकार हो जाता है। जन-जन के सुख के लिये क्षीण होने पर इसका मूल्य अनमोल हो जाता है, ऐसे धन्य-धन्य शरीर की तुलना इस वसुन्धरा से ही की जाती है। अन्य तुलना ही नहीं होती उसके लिये।"

नाना प्रकार से प्रत्यक्ष उदाहरण देकर बोलते-बोलते समर्थ का स्वर आवेश से भर गया। वे गम्भीर घोष से सारी गुफा को निनादित करते हुए कहने लगे—

"अरी बिट्या ! कहाँ का कौन ननावरे देशमुख । किस भाड़ की पत्ती । कौन उसे पूछता था ? पर उस बौने से नर ने निश्चय जो किया कि कुछ भी हो भूकना नहीं ! दबना नहीं ! ! अन्याय के आगे हारना नहीं ! ! ! वह तनकर खड़ा हो गया। उसने अपनी वित्ताभर छाती फुलाकर आह्वान किया, कहा—'कौन है वह अत्याचारी इदिलशाही ? मैं मानता नहीं उसे। तिरस्कार बरता हूँ उसके फरमानों का।' इस सबका परिणाम क्या हुआ ? कुछ क्षणों के लिये लगा कि 'अरेरे; पिस गया, नष्ट हो गया बेचारा ! मिट्टी में मिल गया। कहीं कोई दीपक भी नहीं चचा। घर ही डूब गया। कुल समाप्त हो गया।' तटवासी लोग निन्दा करने लगे, 'कैसा यह मतिमन्द ! इस कुल में ऐसा कोई था ही नहीं। यह तो कोई पागल ही उत्पन्न हुआ। पुरखों की कीर्ति कलंकित की, फँस गया। थूः थूः इसके जीवन पर।'

"वर बाजीराव के मन में भरोसा था कि वह जो भी कर रहा है, इसी में जन्म की सार्थकता है। अपना साहस मुट्ठी-मुट्ठी बढ़ाकर इस अन्यायी सत्ता को इसी प्रकार ऊचे स्वर से ललकारना चाहिए। कारागार में सड़ना पड़ा, यमराज सामने आ खड़ा हुआ, भय दिखाने लगा, पर इसका साहस डिगा नहीं, वही काम आया।

"यही बाजीराव एक कन्या को विवाह कर घर लाया। उस द्वार की लता उठाकर अपने द्वार रोप ली। वह भी इसी के घर का नाम लगाने

लगी। उसी घर से एक रूप हो गयी। सावन वरसने लगा, द्वार के बूँझों पर भूले भूलने लगे, चार बहू-ब्रेटियाँ उन पर भूलने लगीं। पैरों की छुन-छुन करती, आकाश तक भूला भूलती, वह भी बहू-ब्रेटियों के साथ फूल-पत्तियाँ लाने घर-आँगन के बनों-उपवनों में धूमने लगी, शंकर-पार्वती को पूजने लगी, गीत गाने लगी।

“अगहन आया, घर-घर धन-धान्य से भरने लगा। इस जानकी ने नव-दुर्गा की मालाएँ बाँधीं, भगवती की प्रार्थना की, ‘मेरे भर्तार दीवान में सरदार बनें, चपल अश्व पर बैठे धूमें, कान में मोती पहनें, कलाई में सोने के कड़े पहनें, पैर में चाँदी का तोड़ा शोभे, मस्तक पर जरी पगड़ी पहनें।’ इसके मनोरथ सिद्ध हुए क्या? नहीं, नहीं। ठीक उल्टा ही हुआ। अंजुरी भर सुख माँगने गयी थी, तो झोली में आ पड़ी राख। भर्तार के हाथ-पैरों में लोहे की शृङ्खला भनभनाने लगी। उससे इसके कान भर गये। इसने भय से कान बन्द कर लिये, आकन्दन कर भगवती के पैरों पर माथा ठोककर पूछा—

“‘माँ भगवती! मैंने तेरे पास यही माँगा था?’

“फिर ऐसे अवसरों पर कोई साधारण स्त्री जैसा करती है, सामान्यतः वही इसने भी करना चाहिए था। वे कैसा करती हैं? भर्तार के नाम की माला जपती हैं, स्वयं को चार भीतों में बन्द कर लेती हैं। व्रत-उपवास करती हैं। और इसी प्रकार अपने को सुखा लेती हैं तथा एक दिन पैर धिस-धिसकर मर जाती हैं। उसे दाग देते समय सगे-सम्बन्धी उसकी कीरत गाते हैं, कहते हैं—‘पति कारागार में गया, तब से इसका नख भी किसी को दिखा नहीं। ऐसी पतिव्रता! कलियुग में साक्षात् सीता-सावित्री!’

“अरे, दुर्वलों का यही न्याय होता है। अत्याचार के नीचे पिसते हैं, और इसी प्रकार पिसते-पिसते कीरत गाते हैं, ‘कितनी शान्तता से सब सहा! किंचित् भी चीख नहीं निकली। मुँह से आवाज नहीं निकली। कहीं किंचित् भी हूँ-हाँ नहीं हुई।’

“पर इस जानकी ने जगत् के विपरीत किया। अवभृथस्नान से गीले केश-संभार को हाथों से सेवारती, आक्रोश करती द्वौपदी अपने बन्धुराज के द्वार पर जा खड़ी हुई और आकाश भेदकर उसे पुकारकर कहने लगी—

‘गोविन्द द्वारिकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय ।

कीरवार्णवमग्नां मामुद्वरस्व जनार्दने ॥’

“हे श्याम ! करुणाधन !! लीला के लिये हाथ में धारण किया हुआ वह चक्र तुम्हारी भगिनी के ही काम न आया तो उसको हाथ में धारण करने का क्या लाभ ? क्या वह शोभा का फूल या गजरा मात्र है ?

“श्रीहरि पीताम्बर सेंभालते हुए उसकी सहायता के लिये भागते आये और उन्होंने सारा राक्षसदल नष्ट कर दिया ।

“वैसी ही यह जानकी । अपने बन्धु को ढूँढ़ती जंगल-जंगल घूमी । भय को माना नहीं, व्यर्थ की लज्जा ओढ़ी नहीं । और एक दिन उसका छोटा सा भाई उसे मिला । अपना सारा दुःख-सर्वस्व उसके आगे निवेदन कर वह लड़की चुप हो गयी ।

“परिणाम क्या हुआ ? कि घाटमाथे पर खड़ा सारा दैत्य-संभार नष्ट हो गया । उस दैत्यसंहार का आरम्भ वाजीराव की मुक्ति से प्रारम्भ हुआ । केवल दो मानवों ने अपनी मुटुओं भर काया से वह दुर्घट कार्य सम्पन्न किया । वही कार्य इस रूप में फूला-फला, अन्यथा उनके शरीर कहीं किसी माटी में मिल गये होते । पर आज उनका ऐसा सोना दमक रहा है ।”

यह सब सुनकर जानकी ने सबसे छिपाकर अपनी आँखें पोंछ लीं । क्षणभर उसे लगा कि उठकर समर्थ के चरणों में गिर रख दे । पलभर में उसने अपने को सेंभाल लिया, वह अपने स्थान पर ही बैठी रही ।

एकाएक समर्थ का स्वर शान्त और स्थिर हो गया, वे शान्तचित्त से चोलने लगे—

“वेचारा कोंकण ! वर्षभर खपता, तब कहीं मास-दो मासभर माँड पीता । छाती फूटने तक वहाँ के लोग कष्ट करते हैं, फिर भी तन को ढकने तक के लिये बस्त्र नहीं । विछाने के लिये नहीं । घर में घड़ों और ठीकरों को छोड़कर पात्र नहीं । कष्ट करते हुए ही यहाँ का मानव जन्म लेता है और कष्ट करते-करते ही एक दिन अचानक मर जाता है । इस भूमि के प्रति इतनी निष्ठा रखने वाला यह मानव । फिर भी इसके पीछे दुर्दशा ही पड़ी रहती है ।

“अब यह बाबल भट्ट । क्या हुआ इसके साथ ? पुरखों ने किसी की

धरोहर प्राणपण से जतन की, समाज की मानकर। धर्म करने गया, कम भोगना पड़ा इस पीढ़ी में। उस धरोहर का रक्षणकर्ता बाबल भट्ट। इसके बाप को तेगों से काटकर फेंक दिया और यह स्वयं यातनागार में सड़ता पड़ा रहा एक पैर खोकर।

“यह भी अकेला दुःख से रोता रहेगा तो अकस्मात् कभी मर जायेगा। पर सारे कोंकण से एकाकार होकर दुःख को गाते हुए चारों ओर घूमता रहा तो ? कोंकण जाग उठेगा।

“यह दूसरा, मायना क भण्डारी। तेग का घाव इसके उदर में हुआ। तेग विषबुझी थी। अजी, किसी एक के उदर में तेग घोंप दी, इसका क्या कीतुक ? ऐसा तो कितनों के साथ होता है। नाना प्रकार के दुःख।

“अनेक जन राजदण्ड भोगत।

जैरदण्ड चावुक खात।

पदतल मार देत।

जल में डुबोत, हाथीपाँव देत।

हाँक हाँक के पीड़त।

कर्णच्छेद प्राणच्छेद।

हस्तच्छेद, पादच्छेद,

जिह्वाच्छेद, अधरच्छेद,

तीर की मार मारत,

नित नित देत सूली।

नेत्रवृष्ण फोड़त,

नखनखों में सुई देत,

कान में खूंटी देत,

गुदा में खूंटा ठोकत,

खाल छील काढ़त,

विष, सीसा मुख में घोलत

अन्त सिर छाँटत अन्त करत ॥

“अरे सपूत ! तुझे कितना बतायें ?

“तेरे शरीर की शिराएं खींच डाली गयी हैं क्या ? तुझे कभी किसी ने

मशालों से दागा है क्या ? तेरा कभी कड़ेलोट किया गया है क्या ? तोपों के मुख पर बाँधकर तुझे उड़ाया गया है क्या ? तूने तो यह कुछ भी नहीं भोगा है ।

“तब ऐसा क्या और कितना हुआ है कि इतना आक्रोश कर रहे हो ?

“अरे मायनाक ! किसी एक के दुःख का क्या कौतुक ? अरे, सारा का सारा देश उद्धवस्त हो रहा है । तुम्हारा अकेले का दुःख वया बड़ा है ? तेरे जैसे तो अब तक लाखों मर-खप गये । तुम्हारे नाम से कौन तर्पण करता बैठेगा ? यहाँ तो हर एक को उसी का दुःख प्राणों की शक्ति से भारी पड़ रहा है । तुम्हारे रोने की ओर देखने के लिये किसे समय है ?”

समर्थ के मुख से ऐसे ही वाक्य एक के बाद एक निकल रहे थे । उनका स्वर कुछ उग्र सा बन गया था । वे क्षण-आधा क्षण रुके, उनके स्वर में थोड़ा परिवर्तन आया, उसमें आश्वासन जागा, अभय ध्वनित होने लगा, उन्होंने कहा—

“अरे, संकोच से इतना छोटा क्यों बनता है ? तू चाहे तो इस सारे ब्रह्माण्ड का एक ही आचमन कर सकता है । अरे, तू सागर का सपूत है । उसके सभी पूतों के दुःखों का उद्गता बनकर इस शैल पर शंख लेकर, गले में झोली बाँधकर, इस दुःख को गाता हुआ देश-पर्यटन कर । तेरी पुक्कार सुनकर कोई रामराजा जाग उठेगा । उसके एक हाथ में खड़ग होगा, दूसरा हाथ अभय देता होगा । उसकी सहायता के लिये नलनील जैसे साहसी वीर होंगे, जाम्बवन्त होंगे, सागर पर सेतु बांधेंगे और दैत्यों का निर्दलन करेंगे ।”

समर्थ की इस विद्युत् जैसी वाणी से सारे लोग स्तब्ध हो गये, कुछ शब्द कहने का भी किसी में साहस नहीं हुआ । कल्याण गुसाइं ने गम्भीर उसाँस ली, जो क्षणभर में सभी के मन तक स्पर्श कर गयी ।



दूसरे दिन प्रातःकाल पूरव की ओर के पर्वत-शिखर से सूर्यविम्ब आकाश में उदित हुआ ।

ननावरे, राणोजी और अन्य भी सभी शिवथर से लौटने की तैयारी में थे, पर किसी का भी पग आगे नहीं बढ़ रहा था । जानकी पलटकर एक

ओर खड़ी आँखें पोछ रही थीं। समर्थ सभी को सावधानी से जाने के लिये सूचना दे रहे थे। उन्होंने जानकी की अवस्था देखी, वे उसके सामने जा खड़े हो गये। उसके मस्तक पर हाथ रखकर कहने लगे—

“क्यों मेरी माय जानकी ! आँखों में सावन क्यों उत्तर आया ?”

उसी क्षण जानकी समर्थ के पैरों में भुक गयी, उसने समर्थ के चरण आँसुओं से धो दिये। समर्थ ने उसे ममता से उठाया। अपने सम्मुख खड़ा किया और कहा—

“माँ ! अरे बाजीराव तो हमारे लिये पूत सा। उसे तेरे आँचल में दे दिया है। उसका तन सार्थक हो, ऐसा कुछ करो। बस करो, चलो अब। कभी न कभी माया का पाश तोड़ना ही पड़ता है। हम निःसंग वैरागी, हमें और अधिक ममता में मत डालो।”

मायनाक की ओर देखकर समर्थ ने कहा—

“सुनो मायनाक ! कल हम कुछ ऊँच-नीच कह गये हों तो क्षमा हो।”

फिर कल्याण गुसाई की ओर देखकर समर्थ ने कहा—

“कल्याणराज ! मायनाक को गोखरू के पत्ते जितने भी मिलें, दे दो, जिनमें से हरा रस निकल सके ऐसे। मायनाक ! यही रस निष्ठा से लेते रहो।”

मायनाक ने विनय से कहा—

“महाराज, आपकी झाड़-पत्तियों की दवा भी कितनी गुणकारी है !”

हँसकर समर्थ ने कहा—

“हाँ जी, हाँ। यह सह्याद्रि लक्ष-लक्ष वनस्पतियों का आकर है। एक ऐसी कि पाँच पर्ण मुख में रखो तो दिनभर भूख की पीड़ा न हो, एक ऐसी कि जिसकी जड़ भी हाथ में धरो तो प्रवास के कष्ट जाते रहें, एक ऐसी कि निष्ठा से सप्ताहभर सेवन कर पथ्य रखो तो वृद्धापकाल में भी वाल्यकाल जगे, एक ऐसी कि उसका टुकड़ा भी हाथ में रखें तो घने अन्धकार में भी मार्ग दिखे। पर इन सभी की परख किसे है ?

“अब यह सब रहने दो।

“दौलतबंधी, राजा शिवा की भेट कहाँ होगी ?”

“जी महाराज, महावलेश्वर पर।”

“देखो, हमारे बावल भट्ट को सँभालकर ले जाओ।”

“जी, महाराज। वरंध गाँव में घोड़े हैं ही, कुछ अधिक की आवश्यकता पढ़ी भी तो वहाँ एक घोड़ा खरीद भी लेगे।”

“ठीक, ठीक। तो अब अपना मार्ग देखो। नित्य काम करते, आते-जाते, रघुवीर का स्मरण रखो। चलो अब। जय जय रघुवीर समर्थ।”



महावलेश्वर के महादेव मन्दिर के पीछे पश्चिम दिशा की ओर नागफणी नाम की टूटी और बेलाग कगार थी। पश्चिम की ओर से भरभराकर हवा वहती तो इतनी कि ठीक कगार के समीप पहुँचा जवान भी थप्पड़ खाकर इस ओर उलट-पलटकर गिर पड़े। चारों ओर जामुन की धनी राई। कहाँ गेली, हिरड़ी कारबी, बहेड़ी के धने भुण्ड के भुण्ड गगन में माथा काढ़े खड़े। ऐसे धने वन में भरे दिन में ही पशु निःशंक धूमते। केवल कगार के ठीक नीचे पथरीली भूमि होने के कारण उतना टापू सा जंगल के पसारे से अलग और अछूता था।

उस कगार से राजे शिवाजी कोंकण को निरख रहे थे, कोई रत्न-पारखी जैसे हथेली पर रखकर पानीदार मोती को परखता है, निरखता है। आसपास पसरा फैला सह्याद्रि का भयंकर उग्र रूप, एक-एक अतुल बली शिखर आकाश भेदकर ऊपर निकलता हुआ। उसकी दरिया और खोहें मगरों के खुले जवड़े जैसे, मानो खाने को आगे बढ़ रहे हों।

ऐसी दरियों, खाइयों और खोहों में से वहने वाले गरजते, बल खाते, धरा को चीरते, पाताल तक कूदते पानी के सोते। उनके दोनों ओर उलझी-उलझी बढ़ी झाड़ियों और वृक्षों की धनी अन्धकार भरी राइयाँ। उस अंधेरा भरे वन से इस आकाश छूते पर्वत का रूप कुछ और ही गूढ़ और भयंकर दीखता। लगता कोई भयंकर आरा दाँतों को पसारे खड़ा कर रखा हो। ऐसे कितने ही पर्वतों के ओर-छोर दूर तक कोंकण में घुसे थे।

आकाश में यहाँ-वहाँ तैरते मेघ-मण्डलों की उत्तरती-तैरती छायाएं सारे कोंकण पर दौड़ लगा रही थीं। उनकी दौड़धूप से सारा कोंकण धूप-छाँव के फिलमिल में से डूबता-निकलता सा लगता। धनी-धनी झाड़ी से वहुत

दूर नारियलों के बड़े-बड़े पत्तों को छा-छाकर बनायी गयी कुछ झोपड़ियाँ, कुछ खपरैल के घरों से सजे गाँव धुंधले से दिख रहे थे। ऐसा वह सारा ही रूप, जो सुन्दर होने के साथ ही उग्र और भयंकर भी था, पर केवल नये व्यक्ति के लिये। सिंहशावक को सिंह के नखों का और तीखी दाढ़ों का भय नहीं लगता। उसी प्रकार राजा शिवा को भी था। यह सारा ही देश उनका अपना ही तो था। उनके और उस प्रदेश के वीच अपरिचय की, या नवीनता की कोई वाधा नहीं थी। इसी कारण, जैसे पुरखों ने जिसे कौतुक से बनाया-बढ़ाया हो, उस घर-आँगन की बगिया को हम कौतुक से निरखते हैं, उसी प्रकार और उसी दृष्टि एवं कौतुक से राजे शिवाजी कोंकण को निरख रहे थे। राजे कोंकण के उस रूप-दर्शन में इतने खो गये थे, मानो उनकी समाधि लगी थी। वे एकचित्त और एकाग्र हो गये थे। उनकी वह तन्द्रा भंग ही नहीं हो रही थी। उस अवस्था में से अनिच्छा से ही कुछ संभल कर पीछे खड़े अण्णाजी से राजा ने कहा—

“कैसा सुन्दर प्रदेश है !”

“जी, महाराज ! जैसा पैरों तले बिछाया गया रेशमी कालीन !”

“अण्णाजी ! इसी प्रदेश को देखकर मलिकुत्तुजार ने कुछ और ही कहा था। मोरे और शिर्के, दोनों की तेगों का पानी चखने पर प्राण छोड़ते समय उसने इस घने प्रदेश में पैर डालने की भूल पर तौबा की थी। उन पछतावे भरे शब्दों की प्रतिध्वनि आज भी इन प्रस्तरों के दरियों, गुफाओं और खोहों में गूंज रही है। यहाँ से सागरसीमा का अनुमान होता है।”

“सागरतीर जाना……”

“नहीं, अण्णाजी ! अब तक सागर-दर्शन नहीं हुआ है। पर मन में यह इच्छा बार-बार उठ रही है।”

इतना बोलकर राजे एकाएक स्तब्ध हो गये। कुछ क्षणों पश्चात् उसांस भरकर कहने लगे—

“अण्णाजी ! पिछली बार आप हमारे साथ……”

“नहीं था, स्वामी ! इच्छा तो बहुत थी।”

“यह जो बायीं और दिख रहा है, वह मकरन्दगढ़ है।”

“वह जो घोड़े की जीन सा दिख रहा है?”

“जो दायें हाथ की ओर दिखता है वह कांगोरीगढ़, उसके पीछे दिख रहा है चन्द्रगढ़। उसी की तलहटी में दुबका छोटा सा गाँव है उमरठा, तानाजी का गाँव है वह।”

“और पार धाट का मार्ग क्या उस सामने खड़ी पहाड़ी के नीचे से जाता है, स्वामी ?”

“हाँ। उसी धाट मार्ग को अपनी गोद में लेकर वह पहाड़ी खड़ी है। उस पहाड़ी को भोरपा की पहाड़ी कहते हैं। उसके शिखर पर एक शिवालय है, ठीक उसी पहाड़ी पर रडतोड़ी का धाट उतरता है।”

“ठिकाना बहुत बाँका है, इसे बुजियों से सुरक्षित किया तो ?”

“आपकी सलाह नामी है, पर अभी तो वह पहाड़ी मोरे के आधिपत्य में है।”

“एक प्रार्थना है, महाराज !”

“कहिए।”

“गरज परे कछु और है, गरज सरे कछु और। आपने स्वयं आगे बढ़कर चन्द्रराव मोरे को पदासीन किया, राजा की पदवी प्राप्त होते ही वही मोरे आज आँखें दिखा रहा है।”

राजे कुछ उग्र स्वर से बोले—

“परिणाम पाने के लिये समय कितना ?”

कुछ क्षण रुककर अण्णाजी ने कहा—

“इतने समीप से भी जयवल्ली आँखों में नहीं आ रही है।”

“हाँ पन्त ! वह तलहटी में ही है। इस महारण्य में वह व्याघ्र की गुफा है। यह जंगल भी कितना विकट है ! ऐसे-वैसे को तो ईश्वर का नाम स्मरण करा दे, इतना धना।”

“जी, महाराज ! आप रायरी के विषय में कुछ कह रहे थे।”

“वह देखो, दायीं ओर, देखा ? इस समय ऊपर का मेघखण्ड एक ओर हट गया है। अब वह सूर्य किरणों में दमक रहा है उन पहाड़ियों के शिखरों की भीड़ में, पर उस भीड़ में भी वह सभी से कुछ अलग दिख रहा है। सभी ओर से टूटी कगारें हैं, एकदम बेलाग। कितनी ही बार हमने तोरण दुर्ग से उसे देखा है। ठिकाना उत्तुंग है, अण्णाजी ! इतने दुर्ग

हैं घाट के ऊपर—कोंडाना, पुरन्धर, एक से एक बढ़कर, पर रायरी की तुलना नहीं। रायरी जैसा रायरी ही है।”

अण्णाजी ने राजा का मन समझकर पूछा—

“इतना वह दुर्ग महाराज के मन में आया है, तो आज्ञा हो, अभी भेंट करता हूँ उसे।”

इस पर राजा ने कहा—

“देखेंगे।”

राजे पुनः कोंकण को निरखने में तन्मय हो गये, तभी सामने कगार में से लंगोटी पहने एक गडरिया सिर पर लकड़ियों का बोझ लिये ऊपर आ निकला। राजा ने आश्चर्य से कहा—

“अण्णाजी, यह कगार तो एकदम बेलाग है।”

“जी।”

“चढ़ने को कहीं भी अवसर नहीं।”

“नहीं, महाराज। ऊपर से देखने पर चक्कर आते हैं।”

“तब यह आया कहाँ से? क्या धरती चीरकर निकला?”

“आज्ञा हो तो उसे उपस्थित करूँ।”

“बुलाओ उसे।”

अण्णाजी के पीछे मुड़कर संकेत करते ही दो हथियारबन्द मावले उस गडरिये की ओर दौड़े। उन कुलवन्तों को देखकर गडरिया पहले ही डर गया था। उसी में उन हथियारबन्द सैनिकों को अपनी ओर आता देखकर वह पूरी तरह से ध्वनाकर अपने ही स्थान पर स्तब्ध सा खड़ा हो गया। उसके मुँह से बोल तक नहीं निकल रहा था।

दोनों मावले सैनिक उसके पास गये और उससे बोले—

“चल रे मामा! तुझे राजा बुला रहे हैं।”

त त, पप, करता जैसे-तैसे वह बोला—

“नहीं जी, नहीं।”

“अरे बेटा, स्वयं राजे तुझे बुला रहे हैं।”

“मैंने कुछ भी नहीं किया है। घर पर एक वच्चा है, घरवाली है।”

दोनों सैनिक हँसने लगे।

“ऐ सथाने ! तेरे पूत और घरवाली से हमें क्या ? चल, नहीं तो……”

इतना कहकर दोनों उसे बाजुओं से पकड़कर आलखी-पालखी करते उठाने लगे। वह भी क्या कम था, सिर का बोझ एक हाथ से साधकर वह भी पैर झाड़ने लगा।

राजा का ध्यान उस ओर गया, उन्होंने डपटकर कहा—

“ए, उसकी गठरी बांधकर लाने की आवश्यकता नहीं है। उसे थोड़ा समझा-बुझाकर लाओ।”

दोनों मावले उसे जैसे-तैसे शिवाजी के पास लाये। राजा के सामने पहुँचते ही वह झुक-झुककर उनको जीहार करने लगा, कहने लगा—

“दादा ! मेरी माँ घर पर है, देर हो जाने पर वह मुझे पीटेगी। मुझे छोड़ दो, मैंने कुछ नहीं किया है। भैरोंबाबा की सौगन्ध, मैंने कुछ भी नहीं किया है।”

अपनी हँसी दबाकर उसे अभय देते हुए राजा ने कहा—

“दादा रे ! तूने कोई अपराध किया है, ऐसा किसने कहा ? तुम यह बेलाग कगार चढ़कर आये हो ना ?”

“नहीं जी, अब से फिर कभी इस ओर से नहीं आऊँगा।”

राजा ने अण्णाजी को संकेत किया। वे उस गडरिये के समीप गये और उससे बोले—

“सुनो दादा ! तुम इस बेलाग पहाड़ी से चढ़े हो ?”

“मैं हाथ जोड़ता हूँ। मैंने कह दिया ना कि फिर कभी भी इस ओर नहीं आऊँगा।”

“पर तुम्हें मना कौन कर रहा है ? राजा तो तुम पर प्रसन्न हैं, उनकी इच्छा है कि तुम्हें कुछ इनाम दें।”

इनाम (पुरस्कार) की बात सुनते ही गडरिया सचेत हो गया, बार-बार जीहार कर कहने लगा—

“ऐसा है ? तो दे दीजिए इनाम खाँ साहेब ! मैं तो समझा कि……”

अण्णाजी ने उसे डपटकर कहा—

“खाँ साहेब किसे कह रहे हो ?”

राजा की ओर संकेत कर गडरिया बोला—

“ये जो खड़े हैं, ये छोटे खानसाब !”

“पगले ! वे राजा हैं, शिवाजी राजा भोंसले ।”

गडरिया कुछ आश्वस्त-सा होकर कहने लगा—

“ऐसा है ? होंगे जी, होंगे भी । मैंने थोड़ी सी दाढ़ी देखी…।”

राजा शिवाजी ने अण्णाजी की ओर देखकर किंचित् हँसते हुए, गडरिये से पूछा—

“दादा ! तुम इस राह से किस प्रकार आये ?”

गडरिया प्रसन्न होकर आगे बढ़ा, बोला—

“अभी दिखाता हूँ, पर आप इनाम जो दे रहे थे…।”

राजा ने अण्णाजी को संकेत किया। उन्होंने कमर से बँधी थैली से सोने की मुहर निकालकर राजा के आगे बढ़ायी। राजा ने उसे स्पर्श किया, अण्णाजी ने आगे बढ़कर वह मुहर गडरिये के हाथ में दे दी। गडरिया अब तक सिर पर लकड़ी का गट्ठर तौलता खड़ा था, अपने एक हाथ से सिर का बोझ सँभालते हुए गडरिये ने मुहर परखकर प्रसन्न होकर कहा—

“यह तो चकाचक सोना है, विल्कुल गुड़ जैसा पीला ।”

“है ना ? तो रख ले । अब दिखाओ तुम कैसे आये ?”

गडरिये ने सिर का गट्ठर उतारा, अपनी लंगोटी के छोर में मुहर की गाँठ बांध ली, उसे दो-दो बार देखकर पक्की कर ली और तब उसे कमर में खोंसकर वह आगे बढ़कर राजा से बोला—

“अजी, शिंके के चौकीदार सीधी राह से आने नहीं देते, इतना बोझ लेकर मैं कई बार इसी राह से आता हूँ। आज भी मैं अपने रेम्या को नीचे कगार की तलहटी में रखकर ऊपर आया हूँ, यह बोझ रखकर उसे भी ले आऊँगा थोड़ी देर से ।”

रेम्या का नाम सुनकर राजा ने अण्णाजी की ओर प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखा, उन्होंने गडरिये से पूछा—

“रेम्या कौन ? तेरे पूत का नाम है यह ?”

“जी, जी, मेरे दादा ! वैसे देखें तो वह मेरा पूत सा ही है। अजी वह है मेरा मेंदा ।”

आण्चर्य से अण्णाजी ने उससे पूछा—

“और तुम उसे नीचे रखकर आये हो । कोई उसे उठा ले जाये तो ? भेड़िया भी तो खा सकता है ।”

वह पागल-सा दिखने वाला गडरिया आँखें तरेरकर कहने लगा—

“मेरे रेम्या को दाँत लगाने के लिये भेड़िये का मुँह भी तो बड़ा हो । उसके सींग कैसे हैं ! एक बार एक भेड़िये की आँतें ही बाहर खींच ली थीं उसने ।”

राजे गडरिये का वह रेम्या-पुराण कौतुक से सुन रहे थे । उन्होंने अण्णाजी पन्त से कहा—

“पन्त ! इस गडरिये का मार्ग कौन सा है, वह हमें प्रत्यक्ष देखना है ।”

अण्णाजी ने गडरिये को चुप किया और कहा—

“दादा ! राजा को अपनी राह दिखाओ तो ।”

अब गडरिया डर गया, उसने कहा—

“वाप रे वाप, वह राह तो बड़ी विकट है ।”

“पर तुम तो हर दिन उसी राह आते हो न ?”

“अजी हम ठहरे जंगली मनुष्य ।”

राजा ने कहा—

“दादा ! हम भी तो इसी जंगल के हैं । चलो, आगे बढ़ो ।”

कगार के छोर पर पहुँचने तक गडरिया कुलबुला रहा था ।

उस टूटी बेलाग कगार का छोर दस-बीस हाथ रहने पर शिवाजी राजा ने अपनी जूती उतार दीं । तत्काल एक सेवक आगे बढ़ा, उसने राजा की जूती उठा लीं । राजा ने गडरिये से कहा—

“चलो आगे, तुम्हारे पीछे हम आ रहे हैं ।”

गडरिया डरकर अण्णाजी पन्त की ओर देखने लगा । पन्त ने कुछ संकोच के साथ राजा से कहा—

“महाराज, आप यहाँ कगार के माथे पर ही ठहरें । ये दोनों सैनिक इस कगार से उतरकर दिखायेंगे ।”

गडरिये ने भी कहा—

“अजी, कगार बहुत ही ऊँची है, कोई दस-बीस पुरुष सीधी। किले की भीत के समान, कहीं-कहीं उससे भी बेलाग।”

“तब तुम इस पर कैसे चढ़ते हो ?”

“यह जो पुराना रुख यहाँ खड़ा है, इसके जड़ों की डोरियाँ गयी हैं नीचे तक, उन्हीं को पकड़-पकड़कर हम चढ़ते-उतरते हैं।”

कगार की धार से चार हाथ दूर वट का वृक्ष खड़ा था। पहाड़ी हवाओं के थपेड़े खा-खाकर उसकी जड़ों की डोरियाँ कठोर हो गयी थीं। वह वृक्ष भी पुराना दिखता था। राजा ने कगार के मुहाने तक जाकर देखा, उस वट वृक्ष की जड़ें अनेकानेक शाखाओं में फैलकर नीचे तक उतरी थीं। अण्णाजी पन्त राजा के पीछे-पीछे जाकर बोले—

“महाराज ! यहाँ रुकना ठीक होगा। यहाँ से इसका उतरना-चढ़ना दिख जायेगा।”

राजे शिवाजी अण्णाजी की ओर देखकर किचित् हँसते हुए बोले—

“अण्णाजी पन्त ! अनुमान से तो आकाश के ग्रहगोलों का भी गणित होता है। पर जो अनुभव इस धरा पर प्रत्यक्ष लेने योग्य है, वहाँ पर भी दूसरों के कार्यों से अनुमान कर, उसपर निर्भर रहना तो साहसहीन व्यक्ति का काम हुआ। इस प्रकार राज्य की सीमाएँ बढ़ायी नहीं जातीं। कुछ प्रसंग ऐसे हुआ करते हैं जहाँ कमर कसकर स्वयं ही आगे पग बढ़ाना आवश्यक होता है।”

फिर गडरिये से बोले—

“चल रे दादा ! देखूँ तुम कैसे उतरते हो।”

इतना सब सुनकर भी गडरिया राजा के उस साहस को देखकर आशंका से डर रहा था। अन्त में राजा ने गडरिये को पकड़कर आगे बढ़ाया।

विवश होकर अनिच्छा से ही गडरिया आगे बढ़ा। वह कगार के तट पर झुका, माथा टेका, राजा की सुरक्षा की कामना की और स्फूर्ति के साथ वह वट की जड़ों की डोरी को पकड़कर नीचे उतरने लगा। उसके पीछे अण्णाजी ने भी अपनी धोती ऊपर कसकर नीचे उतरने की तैयारी की। यह देखकर राजा ने अण्णाजी से कहा—

“पन्त, यह क्या ? आप भी ?”

अणाजी ने उत्तर दिया—

“आपको कगार से नीचे भेजकर, मैं ऊपर रहा तो माँ साहिवा को यह मुँह कैसे दिखा सकूँगा ? गडरिये के पीछे यह रतनाजी उतरेगा, उसके पीछे मैं हूँ। हम संकेत करें, तभी आप नीचे उतरिए। पर महाराज ! एक बार किर से निवेदन है कि आप स्वयं नीचे न उतरें तो नहीं चलेगा क्या ? आपका पृथ्वीमोल का जीवन है, उसे इस कगार से नीचे डालना इतना अवश्यक है क्या ?”

राजा ने हँसकर अणाजी पन्त की पीठ पर हाथ रखते हुए कहा—

“पन्त ! चिन्ता न करो। ऐसी दस-बीस बेलाग और दुर्गम पहाड़ी कगारे हम इसके पहले भी चढ़ नहीं चुके हैं क्या ? यह कुछ अधिक दुर्गम है, तो क्या हुआ ? इस ओर ध्यान दो कि हम तो अकेले ही हैं, यह गडरिया तो लकड़ी का गट्ठर सिर पर साधकर चढ़ता है, वह भी नित्य। अशक्य तो कुछ भी नहीं। चलो, आगे बढ़ो !”

अब तक गडरिया नीचे ओभल हो गया था। वह सरसर करता नीचे उतरा और वहीं से आँखों पर हाथ रखकर ऊपर निरखने लगा। वह कगार दुर्गम थी, यह सच था।

वहाँ का प्रस्तर लगभग पाँच पुरुष ऊँचा था। काला और कठोर, बेलाग प्रस्तर था वह। उसकी लम्बाई भी लगभग चौथाई कोस तो थी ही। वहाँ स्थान-स्थान पर कुछ खाँचे से बन गये थे। उन छोटे-छोटे स्थानों में भी चीलों ने और बाजों ने अपने घोंसले बना रखे थे। कहीं-कहीं मधु के छत्ते लटक रहे थे। वट की जड़ें नीचे उतरी थीं। वे भी कुछ सीधी तो थीं नहीं। वे उस प्रस्तर पर स्वच्छन्द फैली पसरी थीं। यहाँ-वहाँ कगार की भीत में भी घुसी थीं। उनमें से एक बीच में ही समाप्त थी, दूसरी कलाई सी मोटी ठीक तल तक पहुँचकर वहाँ की फाड़ी में खो गयी थी, तीसरी उसी के साथ नीचे तक उतरी थी।

गडरिया नीचे से ही खड़े-खड़े उतरने वालों के साहस का कौतुक देखता, कुछ चिन्ता से कह रहा था—

“धीरे-धीरे, मेरे दादा ! धीरे-धीरे। नहीं तो मुझ गरीब की गर्दन

फाँसी पर लटका ओगे ।

“योड़ा धीरे-धीरे उतरो । दो क्षण उसांस लें लो, हड्डबड़ी मत करो । हमें तो आये दिन की आदत पड़ी हुई है । कभी किसी अमावस-पूनो को इस ओर उतरने वाले तुम राजा लोग ।”

गडरिये के पीछे रतनाजी उतरा, अण्णाजी को थोड़ी देर लगी । हर पग वे उस जड़ पर जमा-जमाकर रखते, साँस साधते, फिर दूसरा पग उठाते, तब तक राजा को ऊपर रुकना पड़ता । अन्त में अण्णाजी ने नीचे उतरकर उसांस ही ली थी कि तब तक राजे भी कूदकर नीचे उतर आये । राजा के उस साहस पर हृषित होकर गडरिया कहने लगा—

“धन्य हो मेरे शेर ! भले, भले !! अजी, आकाश जैसा तुम्हारा साहस । मैं तो सोच रहा था कि अब यह राजा क्या कौतुक करता है । पर नहीं । तुम इस जंगल के शेर हो शेर । अब तुम पर से क्या न्यौछावर करूँ ?”

कुछ सोचकर उस गडरिये ने एक अनपेक्षित ही किया । उसने लंगोटी में गाँठ बाँधकर रखी अभी-अभी की मुहर निकाली । वह क्या करता है, यह समझने के पहले ही वह राजा के समीप पहुँचा, और उन पर से वह मुहर न्यौछावर उतारकर उस घने जंगल में फेंक दी ।

उसका मेंढा उसके आगे खड़ा-खड़ा उसके पैरों से सींग रगड़ रहा था ।

राजे गडरिये के उस कौतुक भरे कार्य को देखकर आश्चर्य कर रहे थे, तभी नीचे से कोलाहल उठा । उसे सुनकर, राजा ने क्षणभर उसकी आहट ली । दूसरे ही क्षण उन्होंने अण्णाजी को चुप रहने का संकेत किया और वे निकट की घनी झाड़ी में घुस गये । उनके पीछे अण्णाजी भी दुबक गये । रतनाजी ने भी गडरिये को अपने पीछे खींचते हुए दूसरी झाड़ी पकड़ी । गडरिया क्षणभर घबराया, पर रतनाजी ने मुँह पर अंगुली रखकर आँखें दिखायीं तो गडरिये ने भी अपने मेंढे का मुँह दवा लिया और चुपचाप देखने लगा ।



वाजीराव, राणोजी, जानकी, मायनाक, बावल भट्ट और उनके

साथ का नीकर, ये सभी लोग पारघाट में आकर हनुमानजी के देवालय के सामने अणभर आराम से सुस्ताने लगे। चौकी का चौकीदार आगे आया, उसने सुना कि ये सभी नीचे कोंकण में किसी विवाह की बारात में बाराती बनकर गये थे और अब महावलेश्वर की ओर जा रहे हैं। तब उसने इन लोगों के घोड़ों की जकात वसूली और फिर चिलम फूँकता वहाँ बैठा रहा। महावलेश्वर कितनी दूर है, यह पूछने पर वह बोला—

“महावलेश्वर ? है, पास ही है। चार-छः कोस दूर है। अभी चलोगे तो दोपहर उत्तरते-उत्तरते मन्दिर तक पहुँच ही जाओगे।”

राणोजी ने जंगल के आसपास और दूर तक की बेलाग ऊँची पहाड़ियाँ और उनकी टूटी कगारें निरखते हुए पूछा—

“मार्ग ठीक तो है ?”

“अजी, आँखें बांधकर जाये कोई भी मानुष। यों ही इसे रडतोड़ी का घाट कहते हैं, पर यह बीच की नसेनी की राह सा डरावना और विकट नहीं है।”

राणोजी ने उत्साह से पूछा—

“यह बीच की राह कौन सी जी ?”

“यह इस धने जंगल में से होता हुआ जाता है, पर है मार्ग बहुत ही विकट। इस लंगड़े मानव से और इस स्त्री से वह चढ़ा नहीं जायेगा, तुम तो सीधे घाट के मार्ग ही आगे बढ़ो।”

राणोजी ने कहा—

“अजी, घोड़ा ज्ञान भी तो हो जाने दो कि वह कैसा है, कितना बीहड़ और विकट है।”

“अरे, उस ओर बड़ा घना जंगल है, बनैले पशु भी बहुत। और सामने पहाड़ी के पास जाने पर सीधी कगार चढ़नी है, वह भी दस पुरुष ऊँची। मैं तो कभी उस ओर से गया नहीं, सुना भर है। ये गडरिये-फडरिये जाते हैं इस ओर से कभी-कभी।”

जैसे-जैसे वह चौकीदार उस मार्ग की दुर्गमता बता रहा था, वैसे-वैसे बाजीराव का मन उसी ओर खिचने लगा। उसने बाबल भट्ट से कहा—

“शास्त्री जी, ऐसा करते हो ?”

“कैसा ?”

“तुम आओ इस सीधे मार्ग से इस घाट होकर। हम दो-चार इस बीच के मार्ग से आगे बढ़ते हैं।”

वावल भट्ट ने पूछा—

“दो-चार कौन ?”

“हम, अर्थात् राणोजी, मैं स्वयं और... क्यों मायनाक ?”

मायनाक ने कहा—

“अजी, मैं पहले। ऊँचे-ऊँचे मस्तूलों पर चढ़ने वाला मैं।”

वावल भट्ट ने कुछ उत्तेजित होकर पूछा—

“और जानकी भाभी ?”

जानकी ने धीरे से कहा—

“मैं भी इसी बीच के मार्ग से ही चलूँगी, मैं भी तो इसी जंगल की पुत्री हूँ।”

अब कुछ आवेश से भरकर वावल भट्ट ने कहा—

“अर्थात् तुम सभी इस जंगल के हो। तब मैं क्या मालवा का बुद्ध हूँ, सपाट मैदानों का ? मैं सबसे आगे चलूँगा। मुझे भी पहाड़ों, दर्रों, कगारों पर चढ़ने-उतरने का अभ्यास है। मैं कोंकण का ब्राह्मण हूँ, दक्षिणा के एक-एक रूपये के लिये चार-चार पहाड़ियाँ तक हमें पार करनी पड़ती हैं, यहाँ एक पहाड़ी कगार की क्या चिन्ता !”

“पर, आपका यह टूटा पैर ?”

“उसकी चिन्ता तुम्हें करनी नहीं है। यदि भाभी इस मार्ग से जा रही हैं तो मुझे भी इसी ओर से जाना होगा, नहीं तो चुल्लूभर पानी में डूब मरने की बात होगी। तुम रुको कुछ देर यहाँ, मैं चलता हूँ धीरे-धीरे। चौकीदार ! यही मार्ग है, ना ?”

इन लोगों का इसी मार्ग से आगे बढ़ने का विचार सुनकर चौकीदार चिन्तित हो उठा। उसने इन सभी को समझाया और कहा—

“अरे भाई, सुनो। तुम जैसे लोग कभी इस राह से गये नहीं और जाते नहीं। हाथ-पैर फिसलकर कहीं गिर पड़ोगे तो टूटी हड्डियाँ भी मिलेंगी नहीं।”

राणोजी ने कहा—

“अरे, पहले कभी कोई गया नहीं तो इसलिये आज भी नहीं जाना चाहिए ? ऐसा किसी का आदेश है क्या, या मनुस्मृति का शास्त्र-वचन है ऐसा ?”

हारकर चौकीदार ने जागल्या को पुकारा, कहा—

“ए, बेटे ! इधर तो आओ। इन दीवानों को यह राह दिखा आओ।”

जागल्या भी टालमटोल करता बुद्धुदाने लगा। कहने लगा—

“भई मैं भी तो कभी गया नहीं इस राह से।”

बावल भट्ठे यह सब सुन रहा था, वह अपनी बैसाखी खट-खट बजाता आगे बढ़ा, और बोला—

“अरे राह कहीं सप्त पाताल में तो डूबी नहीं है, मिल ही जायेगी। और, न मिलकर जायेगी कहाँ ?”

अन्त में न चाहूंकर भी जागल्या इन सभी को वह मार्ग बताने आगे बढ़ा।

राणोजी ने नौकरों के साथ घोड़ों को घाट के मार्ग से भेज दिया, और सभी लोग उत्साह से जागल्या के पीछे चलने लगे।

वह मार्ग सचमुच ही अति विकट था। कितने ही स्थानों पर वह वृक्षों में खो गया था, कहीं-कहीं उखड़े-गिरे वृक्ष उस पर पसरे पड़े थे, वह उनकी उलझी-उलझी शाखाओं में डूब गया था, कहीं-कहीं धनी झाड़ियों में खो गया था। भरे दिन में भी इस मार्ग पर अनेक स्थानों पर घना अंधेरा था, इतना कि ये सभी आपस में आवाज देते हुए, टोलते हुए आगे बढ़ रहे थे। अनेक स्थानों पर बड़े-बड़े पसरे प्रस्तरों पर वनी पगडण्डी पहचानकर आगे बढ़ना पड़ता। पहाड़ों की पगडण्डियाँ ढूँढ़ने की बावल भट्ठे को आदत थी, पहचान भी थी, उसका घर ही पहाड़ी पर था। ढोरों का मार्ग कौन सा और मनुष्यों की पगडण्डी कौन सी, यह वह ठीक-ठीक पहचान लेता था। ढोर, जहाँ तक हो सके, रुकावटों को टालते हैं, बड़े-बड़े टीलों पर खुर टिकाने का संकट नहीं लेते। निचला स्थान देखकर उसी ओर से आगे बढ़ते हैं। इन सभी वातों की जानकारी बावल भट्ठे

को थी। मनुष्य की डगर इससे भिन्न होती है, यह डगर चक्कर टालती है। जहाँ तक सम्भव हो, वह समीप से गुजरती है। इसका भी बाबल भट्ठ को अनुभव था।

इसलिये वही सबसे आगे चल रहा था। आसपास के वृक्षों को देख-परखकर वह प्रसन्न हो रहा था। उन वृक्षों में से कितने ही वृक्ष उसके घर के जंगल में भी थे। इसी कारण वह उन सभी को पहचानता था, उनके नाम गिना-गिनाकर उनका उपयोग बता रहा था। इन सबमें वह इतना खो गया था कि अपने सिर पर लटकते संकट की ओर भी उसका ध्यान नहीं गया। बाबल भट्ठ एक आम के नीचे झुककर वहाँ नेपती का पौधा दिखाकर बड़े ही उत्साह से उसका उपयोग सभी को बता रहा था। उसी समय आम पर लटका एक विषधर बाबल भट्ठ के सिर का लक्ष्य साधकर कूदने ही वाला था। एकाएक उस ओर मायनाक का ध्यान गया, उसने बाबल भट्ठ को पीछे की ओर खींचा और उसी क्षण राणोजी ने तलवार खींचकर उस विषधर का फन छाँट दिया। बाबल भट्ठ क्षणभर चकित सा देखता रहा, बाद में सभी बाबल भट्ठ की हँसी उड़ा रहे थे। मायनाक ने कहा—

“शास्त्री जी का ध्यान कभी आकाश में सप्त ऋषियों में अटका होगा और इधर पैर पड़ेगा मगर के मुँह में।”

राणोजी ने कहा—

“भई बात कुछ जमी नहीं। मैं दूसरी बात बताता हूँ—

“शास्त्री जी नदी में खड़े सूर्य भगवान् को अर्ध्य चढ़ाते रहेंगे और उधर पानी में से जलपरी इनका पैर खींचकर ले जायेगी।”

मायनाक ने कहा—“यह भी खूब। पर जलपरी का शास्त्री जी से क्या काम ?”

“अरे भई, उधर भी किसी का विवाह अटका होगा तो शास्त्री जी वहाँ जाकर केरे करा देंगे।”

कुछ अप्रसन्न होते हुए बाबल भट्ठ ने कहा—

“अब इस विषधर का संकट सिर पर आ पड़ा, इसलिये तुम सब मेरा उपहास कर रहे हो, पर मैं कहता हूँ कि तुम सब कुछ नहीं तो पैरों

में ठोकर खा-खाकर ही वैसाखियाँ तो पकड़ो ।”

“तो क्या होगा ?”

“और कुछ न हुआ तो भी इस वैसाखी की खटाक-खटाक की आवाज से वैरों तले के कीड़ों और जन्तुओं का भय तो दूर भागेगा ही ।”

ये लोग बातें करते आगे बढ़े । एकाएक घना जंगल समाप्त हो गया और सबके सामने चौड़ी छाती फैलाकर एक प्रचण्ड खड़ा चट्टानी कड़ा प्रकट हुआ । चकित होकर जानकी ने कहा—

“ओ हो, कैसा काला स्याह पत्थर है यह !”

राणोजी ने भी उसे निरखकर कहा—

“मान गये, सच ही यह कगार है तो ऊँची ही ।”

बाजीराव ने चिन्तित होकर जानकी से पूछा—

“क्यों जी, कैसा करें ?”

बावल भट्ट ने उत्साह से कहा—

“क्या समझे देशमुख ? यह पगड़ण्डी जब इस प्रस्तर के तल तक गयी है, तब इस पर चढ़ने की कुछ तो जुगत होगी ही । अरे भई, यह जानकी भाभी जब साहस कर यहाँ तक आयी है, तब तुम पुरुषों को इतनी चिन्ता क्यों हो रही है ?”

बाजीराव ने कहा—

“शास्त्री जी ! हमारा तो हो ही जायेगा कुछ भी, पर आपका क्या होगा ?”

“मेरी चिन्ता आप न करें ।”

“तो कौन आने वाला है यहाँ आपको देखने ?”

“और किसको पड़ी है आने की ! मेरा परमात्मा है, वही आकर खड़ा होगा ।” इतना कहकर बावल भट्ट ने जानकी की ओर देखा और फिर बोला—

“जानकी भाभी, तुम चिन्ता मत करो किंचित् भी । ईश्वर पर भरोसा है ना ?”

जानकी ने भी मुण्डी हिलाकर विश्वास दिखाया । बावल भट्ट कहने लगा—

“अरे, जिसने उस भयंकर कूर सिद्धी के यातनागार से मुझे छुड़ाया,
वह क्या इस नन्हीं सी, कुछ हाथ ऊँची कगार के नीचे मुझे अटकाकर
रखेगा ?”

जानकी ने उस चट्टानी कगार को देखते हुए कहा—

“यह कगार भी बहुत ऊँची नहीं है। हमारे मुख्यदेव की पहाड़ी पर
जो किला बना है, उसका बाले किला ऐसा ही ऊँचा है। आऊ साहिवा
जाती हैं उस कगार पर चढ़कर ।”

आश्चर्य से बाबल भट्ट ने पूछा—

“क्या कहा ? आऊ साहिवा ? तुम्हारा अभिप्राय, शिवाजी महाराज
की माताजी ?”

“जी। अजी उनका महल ही ऊपर है। वहाँ से पद्मावती देवी का
दर्शन करने नीचे आती हैं उतरकर, लौटते हुए वह कगार चढ़कर ही
जाना पड़ता है।”

विस्मय में डूबे बाबल भट्ट ने कहा—

“भगवन् ! किस माटी से गढ़े हैं ये लोग ?”

अब तक सभी कगार की तलहटी तक जा पहुँचे थे। वहाँ कगार की
तलहटी तक उतरी बट की लटकती जड़ें देखकर प्रसन्न हो, बाबल भट्ट
ने कहा—

“देखा ? मैंने कहा नहीं था ?”

मायनाक ने कहा—

“शास्त्री जी ! पर आप कैसे चढ़ोगे ?”

“वह बाद में देखा जायेगा। मैंने कहा भी है, मेरी चिन्ता परमात्मा
को है। पहले तुम भी तो चढ़ने की कुछ सम्भावना देखो।”

कगार के समीप झाड़ियों की ओट में खड़े राजा शिवाजी श्वास
साधकर इन सभी की बातों का आनन्द ले रहे थे। अण्णाजी पन्त को
वे संकेत करते रहे।

बाबल भट्ट की कठिनाई देखकर पन्त ने राजा से पूछा—“आगे बढ़ूं
क्या ?”

राजा ने उन्हें रोककर कहा—

“रुको । क्या करते हैं, यह सब देखो पहले । ऐसे अवसरों पर ही व्यक्ति की परख होती है ।”

मस्तूलों पर चढ़ने वाला मायनाक नीचे तक लटकती जड़ों की डोरियों को देखकर प्रसन्न था । देखते-देखते वह गिलहरी सा कगार पर चढ़ता गया और लगभग अधवीच में पहुँचकर एक खाँचे में पैर अड़ाकर नीचे देखकर कहने लगा—

“यह मैं यहाँ खड़ा हूँ । घरराने जैसी कोई बात नहीं है । आओ भी, यह स्थान अच्छा है । यहाँ आधी ऊँचाई में थोड़ा टिको, कुछ उसाँस लेकर फिर आगे बढ़ो । आओ, देखें कौन आता है, आओ फुर्ती से ।”

सभी एक-दूसरे की ओर ताक रहे थे, तब तक जानकी आगे बढ़ी । उसने अपनी साड़ी को कसकर बाँध लिया । आँचल कमर में खोंसकर उसने बट की लटकती डोरी को जाकर हाथ लगाया ।

वाजीराव ने चिंतित होकर कहा—

“अरे तुम सुनो तो ।”

जानकी ने पीछे देखा, केवल आँखों से ही वाजीराव को आश्वस्त कर उसने कगार पर पग आगे बढ़ाया । सभी श्वास रोककर उसकी ओर देखने लगे । अण्णाजी पन्त चिन्तित स्वर से राजा के कान के समीप मुँह ले जाकर बोले—

“पगड़ी का दौर उसकी कमर में बाँधकर ऊपर से पकड़ना चाहिए था ।”

राजा ने विश्वास से कहा—

“चिन्ता नहीं । माँ साहिवा की शिक्षा पा रही है, और मेरी बहिन जो है ।”

एक हाथ से जड़ पकड़कर टटोल-टटोलकर जानकी ऊपर चढ़ रही थी । जड़ कगार पर कहीं जमी चिपकी थी, कहीं अलग से छूटी हुई थी । जहाँ अलग थी, वहाँ पकड़ पक्की बनती थी । जहाँ चिपकी थी, वहाँ अंगुलियों से कुरेदकर स्थान बनाकर पकड़ना पड़ता था । इससे चढ़ने में देर होती और अंगुलियों में लगती भी थी । कहीं-कहीं मुरूम माटी थी, वहाँ कछ खाँचे से बने थे, उनमें पैर जमाना सम्भव हो रहा था । हाथों

को वहाँ थोड़ा आराम मिलता। परन्तु कहीं-कहीं कगार की चट्टान एक-दम खड़ी और खुली थी, वहाँ प्रस्तर पर पैर जमता नहीं था। हाथों पर तनाव देकर ही वहाँ से आगे बढ़ना पड़ता था, हाथों पर सारा शरीर तौलना पड़ता और फिर ऊपर उठाना पड़ता। जानकी बहुत जीवट वाली, बड़े ही धैर्य वाली थी। उसके मन में आ रहा था, 'इस समय अपनी सहायता स्वयं ही करनी है। भर्तार तो सीधे मार्ग से चलने को कह रहे थे, वही हठात् इस मार्ग पर आगे बढ़ी, नहीं तो रडतोंडी के मार्ग से घोड़ों पर बैठे-बैठे ऊपर जाना सरल था। इसलिये अब पूरी शक्ति लगानी चाहिए। शरीर की शक्ति का कण-कण यहाँ लगाना है।'

बाजीराव के प्राण मुँह को आ रहे थे। उस जड़ पर से एक बार एक ही चढ़ सकता था। दो का बोझ वह सह नहीं पाती, नहीं तो वह उसकी सहायता करने आगे भी बढ़ता।

राणोजी ने कम्बल निकाला, दो छोर स्वयं पकड़े और बाजीराव को दूसरे दो छोर पकड़ाकर कहा—

"भाई, भाभी का साहस बहुत बड़ा है, आप चिन्ता न करें, पर यह कम्बल ठीक से ताने रहिए। यों ही पैर फैलाकर यहाँ रोने बैठेंगे क्या?"

बावल भट्ट का उत्साह और भागदौड़ देखते ही बनती थी। वह बैसाखी टेकते-टेकते वहीं के वहीं नाच जैसा रहा था। आँखों के ऊपर हाथ रखकर ऊपर देखकर वह बार-बार जानकी को सूचना दे रहा था—

"हाँ, हाँ, ठीक, भले, शावास। थोड़ा ऊपर पकड़ो, हाँ, ऐसे। पूरे साहस से, अब तो थोड़ा सा रह गया। वाह री शेरनी! हाँ, अब थोड़ी उसाँस ले लो, तब आगे बढ़ो। अरे, अरे, हड्डवड़ी मत करो। सँभलकर आगे बढ़ो!"

बावल भट्ट इस प्रकार नीचे से सूचना दे रहा था, और ऊपर से मायनाक की भी आवाज आ रही थी—

"शाव्वास। ठीक, ठीक। अब थोड़ा सा ही रहा है। आओ, यहाँ तक मैंने यहाँ ठोर बनायी है, यहाँ हम आराम से क्षणभर ठहर लेंगे। सुनो, शास्त्री जी! तुम चिल्लाना बन्द करो। थोड़ा उसे भी तो ठीक से आगे बढ़ने दोगे कि नहीं?"

जानकी तिल-तिल आगे बढ़ रही थी। एक क्षण उसे चककर से आने लगे, छाती में पीड़ा सी हुई, उसे ऐसा कभी हुआ नहीं था। उसने अपना सिर दो बाँहों पर टिका दिया, पर अपने स्थान पर गोह सी चिपकी रही। अब उसे देखकर नीचे बाजीराव पसीने से नहा उठा।

राणोजी ने कहा—

“घबराओ नहीं देशमुख ! होश ठीक रखो, यह कम्बल ठीक से ताने रहो !”

राणोजी ने बाबल भट्ट को आवाज देकर बुलाया और कहा—

“शास्त्री जी, इधर आओ। इस कम्बल को थोड़ा तानो तो !”

बाबल भट्ट आगे बढ़ा; उसने कम्बल के छोर हाथ में लिये और कहा—

“देशमुख, घबराओ मत। नीचे गिरी भी तो फूल सी झेल लेंगे। तुम ही हार जाओ तो काम कैसे बने ?”

पर क्षणभर में जानकी ने स्वयं को सेंधाला। उसने फिर से ऊपर हाथ आगे बढ़ाया। तब तक मायनाक ने एक अनोखा ही काम किया। दो मस्तूलों के बीच बैंधे रस्सों पर झूलते हुए एक से दूसरे पर जाने का उसे अभ्यास था। ऐसे काम में वह शायद ही किसी से हार मानता। उसने बड़ी और मुख्य जड़ छोड़ दी। दूसरी एक जड़ बीच में ही समाप्त हुई थी, उसे पकड़कर वह लटक गया और प्रतिदिन की जानी-पहचानी कगार हो, ऐसे केवल बाजुओं के बल पर सरसर नीचे उतरकर वह जानकी के निकट तक जा पहुँचा, बोला—

“मेरी वहिन ! मैं तेरा धर्म का भाई। हम दोनों इसी एक माँ की सन्तान। मेरा सहारा ले ले, ऐसे में लाज मत कर, मेरे कन्धे को पकड़ ले।”

पर जानकी को संकोच हो रहा था, उसका हाथ आगे नहीं बढ़ा।

तब मायनाक ने कहा—“मेरा कन्धा नहीं पकड़ेगी ? तेरे भर्तार की सोगन्ध है।”

यह सुनते ही जानकी ने भट से मायनाक के कन्धे का सहारा लिया।

मायनाक ने उसे सेंधालकर कहा—

“हाँ, ऐसे। चलो अब, शाब्दास। भले, भले। अब थोड़ा सा और, अब सेंधालकर इस साँचे में पैर जमा लो। शाब्दास मेरी वाधिन !”

जानकी के उस सचे में पैर जमाते ही, मायनाक ने पैरों तले से थोड़ी माटी खुरच ली और जानकी के ऊपर से उतारकर फेंक दी, बोला—

“मेरी वहिन की अलाय-बलाय गयी वह !”

धीरे-धीरे एक के बाद एक सभी ऊपर पहुँच गये, नीचे रह गया अकेला बाबल भट्ट। उसने उत्साह दे-देकर सभी को ऊपर चढ़ाया और अन्त में उस वटवृक्ष की लटकती जटा को पकड़कर बोला—

“सुनो राव ! सिंही के आदबखाने में सड़े चने खाकर जैसे-तैसे प्राण जिलाये रखे थे, शरीर अभी पूरा भरा नहीं है, मैं तुममें से किसी को भी आपदा में डालना नहीं चाहता। कहा अवश्य था कि मेरा तो परमात्मा है, वह है भी, पर वही आज इस क्षण मुझे कह रहा है कि वापस लौट चल और सीधे मार्ग से ही ऊपर पहुँच। तो मेरे मित्रो ! राम-राम। मेरी चिन्ता मत करो, यह सारा मार्ग अब मेरी आँखों के नीचे आ चुका है। मुझ ब्राह्मण को कौन खाता है इस मार्ग में ? अब अपनी भेंट महाबलेश्वर के मन्दिर में होगी। मैं चलता हूँ।”

तभी राजा ने संकेत किया, रतना जी ने गडरिये को आगे किया, उनके पीछे-पीछे राजा ने भी पग आगे बढ़ाते हुए प्रसन्नता से कहा—

“शास्त्री जी ! हमारे मन में वसा परमात्मा कहता है कि आप भी इसी मार्ग से ऊपर चढ़ेगे।”

अत्यन्त विस्मय से बाबल भट्ट राजा को देख रहा था। राजा को देख कर राणोजी ऊपर से ही चिल्लाया—

“जय हो धनी ! बाबल शास्त्री ! स्वयं धनी, शिवाजी राजे भोंसले।”

राजा की प्रसन्न मुद्रा को आँखों में समाते हुए बाबल भट्ट बुद्धुदा रहा था—

“शिवाजी राजे भोंसले ? यहाँ ? इस भयानक स्थान पर ? नहीं, नहीं। मुझे कुछ भासमात्र हो रहा है।”

अब तक राजा शिवाजी बाबल भट्ट के समीप पहुँच गये थे, राजा ने कहा—

“शास्त्री जी ! यह सही है, शिववा भोंसले मुझे ही कहते हैं। फिर से इस भयंकर जंगल में वापस पैर बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है।”

इतना प्रौढ़ बाबल भट्ट, पर उसने तो अपनी बैसाखी केंकी और राजा के गले लगकर सिसकने लगा। राजा उसके सिर पर थपकी लगा रहे थे। कुछ क्षण रुककर राजा ने उस गडरिये से कहा—

“गडरिया राजा ! अब तुम्हारी परीक्षा है। इस रेम्या को रहने दो हमारे पास यहीं। इन शास्त्री जी को ऊपर तक पहुँचा दोगे ?”

क्षणभर भी देर किये विना गडरिया आगे बढ़ा, उसने शास्त्री जी के दोनों पैरों में से सिर डालकर शास्त्री जी को अपने कन्धे पर बिठा लिया और उसका सिर कसकर पकड़ने को कहकर वह लंगूर सा उस खड़ी चट्टान पर सरसराता चढ़ने लगा।



शुक्ल चतुर्दशी का चन्द्र आकाश में शोभा दे रहा था। उसकी चाँदनी से महावलेश्वर का आँगन भर गया था। शिवरात्रि को शिवालय का सारा परिसर भक्तों की भीड़ से भर जाता। उस तिथि को छोड़कर वह मन्दिर शान्त ही रहता था। आसपास के गाँवों से कभी दो-चार लोग आये, न आये। महावलेश्वर के मुरुरु देवालय के पीछे पाँच नदियों का उद्गम था, कृष्णा, कोयना, वेण्या, गायत्री और सावित्री, ये पाँच गिरि-कन्धाएं एक ही स्थान से जन्म लेकर पाँच मार्गों से वहती थीं। उनके उद्गम के चारों ओर भीत का घेरा खड़ा था। पाँचों निर्भर सोते पाँच मार्गों से निकलकर एक ही कुण्ड में कूदते, और तब वहाँ से वाहर निकलते।

ऐसा वह सुन्दर, पवित्र और अलौकिक स्थान, परन्तु उसके आसपास धना अरण्य, महारण्य ही कहना चाहिए उसे। बारहों मास यह परिसर हरा-भरा रहता। नाना प्रकार के जंगली फूल चारों ओर खिलते। उनकी तीखी मधुर सुगन्ध से सारा जंगल काँथ जाता। मधुमक्खियों के बड़े-बड़े छत्ते लटकते रहते। उनकी गन्ध पाकर भालू उनको ढूँढ़-ढूँढ़कर खाते। कभी किसा छत्ते के लिये दो भयंकर भालुओं का द्वन्द्व छिड़ता। उनके भयंकर कर्कश स्वरों और घुरर्ँ-घुरर्ँ से आसपास दुबके खरगोश इधर-उधर भागते और झट से अपने-अपने विलों में जा घुसते।

सारे जंगल में स्थान-स्थान पर पहाड़ों की खोहों में पानी भरा रहता, उन जलागारों पर साँभर, चीतल और हिरण जैसे प्राणी पानी पीने आते।

वहीं दुबककर घात लगाये बैठे वाघों और चीतों का वे शिकार बनते। ये हिंसक पशु भी क्या कम उन्मत्त होते हैं? वे उन पशुओं का रक्त पीते, इधर-उधर कुछ खाते और वचे शिकार वैसे ही छोड़ देते। वाद में लकड़-वर्गे और भेड़िये उस शिकार पर टूट पड़ते। इन जंगली पशुओं के गर्जन-तर्जन से बन्दरों के छोटे-छोटे बच्चे डरकर नीचे गिर पड़ते थे। उनको बीच में ही पकड़कर बन्दरियाँ पेड़ों के ऊपर भागतीं, चिल्लातीं, पेड़ों की शाखाएँ झकझोरतीं, एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर दौड़तीं।

जंगल के इस कोलाहल को छोड़कर उस क्षेत्र में किसी की पदचाप कभी सुनायी नहीं देती थी। पर आज उस ओर चारों ओर से लोगों की भीड़ सी वह रही थी।

राजा शिवाजी का दो दिन से महाबलेश्वर में पड़ाव पड़ा था। यही उसका कारण था। महाबलेश्वर के देवालय के आसपास परकोटे के बाहर की ओर, आँगन में, मौलसिरी के पेड़ के नीचे बैठक की व्यवस्था की गयी थी। बीचोंबीच जीन विछा था, उस पर राजे बीरासन लगाकर बैठे थे। भीतर आते हर एक पर तीखी दृष्टि रखी जा रही थी।

हैवतराव शिकीमकर और संभाजी कावजी कोंडलकर अपने आगे ढाल उल्टी रखकर उसके पास चौड़े फलों के खड़ग रखे राजा के सामने बैठे थे। राजा उनसे पूछ रहे थे—

“हैवतरावजी! कब रवाना हुए थे?”

“आपका सन्देश मिला, तब थाली पर बैठा था। सन्देश मिलते ही हाथ का कोर थाली में रखा और उसी समय रवाना हुआ। कल का विश्राम बाई पर था, आज धोमा गाँव से घाट चढ़कर यहाँ उपस्थित हुआ हूँ।”

“संभाजी राव! आपके पास गुप्तचर कब पहुँचा?”

“आपके साथ एक बार बातें हुई थीं, तभी से मैं आपके गुप्तचर की राह देख रहा था। वह परसों रात आया, उसे भोजन कराया और रात को ही मैं ठिकाने से निकल पड़ा।”

तभी सबनीस ने आकर बन्दन किया और कहा—

“देवालय में वेदघोष समाप्त कर शास्त्री जी तीर्थ लेकर इधर ही आ रहे हैं।”

राजा ने आदर के साथ शीघ्रता से उठकर कहा—

“इधर क्यों ? हम ही देवालय चलें ।”

तब तक गोपाल शास्त्री देवालय से इस ओर निकल चुके थे । कमर में धीत दस्त्र था, कपाल पर भस्म चर्चित था, दोढ़ी कुछ बढ़ी थी, आयु ने साठ पार किये थे, उघाड़े शरीर पर स्वच्छ और मोटा सा जनेऊ था, गले में रुद्राक्ष की माला थी, हाथ में तीर्थ की झारी, सौम्य मुद्रा, गौरवर्ण, अँखों में विद्या और अनुष्ठान की तेजस्विता, ऐसे गोपाल शास्त्री सामने से आ रहे थे । देवालय के सभामण्डप के सभीप ही दोनों की भेट हुई । राजा ने अत्यन्त आदर से गोपाल शास्त्री को दण्डवत् किया । राजा को सम्मान-पूर्वक आशीष देते हुए शास्त्री जी ने कहा—

“मैं स्वयं ही उधर आ रहा था । आपके राजनीतिक विचार-विर्मर्श में खण्ड क्यों हो ?”

राजा ने विनय से कहा—

“पूज्यपाद को कष्ट क्यों हो ? हमारी राजनीतिक चर्चाएँ रात-दिन चलती ही रहती हैं । उनका इतना क्या महत्त्व ?”

गोपाल शास्त्री ने प्रसन्न मन से कहा—

“राजे ! इस यवनों से आक्रान्त धरणी पर आपकी राजनीति का ही विशेष महत्त्व है । आपके खड़ग की धारा के कवच को धारण कर तो आज धर्म-शासन जी रहा है । अन्यथा उसे पैरों तले रोंदते ये म्लेच्छ चारों ओर सत्यानाश करते धूम रहे हैं ।”

“स्वामी ! हमारे लवमात्र प्रयत्न आपके आशीष से सहस्रों दिग्गजों का सामर्थ्य धारण करते हैं । आपका ऐसा ही अनुग्रह सदैव जागता रहे, यही निदेदन है ।”

“रहेगा राजे, रहेगा ! हमें दूसरा काम ही क्या है ? सदा-सर्वदा आपके कल्याण का चिन्तन, यही हमारा आनन्द है ।”

इतना कहकर शास्त्री जी ने अपने हाथ की झारी से तीर्थ राजा के हाथ में दिया । राजा ने दोनों हाथों की अंजुरी एक के ऊपर एक रखकर अत्यन्त श्रद्धा से वह तीर्थ लिया और प्राशन कर उन्हीं हाथों से नेत्र स्पर्श किया । राजा ने पीछे मुड़कर सबनीस को संकेत किया । सबनीस ने चाँदी

की थाली में थैली रखी और उस थाली को लेकर वे खड़े हो गये ।

शास्त्री जी ने पूछा—“यह क्या ?”

थाली सेवक के पास देते हुए सबनीस ने थैली खोलकर भीतर से पत्र का कागज निकाला और राजा की ओर देखने लगे । राजा के संकेत करते ही मशालची द्वारा आगे की गयी मशाल के उजाले में सबनीस पत्र पढ़ने लगे—

“वेदमूर्ति गोपाल भट्ट विन श्रीधर भट्ट, वास्तव्य महाबलेश्वर में, स्वस्ति, श्री शके १५७४ नन्दननाम संवत्सरे, फालगुन शुक्ल प्रतिपदा, रविवासरे, तदिने, गुसाइं प्रति विद्यार्थी, शिवाजीराजे दण्डवत्, विनंती । स्वामी धीर अनुष्ठानी सूर्य उपासनी । पद्महस्ती, ऐसा जानकर मातुश्री जीजाबाई आऊ साहिबा ने वेदमूर्ति प्रभाकर भट्ट उपाध्ये की उपस्थिति में स्वामी से मन्त्रोपदेश दीक्षा ग्रहण की, अपने गुरु स्वामी से अपने अम्युदयार्थ सूर्यप्रीत्यर्थ अनुष्ठान करते की विनती की, प्रतिवर्ष वर्षासन देने की मोईन की है, महादेव साक्षी, स्वामी निरन्तर महादेव के पास हमारा कल्याण चिन्तन करें, यह प्रार्थना । लेखनालंकार,

मोर्तव सुद”

शास्त्री जी ने कहा—

“आज भी जो कुछ पाता हूँ वह आपका ही दिया है । ईश्वर के चरणों में निवेदन में आपके ही कल्याण का चिन्तन करता हूँ । इस उपहार की वास्तव में कोई आवश्यकता नहीं ।”

राजा ने नम्रता से कहा—

“रीत है, उसको निभाना भी एक सत्कार्य ही है, वैसे मन से हम स्वामी के पुत्रवत् ही तो हैं ।”

गोपाल शास्त्री ने प्रसन्नता से उस उपहार को शिवजी के सामने रखने की स्वीकृति दी । राजा भी प्रसन्न मन से अपनी बैठक की ओर मुड़े ।

मौलसिरी के नीचे की बैठक फिर से प्रारम्भ हुई । अब तक उसमें सात-आठ लोग और सम्मिलित हो गये थे । सभी की मुद्राएं गम्भीर थीं । राजा ने कुछ उग्र स्वर में कहा—

“फिर से एक बार पढ़ो सबनीस ।

“बादशाह के फेके टुकड़े के भरोसे पर यह व्यक्ति पूर्व-उपकार भूलकर उन्मत्त हो रहा है, यह सबको सुन लेने दो एक बार।”

सबनीस प्रारम्भ से पढ़ने लगा, राजा ने टोककर कहा—

“नहीं, ‘तुम तो कल के राजे’, यहाँ से आगे पढ़ो, सारा पढ़ने की आवश्यकता नहीं है।”

मशालची ने मशाल आगे बढ़ायी, उसके प्रकाश में पत्र पसारकर सबनीस पढ़ने लगा—

“...तुम तो कल राजा बने हो, तुम्हें राज्य दिया किसने? मुस्तफद राजा, अपने घर में कहने से कौन मानता है? तुमने लिखा, जावली में आयेंगे, आओ। आना सहज है, पर लौटना सम्भव नहीं। यहीं फँसकर रहोगे। एक मनुष्य भी जीता लौटेगा नहीं। तुममें कुछ पुरुषार्थ हो तो कल क्यों आ रहे हो, आज ही आओ। इस कोंकण के राजे, हम। हमारा स्वामी महाबलेश्वर। उसकी कृपा से राज्य करते हैं...।”

राजे कुद्ध होकर बोले—

“वाह वा, राज्य करना! इनकी न्यायनीति की तुलना नहीं। क्यों शिलीमकर! गुंजण पठार से मोरे का हस्ते पर हस्ते भी कुछ सम्बन्ध है?”

“नहीं महाराज।”

“फिर भी यह उस पर हाथ डालना चाहता था। बिरवाड़ी के पाटिल का क्षेत्र शिलाहारों से आज तक कदम कुल के पास चला आ रहा है, उस पर भी इसकी काकदृष्टि है।

“बताइए अण्णाजी! कदम क्या फरियाद लाये थे?”

“यही कि मोरे के हथियारवन्द सैनिकों ने आकर सारा वसूल जब्तकर लूट लिया।”

“इतने से भी वस हुआ क्या? इसके हशमों ने एक रात स्वयं जेधे के...।”

तभी जेधे ने भीतर प्रवेश किया। उनको देखकर शिवाजी राजा ने कहा—

“आइए जेधे!”

जेधे ने राजा को बन्दन किया और बोले—

“निकलते-निकलते देर हो गयी।”

राजा शिवाजी ने पूछा—

“बताइए जेधे, रोहिंड के प्रदेश से मोरे का क्या सम्बन्ध ?”

“अजी, कुछ भी नहीं। उनका हमारा कभी शादी-व्याह का भी सम्बन्ध नहीं हुआ।”

“ऐसा होते हुए भी एक दिन मोरे ने उधर धावा बोला था न ? उसके सवार रोहिंड का सारा भाग लूट ले गये न ?”

“स्वामी ! मैं उस दिन ठिकाने पर था नहीं, नहीं तो उस मोरे की आँतें ही वाहर निकालता।”

राजा ने कहा—“पढ़ो आगे सबनीस !”

सबनीस पढ़ने लगा—

“....कोंकण के राजे, हम। हमारा स्वामी महावलेश्वर। उसकी कृपा से हम राज्य करते हैं। हमें श्री की कृपा से वादशाह ने राजे खिताब, मोर चेल और सिंहासन मेहरबान होकर दिया....”

राजा ने हुंकार भरकर कहा—

“दूसरों के धन पर यह वादशाह की उदारता। पढ़ो आगे।”

“....हम पीढ़ी दर पीढ़ी जावली का राज्य कर रहे हैं। तुम हमारे साथ खटपट करोगे, तो साफ समझ लो, यहाँ उपाय करोगे तो अपाय होगा। यथा न लेकर अपयश के भागी बनोगे।”

अपने स्वर को वश में रखते हुए राजा ने कहा—

“प्रामाद-शिल्प पर बैठा काग गरुड़ नहीं बनता, ऐसा हमारे विताश्री कहा करते थे, वह सही है, सबनीस ! अब इस मोरे का क्या उपाय करें, बोलिए।”

“स्वामी ! मोरे की क्या बिसात ? उसे भरोसा है उसके घने जंगलों का। वह समझता है कि अपने क्षेत्र में ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ और टूटी कगारें स्वर्ग तक ऊँची हैं।”

राजा ने हँसकर कहा—

“वे ही, जो कल हम सभी देखते-देखते चढ़ गये थे ? इन पर्वत-शिल्पों और चट्टानों की क्या बात ? वे तो हमारे लिये भी घर-आँगन जैसे हैं। उसे बता दो कि हमारी बहिन जानकी अकेली ही तुम्हारी खड़ी चट्टानों पर चढ़ आयी है।”

संभाजी और कावजी मुट्ठियों से मूँछें संवारते हुए बोले—

“आदेश कीजिए धनी ! एक ही आधात में उस मोरे को रींद दूँ ।”

शिवाजी ने शान्ति से कहा—

“हमारी योजना है कि स्वयं हम ही जाकर मोरे से उत्तर देने को कहें ।”

“क्योंकर ? बढ़ते हुए नखों को काटने के लिये कोई तलवार का उपयोग नहीं करता ।”

सवनीस ने नम्रता से कहा—

“धनी ! हम दो-चार जाकर ही मोरे को माटी में मिला देंगे । स्वयं कष्ट करने की आवश्यकता नहीं है ।”

—

राजे उसी बैठक में बैठकर एक-एक समस्या सुलझा रहे थे, बाजीराव और राणोजी अपनी यात्रा में जो-जो देखा था उसकी जानकारी दे रहे थे । राणोजी ने बताया—

“धनी ! कितने ही दुर्ग देखे, पर रायरी की बात ही कुछ और है ।”

कोतुक से राजा ने पूछा—

“चारों ओर से देख आये हो ?”

“जी । खरगोश के शिकार के लिये समधी को जंगल में ले गया और उसीमें चारों ओर से देख लिया । बहुत धना जंगल है । काँटों वाली चिलाटी का वह जंगल इतना धना है कि उसमें बनैला सुधर जा घुसे तो बाहर आते-आते उसके तन की चिदियाँ निकलेंगी । पहाड़ी की टूटी कगारें और चट्टानें भी ऐसी कि आकाश तक भिड़ी हुईं ।”

“चारों ओर से ?”

“जी, देखने वाले की पगड़ी पीछे गिर पड़ेगी । ऐसी ऊँचाई और सीधे ऊँचे, जैसे कारीगरों ने कोई भीत खड़ी की हो ।”

“राणोजी, तुमने देवगिरि देखा है ?”

“जी ।”

“उसकी तुलना में रायरी कितना ऊँचा है ?”

“जी, दस देवगिरि एक पर एक रखने पर रायरी की बराबरी

होगी।”

“अपने कोण्डाना के किले जैसा?”

“जी, कोण्डाना की बात कुछ और है। कोण्डाना किला पहाड़ी की धार पर ही है। धुरंधर और रायगढ़ भी वैसे ही हैं। ये सभी दुर्ग पहाड़ियों की शृंखला पर खड़े हैं। पर रायरी की विशेषता यह है कि चारों ओर से पर्वतों की गगन को छूती भीतों की पंक्तियाँ हैं और उन सभी के बीचोंबीच एकाकी और बेलाग यह एक ही पर्वत, शिलेदार सा खड़ा है।”

“चढ़ने के लिये कोई मार्ग?”

“नी, मार्ग एकमात्र है। हम ऊपर जा नहीं पाये, पर वही एकमात्र मार्ग है, उसे छोड़कर दूसरा मार्ग नहीं है।”

राजे कुछ क्षण शान्त रहे। फिर उन्होंने पूछा—

“उस गडरिये का क्या नाम है?”

“जी! उसका नाम निदान्या।”

“उसकी थाली की व्यवस्था?”

“हो गयी। अब वह शास्त्री जी के साथ, रुखों और जड़ी-बूटियों की बातें कर रहा है।”

“उसे बुलाओ तो।”

निदान्या गडरिया उपस्थित हुआ।

राजा को जौहार कैसे करना यह राणोजी उसे सिखाने लगा।

राजा ने हँसकर कहा—

“राणोजी! उस जंगल के उम्बर को उपवन में लगाने का व्यर्थ प्रयत्न क्यों कर रहे हो?”

“क्यों निदानराव जी! क्या कह रहे थे शास्त्री जी?”

घबराया और परेशान सा निदान्या बोला—

“अजी कुछ नहीं, क्या नाम जी अपना, यही कुछ,” कहकर निदान्या दीन सा हँसकर रह गया।

राजा ने बाजीराव से कहा—

“देखा देशमुख? जंगल के स्वच्छन्द निर्भर को बांधकर उद्यान में लाने से यह देखो कैसा हो गया है! रहने दो निदान जी, हम तुम्हारे

साहस पर प्रसन्न हैं।”

राजा के संकेत पर एक सेवक एक थाली में शिरपाव लेकर आया। राजा ने उसे स्पर्श किया और सेवक ने वह थाली निदान्या के सामने रख दी। उसने घबराकर पूछा—

“इसका क्या करूँ?”

राणोजी उसकी सहायता के लिये आगे बढ़ा। उसने थाली में रखी लगभग हाथ भर फर्द वाली बड़ी सी पगड़ी उठायी और निदान्या के सिर पर बाँध दी। निदान्या उस पुरस्कार से हर्षित हो उठा। बार-बार झुक-झुककर वह राजा को जीहार करने लगा।

राजा ने कहा—“हमारा कहना है कि आवश्यकता पड़ने पर तुम हमारे लिये किसी कगार पर चढ़ जाओगे?”

एकदम उत्साह से निदान्या ने कहा—

“हाँ जी, कोई भी कगार हो, मैं चढ़ जाता हूँ। हम सभी चीलों के धोंसलों से अण्डे निकालकर लाते हैं, उसके बकल का अंजन बनाते हैं, उसे अँखों में लगाने पर दूर तक का दिखता है। उसी के लिये मैं ऊँची-ऊँची कगारें रेंगकर, लटककर चढ़ जाता हूँ।”

“तुम्हारा बाड़ा किधर है?”

“ये सामने हैं जी, भोरप्या की पहाड़ी के पीछे की ओर।”

“बुलावा भेजने पर आओगे?”

“आ जाऊँगा जी।”

“तब, अब घर पहुँचो।”

निदान्या के चले जाने पर समर्थ का कुशलक्षण पूछकर राजा ने जानना चाहा—

“स्वामी ने और भी कुछ बताया?”

“जी, स्वामी स्वयं रायरी पर गये थे एक बार। वहाँ से दरिया की रेखा साफ-साफ दिखती है, दरिया पर दृष्टि रखने के लिये वह ठिकाना बाँका है।”

तभी देवालय से घण्टानाद हुआ। वह ध्वनि आसमन्त में निनादित होती गयी। वह ध्वनि शान्त होने पर राजा ने कहा—

“मायनाक माँभी को और शास्त्री जी को बुलाओ ।”

थोड़ी देर में दोनों आ पहुँचे । राजा को बन्दन कर मायनाक एक ओर जा खड़ा हो गया । उसकी आँखें राजा के गले की पन्ना की कण्ठी पर टिकी थीं । उसने ऐसे रत्न बीजापुर की ओर जा रहे ईरानी व्यापारी के पास देखे थे । राजा को नमस्कार कर शास्त्री जी भी एक ओर जा खड़े हुए । तब राजा ने धीरे से कहा—

“यहाँ आकर बैठिए शास्त्री जी ।”

“मैं यहाँ ठीक हूँ ।”

“अजी, खड़े तो आप हैं और पैरों में पीड़ा हमारे होती है । बैठिए, बैठिए । बैठो मायनाक, सब कुछ व्यवस्थित हो गया ?”

वाल भट्ट की आँखें भर आयीं । कुछ ही क्षणों में सँभलकर उसने कहा—

“महावलेश्वर के द्वार पर भेंट हुई, अब जीवन सार्थक हो गया ।”

राजा ने एकाएक विषय का समारम्भ किया; पूछा—

“शास्त्री जी ! आपका गाँव दिवे है ना ?”

“जी ! पुरखों से ।”

“उस ओर का सागर का तट आपका जाना-पहचाना होगा ?”

“जी ।”

“वहाँ की खाड़ियाँ और सभी कुछ ?”

“हाँ जी, परन्तु हर खाड़ी की पूरी-पूरी जानकारी मेरे पास नहीं है । किसको क्या कहते हैं, यह सब जानकारी है ।”

“जंजीरा में आप बहुत दिनों तक थे ।”

“जी ।”

“किला भीतर से कैसा है, यह देखा नहीं होगा ।”

“देखा, पर आते-जाते ही । आदबखाने में पड़ने के पहले दो-चार बार स्वयं सिंही के सामने उत्तर देने पड़े थे, तब देखा था, वस ।”

“अन्दर मीठे पानी की कुछ व्यवस्था है ?”

“बड़ा सा तालाब है ।”

“पानी बंधा हुआ है कि उसमें बहाव भी है ?”

“उसमें कहीं सोता होगा। हर घर के सामने से नाली तालाब तक पहुँचायी गयी है।”

“बुजियाँ कितनी हैं ?”

“दस-बीस तो होंगी ही।”

“हर बुर्जी पर तोप ?”

“बीच-बीच में इद जैसे दिन चाँद दिखने पर तोप चलती है। सारा आसमन्त हिल जाता था।”

“अन्दर सैनिक कितने हैं ?”

“काफी हैं। अनेक तो सिद्धी ही हैं, उनके अतिरिक्त अनेक अरब, मूर और कुछ कच्छी भी हैं।”

“बंदोवस्त चुस्त है या गाफिल ?”

“नहीं, राजे। कलाल बांगड़ी नाम की एक तोप है, बहुत बड़ी, उसमें गोला भरकर सदैव तैयार रखते हैं और गोलंदाज तपता तोड़ा लेकर रात-दिन उसके पास। यही तैयारी दूसरी तोपों की है।”

“अन्दर आते-जाते पहरे ?”

“तेगें खींचकर आठों पहर दैत्य जैसे हथियारवंद दरवाजे पर पहरा देते रहते हैं, हर बुरजी पर टोह लेने वाले रहते ही हैं। इसके अतिरिक्त दो-चार जहाज जंजीरा के चारों ओर भी टोह लेते रहते हैं।”

राजे कुछ क्षण विचार करते रहे, फिर सहसा मायनाक की ओर मुड़-कर उन्होंने पूछा—

“मायनाक ! कितने वर्षों से जहाजों पर हो ?”

“महाराज, मेरा जन्म ही जहाज पर हुआ। माँ मायके जा रही थी, जहाज में ही उसको पीड़ा होने लगी और मैंने पहला सूरज जहाज पर से ही देखा।”

अण्णाजी ने टिप्पणी की—

“यह है खरा सागरपुत्र।”

राजा ने इस पर सिर हिलाकर दाद दी, और आगे पूछा—

“इसका अर्थ यह हुआ कि सागर-तट तुम्हारे लिये घर-आँगन जैसा है।”

“जी, याने समुद्र पर रहना अधिक, भूमि पर कम।”

एकाएक राजा ने पूछा—

“फिरंगी खलासी काम में कैसे होते हैं ?”

“एकदम सही। पर शराब और ताड़ी न ली हो तब। पीने पर खलास।”

“आरव, मूर और कच्छी ?”

“ये सभी देह-बल में बढ़े-चढ़े, पर काम में जीवट कम। कहने का अर्थ यह कि हमारे बन्दरगाह का माँझी दो-चार दिन खाने को न मिलने पर भी पतवार से हिलेगा नहीं, और इन विलायती खलासियों का काम कैसा ? कि ताउज पर बैठने पर...।”

अण्णाजी ने पूछा—

“ताउज क्या ?”

“डांडे जी। डांडे चलाने बैठे तो मुँह में खून उतरने तक डांडे चलाते रहेंगे, पर खाने को न मिला तो मुरदा होकर पड़े रहेंगे। इन विलायती खलासियों को भूख बहुत सताती है।”

एक सेवक ने तबक में पानी भरा पात्र आगे किया। राजा ने उसे ओठों पर लगाया। फिर धूंट-धूंट पीते हुए वे अण्णाजी पंत से कहने लगे—

“पंत, यहाँ का पानी स्वादिष्ट है।”

“जी, स्वामी।”

“पर पाचन के लिये कुछ भारी है।”

“स्वामी का अनुमान एकदम सही है। नाना वृक्षों की जड़ों में से सोते बहते आते हैं, वहाँ तक सूर्य का प्रकाश पहुँचता ही नहीं। अनेक स्थानों पर पानी ढका सा रहता है, इसीलिये यह पानी पाचन के लिये भारी है।”

पानी पीकर राजा ने पात्र एक और रख दिया और मायनाक से पूछा—

“मायनाक ! दरिया सा मित्र नहीं, यह सही है ?”

“एकदम सही, धनी ! दरिया सा मित्र नहीं मिलेगा। छोटी-छोटी डोंगियाँ लेकर मछली पकड़ने के लिये मछुए दरिया में दूर तक जाते हैं, वे किसके भरोसे पर ? ऊपर आसमान और नीचे पानी, इससे परे कुछ

भी दिखता नहीं। उसी में ऊपर बादलों की नमी छायी हो तो, वह दर-वाजा भी बंद। सारा कुछ कोंध सा जाता है, साँस भी फूलने लगती है। ऐसे कुसमय में भी दरिया की गोद में सिर रखकर मछुए निश्चिन्त रहते हैं। अब तूफान की बात कहो तो तूफान वया सूखी धरती पर नहीं उठते?"

राजे प्रसन्न हो रहे थे, कहने लगे—

"बोलो मायनाक, बोलते रहो। बहुत सही बोल रहे हो।"

बन्दन कर मायनाक आगे बताने लगा—

"हमारे छोटे-छोटे बच्चे, उनको लंगोटी लगाना भी नहीं आता, तब से वे दरिया के पानी में खेलते रहते हैं। उनके ऊंचम, मस्ती, सब दरिया पर। माँ मारने दीड़ेगी तो सपृत डोंगी या कौवा जो भी मिले उसे लेकर दरिया में भागेगा। विवाह होने पर दोनों ही साथ-साथ दरिया में दूर तक उसे नारियल चढ़ाने जायेगे। संसार के प्रपञ्च में कुछ दुःख-सुख हुआ' भी तो माँझी अकेला नाव लेकर दरिया में चला जायेगा, अपना सारा सुख-दुःख दरिया को ही सुनायेगा। ऊपर आसमान में तारे चमकते रहते हैं, पानी में मछलियों की चमक होती रहती है, वाकी सारा शान्त-शान्त रहता है। और मरना? तो सूखी धरती पर मरा, वह फूटे भाग्य का। मरना ही है तो दरिया पर मरें ना, आसमान का ओढ़ना और दरिया का विछोना, हवा का एक झोंका आयेगा और अपने साथ प्राण ले जायेगा। इससे बढ़कर दूसरा भाग्य हम जानते नहीं महाराज!"

कुछ क्षण रुककर आवेश में भरकर मायनाक बोलने लगा—

"पर इन समुद्री डाकुओं ने ऐसा सुख से मरना भी दुश्वार कर दिया है। कैसा निर्भय सा था समुद्र, हमारा दरिया। पर अब कोई भरोसा नहीं रहा। कब कौन सा भूत-बेताल उगेगा और कब मल्लाहों के शरीर दरिया की मछलियों को खाने के लिये काटकर फेंक देगा और लूटमार कर चला जायेगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। इसके पहले दरिया मानो मायके की राह था, पर इन जलमुँहों ने सारा नाश कर दिया है इस राह का। सारा इमशान सा हो गया है, आज दरिया में ढांडे डालते हुए भी डर लगता है।"

इतना बोलकर मायनाक बार-बार राजा के सामने माथा टेक-टेककर

फिर कहने लगा—

“महारांज ! मेरी यह गुहार, पुकार, फरियाद, मेरी अकेले की नहीं है, सारे कोंकण का यह दुःख-कष्ट है । सारा बन्दरगाहों का कोंकण आपके द्वार पर खड़ा है, ऐसा समझो; और कुछ भी करो । कोंकण की बहू-बेटियों की प्रार्थना है यह । उनके आने-जाने की राह सुख की कर दीजिए ।”

शिवाजी ने गम्भीर स्वर से कहा—

“मायनाक ! इतनी पुकार करने की आवश्यकता नहीं है । यह कर्तव्य है हमारा । बहू-बेटियों की, बहिनों की सहायतां के लिये हम नहीं दौड़े तो व्यर्थ ही मैं साहिबा के उदर से जन्म लिया । उनकी गोद तब व्यर्थ गयी । वह रहने दो । हमें अब यह बताओ, इस कोंकण के बन्दरगाहों की तुमको कितनी और कैसी जानकारी है ।”

“हर बन्दरगाह का चप्पा-चप्पा पूछ लीजिए । खाड़ियों के जवार-भाटों के समय, सारा का सारा खुला बन्दरगाह, कौनसा नस्त कहाँ है, मापटी कहाँ है ।”

“मापटी क्या होता है ?”

“मापटी के माने बन्दरगाह के तट के पानी के नीचे संपाट सी पत्थरों की ढलान । नस्त माने दो और से घिरी पहाड़ियों के दीच में से खाड़ी में घुसने का स्थान । किस खाड़ी के मुहाने पर कितना कीचड़ और मिट्टी जमी है, पानी कितना गहरा है, मौजा खौलता है तब पानी कितना होता है… ।”

“मौजा ?”

“माने दरिया का पानी । डफलियों का वेग कितना, डफली माने लहरें । इस सबकी मुझे जानकारी है । हमारी आँखें ऐसी तैयार हैं कि दूसरे को दूर छोटा सा काला-काला दिखेगा, पर हम उतनी दूर से बता सकते हैं कि दूर दिखने वाला वह काला सा जहाज कौन सा है, किस जाति का है और किस बन्दरगाह का है ।”

राजे शान्त चित्त से सुन रहे थे । उन्होंने पूछा—

“मायनाक ! तुम्हारा उपयोग होगा । इस सत्कार्य में तुम उपस्थित रहो, बस, यही हम चाहते हैं । पर इस दरिया किनारे की तुम्हें जानकारी-

कितनी है ? ”

“नहीं जी, दरिया की बातें पूछ लीजिए, दरिया के किनारे की मुझे जानकारी बिलकुल नहीं है । ”

—

“ठीक है, सिंही के आरमार में कितने प्रकार के जलपोत हैं ? ”

“बड़ी महागिरि, चार-चार, छः-छः पालों की, उन पर चार-चार तोपें, दो-दो पालों के गुरुवे और जूग । ”

“जूग क्या ? ”

“यह भी एक जहाज ही होता है, पर छः पालों वाले गलवत से यह चौड़ा होता है । गलवत होता है कुछ सँकरा, पानी पर हवा के साथ भागने वाला । जूग जहाज विशाल होता है । इनके साथ ही मच्वे, तरनी, तिर-कटी, डुगियाँ…… । ”

अण्णाजी की ओर मुड़कर राजा ने कहा—

“अण्णाजी, यह सब एक बार जाकर प्रत्यक्ष देखना ही होगा, केवल नाम सुनने से कुछ जानकारी नहीं होती । अच्छा, मायनाक ! ये सारे ही जहाज सिंही कहाँ तैयार करवाता है ? ”

“राजापुरी के ऊपर, खाड़ी के कुछ ऊपर उसका कारखाना है । वहाँ चालीस-पचास कारीगर रात-दिन काम करते रहते हैं । ”

“ये सभी कारीगर हमारे देश के हैं ? ”

“जी, कुछ इस प्रदेश के, कुछ काठेवाड़ी भी हैं । ”

“इस सबके लिये आवश्यक लकड़ी कहाँ से आती है ? ”

“महाराज, इन जहाजों के लिये नामी लकड़ी सागवान की है । छोटी नौकाएँ, जैसे डुगियाँ, किंशियाँ और तरनी आम या पगारा की होती हैं । पर बड़ी पालों वाली नौकाएँ वाँधनी हों तो सागवान ही चाहिए । ”

“अपने इस प्रदेश में भी सागवान प्रचुर मात्रा में होता है । ”

“यह कहना सही है, पर अपने प्रदेश के सागवान में गाँठें बहुत हैं । ”

“तब उत्तम सागवान कहाँ मिलता है ? ”

“कानड़ी प्रदेश में । उधर के जंगल कितने धने हैं, हम कभी उधर

गये नहीं, पर सुना है कि उस जंगल में हाथी भी खो गया तो मिलेगा नहीं।”

“तब सिही उधर से ही लकड़ी मँगाता होगा।”

“हाँ, पर बताने भर के लिये। और वाकी वह सूरत की ओर जाने वाले गलवतों को लूटकर जुटाता है। दरिया का मामला, दाद न फरियाद। पूछने वाला है ही कौन?”

आश्चर्य से राजा ने पूछा—

“सूरत की ओर जाने वाला माल? यानी बादशाह का?”

“तो क्या?”

“सिही तो स्वयं को मुगल बादशाह का कदमबोस सेवक कहता है।”

“महाराज, दो-तीन बार तो सारा सागवान राजापुर के कारखाने में उतार लिया था, और जहाज डुबो दिये थे, यह मैंने अपनी आँखों से देखा है।”

क्षणभर शान्त रहकर, राजा ने राणोजी और बाजीराव की ओर देखकर कहा—

“तुम दोनों ही ठहरो, बाद में हमें मिलो। हमारी जनकाऊ कहाँ है?”

“उधर अपने मुकाम पर है, दुलावा भेजूँ?”

“नहीं, रहने दो। हम ही उधर जायेंगे तब उससे बातें कर लेंगे। तुम दोनों दरिया किनारा देखने जाओगे, तब उसे फिर से अकेले ही रहना है; हमारे ही छबीने के साथ उसे माँ साहिबा के पास पहुँचाने का विचार है।”



राजापुर के तांबटों की बस्ती में घड़े ठोकते तांबटों की ठक्क-ठक्क की आवाज से आते-जाते लोगों को सिरपीड़ा होनी चाहिए। पर वहाँ ऐसा नहीं था। आसपास की बस्ती के सभी लोगों को अब इस सबकी आदत हो गयी थी।

कोंकण में तांबटों की दो बस्तियाँ थीं, उत्तर कोंकण में महाड़ में और दक्षिण कोंकण में राजापुर में। पूरे दक्षिण कोंकण में लगने वाले छोटे-घड़े वर्तन राजापुर में गढ़े जाते थे। हर घर के बाहर बनी दुकान

में भूमि में ठुके लोहे पर वर्तन रखकर लकड़ी के गठ्ठे पर बैठा तांबट। पसीना पोंछते हुए लकड़ी के हथोड़े से ठोकता रहता। हर हाथ एक सा, एक से वेग का और एक सीधी रेखा में। एक बार कागज पर खींची मसिं की रेखा टेढ़ी हो सकती है, पर तांबट के हाथ के वर्तन पर ठुकी रेखा में अन्तर पड़ नहीं सकता। हर एक ठोके के साथ अनगढ़ वर्तन के उस स्थान पर ताँवा दमकने लगता। लोहे पर चढ़ने के पहले अनगढ़ दिखने वाला वर्तन ठोके पड़ते ही नया और सुरूप दिखने लगता। बारहों मास और रात-दिन इस बस्ती में ठोक-ठोक चलती ही रहती। उसी में अब सारी बस्ती को नया काम मिला था। बीजापुर में किसी खान का वर्षों बाद लड़का हुआ था। इसी खुशी में वह फकीरों को ताँवे के लोटों की खेरात बांटने वाला था, और हर लोटे के साथ सोने की एक-एक मुहर। लगभग आठ-दस हजार फकीर बीजापुर में आने वाले थे। चारों ओर से हजारों फकीर बीजापुर की ओर जा रहे थे। बीजापुर के मिठाई वाले भी मिठाईयों के ढेर के ढेर बनाने में जुटे थे, हर फकीर को लोटा और अन्य भिखरियों को मिठाई, ऐसी सारी खेरात होने वाली थी।

ये सभी लोटे ऊपर घाटों के बाजारों में भी बन सकते थे। खान खाना खाने और पानी पीने, दोनों ही काम आने वाले चौड़े और बड़े लोटे चाहता था। ऊपर घाट के बाजारों के तांबट अपने वर्तनों के बढ़िया आकार बदलने को तैयार नहीं थे।

राजापुर में यह काम आने का एक कारण और भी था। वहाँ का सूबेदार था खान रुस्तमे जमान। इसके बाप रणदुल्लाखान के समय से इस खानजादे के साथ रुस्तमे जमान की यारी-दोस्ती थी। खानजादे ने इस काम की बात उठायी तो रुस्तमे जमान ने काम का भरोसा दिया। इस सारे ही काम की दलाली ली थी अंग्रेजों की कम्पनी के गफड़ टोपीकर ने। अपने जाने-पहचाने लमाणों के काफिलों के हाथों वे सारे वर्तन अणस्कुर के घाट से ऊपर चढ़ाकर वह बीजापुर तक पहुँचाने वाला था। उस काफिले के साथ वह अपने कुछ गोरे सिपाही भी देता। अर्थात् उस काफिले की सुरक्षा का भी सारा दायित्व उसने ले रखा था।

इसीलिये सारे ही तांबट प्रातःकाल उठकर भरपेट माँड पीते और

काम पर जुट जाते। पहर भर दिन चढ़ने तक उनके लिये अमचूर की गरम-गरम कढ़ी तैयार मिलती थी। पहर भर बर्तन ठोकते-ठोकते तन में चढ़ी गरमी के लिये यह कढ़ी रामबाण उपाय थी। वह कढ़ी तन की गरमी को दूर कर उसे शीतल करती।

ऐसा मनभाता काम मिलने के कारण तांवटों की वस्ती प्रसन्न थी। छोटे-छोटे छोकरे भी छोटे-छोटे सूप भरभर कर नन्दी बैल वालों की झोली में धान भर रहे थे। नन्दी वाले का नन्दी गर्दन हिला-हिलाकर उस वस्ती का भविष्य बढ़ा-चढ़ाकर बता रहा था। नन्दी के साथ तीन लोग थे। एक गलमुच्छों वाला था, बातूनी, बहुत बोलता। घर से दौड़-दौड़कर छोटी-छोटी बच्चियाँ छोटे-छोटे सूप लेकर द्वार पर आ खड़ी होतीं। उन सभी से हँस-हँसकर परिहास करता, कहता—

“बोल रे नन्दी राजा, इस छोटी बकुला का अगले बरस व्याह होगा कि नहीं ?”

नन्दी गर्दन हिलाता, गलमुच्छों वाला कहता—

“देखो हमारा नन्दी कहता है, व्याह होना, होना, होना। और व्याह होते ही दस-बीस बच्चे भी होंगे कि नहीं ?”

नन्दी के गर्दन डुलाते ही गलमुच्छों वाला कहता—

“होंगे जी, होंगे।”

यह सब सुनकर वे छोटी-छोटी बच्चियाँ हँसतीं, चिल्लातीं और उनके पीछे खड़ी उनकी माँ, मोसियाँ इस हँसी पर स्वयं भी हँसतीं।

इसी में कभी नन्दी वाला कहता—

“पाँच-पच्चीस छोरियाँ भी होंगी कि नहीं ?”

नन्दी गर्दन डुलाता और गलमुच्छों वाला इधर-उधर सावधान दृष्टि से देखकर कहता—

“नहीं रे नन्दी राजा, नहीं। बच्चियाँ होना नहीं। उनको कौतुक से पालो, बढ़ाओ, सयानी होने पर किसी रात दुश्मनों का धावा आने पर धावे वाले उनको उठाकर ले जायेंगे। सच है ना नन्दी राजा ?”

इस पर नन्दी राजा गर्दन डुलाता। धावों का नाम सुनते ही वहाँ खड़ी सभी स्त्रियों पर भय छा जाता। उसे दूर करने के लिये नन्दी वाले

दमाढ़म ढोल पीटते । एक ओर टिपरी फटकारते, दूसरी ओर गुबु-गुबु की ध्वनि निकालते और फिर से तमाशा देखने वालों को प्रसन्न करने के लिये किसी छोकरे के सिर पर हाथ रखकर पूछते—

“वता रे नन्दी राजा, यह पिछी बड़ा साहूकार होगा कि नहीं ? इसके द्वार पर दस-बीस हाथी डोलेंगे कि नहीं ? उनके सिर की जुएं रास्तों पर दोड़ेंगी कि नहीं ?” ऐसा सब सुनते ही सारी भीड़ हँसने लगती ।

यह सब सुनकर उस छोकरे की माँ सूप भरकर घान नन्दी वाले की झोली में भरती । नन्दी वाला उसी के द्वार पर खड़े-खड़े हँसते हुए कहता—

“माँ घान ही दी । तेरे आँगन में इतने बर्तन बन रहे हैं । इस नन्दी को नहाने के लिये एक डोलची ही देती ।”

दूसरी स्त्रियाँ हँसकर उस माँ को कहतीं—

“दे दे माय । नन्दी को बर्तन दे, नहीं तो बड़ी सी डेगची ही दे दे ।”

यह सुनकर वाली सी मुद्रा बनाकर गलमुच्छों वाला भी कहता—“ठीक, ठीक । माँ, दे ही दे एक बड़ी सी डेगची । हमारे नाते-रिश्तेदारों के ब्रह्मोज में उसमें खीर बन जायेगी ।”

ऐसा ही हास-परिहास चल रहा था । ढोलक पीटने की आवाज उठ रही थी । तीनों ही नन्दी वाले आसपास के घरों से मिली सारी भीख झोली में डाल रहे थे और और साथ ही उनकी आँखें इधर-उधर निरख रही थीं । तभी एकाएक घर-घर के द्वारों पर खड़ी भीड़ भाग-भागकर भीतर छुप गयी । अब तक भरी-भरी वस्ती एकदम सुनसान हो गयी ।

वस्ती के दूसरे छोर से ठाठ से टप-टप करते दो-चार घोड़े बस्ती में घुसे । उनमें एक अकड़ से बैठा सूबेदार रुस्तमे जमाँ था । तालुकेदार खान दिलफरियाद खान था । वे दोनों सांब शेटी के साथ बातें करते आ रहे थे । गलमुच्छों वाले ने पगड़ी बांधे अपने साथी को आँखों से संकेत किया । वह जोर-जोर से ढोल पीटने लगा । तीसरे के नन्दी बैल की गर्दन सहलाते ही वह जोर-जोर से गर्दन हिला-हिलाकर गले में बैंधी धंटियाँ बजाने लगा ।

“कहाँ के लोग हो तुम ? यह क्या तमाशा खड़ा किया है ?” दिलफरियाद खान ने अपना घोड़ा रोककर और उसकी अनीन छोड़कर पूछा ।

तब तक तीनों ने नन्दी बैल के साथ उसको धेर लिया। ढोलक वाले ने भी—
गुबु-गुबु ढोलक बजाकर हल्ला मचा दिया। नन्दी बैल भी आदत के अनुसार
गर्दन ऊपर-नीचे करते हुए गले की घंटियाँ बजाने लगा।

गलमुच्छों वाले ने अपना आलाप प्रारम्भ किया—“नन्दी राजा !
नायब साब का भला होगा कि नहीं ? होगा, होगा। वह ताल्लुकेदार बनेगा
कि नहीं ? बनेगा, बनेगा। वह जो पीछे खड़ा है वह सूबेदार बनेगा कि
नहीं ? बनेगा, बनेगा। उन पर बाच्छा सलामत की मेहरेनजर होगी कि
नहीं ? होगी, होगी। वह बीजापुर में बजीर बनेगा कि नहीं ? बनेगा,
बनेगा। वह मेरे नन्दी राजा के पैर में सोने का तोड़ा पहनायेगा कि नहीं ?
पहनायेगा, पहनायेगा।”

यह आलाप और खुशामद कुछ अधिक ही हो रही थी। ताल्लुकेदार
स्वयं को बहुत गरम मिजाज का मानता था, पर नन्दी वालों की स्तुति
और खुशामद ने उसे नरम बना दिया था। वह मन में प्रसन्न हो गया था,
पर मुँह पर रोब दिखाते हुए थोड़ा डपट कर बोला—

“बस करो यह शोर। तुम यह सब दंदफंद करते हो। हो कहाँ के ?
वतन कहाँ है तुम्हारा ?”

भुरु-भुक्कर बार-बार आदाबअर्ज करते हुए गलमुच्छों वाले ने
कहा—

“जी, हमारी वस्ती कहाँ है ? सोलापुर के पास नन्दी बाड़ी। वहीं
के वासिन्दे हैं हम सब। आठ-दस महीने इधर-उधर घूमते हैं, कभी यहाँ
कभी वहाँ।”

उन तीनों की ओर तीखी दृष्टि से देखते हुए, दिल फरियाद खान ने
कहा—

“तुम रिश्ते में तीनों कीन लगते हो ?”

“अच्छा जी, नाता भी पूछ रहे हैं ?” हँसकर गलमुच्छों वाले ने कहा—

“यह मेरा ममेरा भाई है और मेरा साला भी। यह दूसरा मेरा मामा
भी और ससुर भी।”

सांव शेटी ने हँसकर कहा—

“खानसाब, सारा गड़वड़ होता है इन लोगों में।”

इस पर गलमुच्छों वाले ने विवशता से हँसकर बात टाल दी। खान ने पीछे खड़े अमीन की ओर देखकर कहा—

“जरा गौर करके नजर रखो इन लोगों पर, कहीं जासूस न हों।”

यह सुनकर गलमुच्छों वाले ने अपने ही मुँह में मारकर कहा—

“जो जासूस हो, उसके खाने में मिट्टी पड़े हुजूर। हम गरीब हैं, भीख माँगते हैं, खाते हैं।”

“अच्छा जाओ, जाओ। माँगो भीख। पर यहाँ के बजाय अंगरेजों की बस्ती के पास जाकर यह सब तमाशा बताओगे तो वे खुश होकर कुछ बख्शीस दे देंगे।”

फिर से खानसाव को आदावर्ज फर्मति हुए वह बोला—

“लेकिन हुजूर ने तो कुछ दिया ही नहीं।”

आँखें तरेरकर अमीन ने कहा—

“वेहूदो ! तहसीलदार साहब तुम्हारे लिये अनाज की भोली लटकाकर थोड़े ही घूमते हैं। चलो, हटो एक और।”

एक और हटते हुए गलमुच्छों वाले ने विवशता प्रकट करके कहा—

“वह घोड़े का घुँघरुओं का पटोही दे देते मेरे नन्दी राजा को।”

अंग्रेजों की कोठी और गोदाम एक छोटी-सी चार बुर्जियों की गढ़ी ही थी। उसकी क्षमता थोड़ी थी। भवन को बढ़ाने की आवश्यकता थी। हेनरी रेविंगटन ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को पत्र भी भेजे थे। पर कम्पनी की ओर से अनुमति आकर भवन का काम प्रारम्भ होने तक उतने ही स्थान में व्यापार का बढ़ता फैलाव सेंभालना भी आवश्यक था। उस गढ़ी के पीछे भाड़ी में ढकी पहाड़ी; और आसपास चौड़ा सा अहाता, उसमें छप्परों से ढके दालान। नाना प्रकार के सामानों से वे सारे ही दालान खचाखच भरे थे। आँधी और बरसात से खराब होने वाला माल भीतर पक्के कोठों में भरा था और धातुओं का माल, तोपों के गोले, रेजगारी, कडाविनी, जेजाला, तोप, सीसा जैसा माल आँगन के दालानों में पड़ा रहता।

खाड़ी के इस पार से छोटी-छोटी डोंगियों में भर-भरकर तांबटों की बस्ती में बने बर्तनों के बंधे गट्ठर उस पार उतरते, लंगोटी लगाये हमाल वह सारा माल आँगन के दालानों में लगाते। परों से मढ़ा बड़ा सा टोप

लगाये ढीला-ढाला पजामा पहने बूढ़ा सा एक गोरा सिपाही उस काम की देखरेख करता खड़ा था।

ज्वार के पानी के साथ-साथ भीतर राजापुर के घाट तक आया 'द विकटरी' नाम का चार पालों वाला जहांज तट के समीप लकड़ी के बड़े-बड़े लट्ठों से साधकर रखा था और उसमें छोटा-मोटा सुधार किया जा रहा था। बन्दरगाह का घाट और अंग्रेजों की कोठी, इन दोनों के बीच पीपल के चबूतरे पर अंग्रेजों का दुभाषिया दुल्लभ शेटी और सांब शेटी गुमास्ता दोनों ही शिकार के लिये पहाड़ों में गये गिफर्ड की राह देखते बैठे थे। जैसे-जैसे दिन चढ़ रहा था उनकी बैठकें बदल रही थीं। नन्दी बैल को लेकर तीनों उस पीपल के नीचे आये। उनको देखकर सारे ही हमाल उनकी ओर भागने लगे। बूढ़े अंग्रेज की फटकार सुनकर वे सारे फिर से काम में जुट गये। पगड़ी पहने नन्दी वाले ने ढोलक बजाना चाहा, उसे हाथ से रोककर गलमुच्छों वाले ने कहा—

“अरे, रुक भाई, थोड़ा तो रुक। मेरे नन्दी राजा को थोड़ा आराम भी तो कर लेने दे। वह खाड़ी की हवा खायेगा, इनका साहब शिकार से लौटेगा। यहाँ बड़े-बड़े शेटी बैठे हैं, उनका भविष्य और होनहार, यह नन्दी राजा बतायेगा।”

चबूतरे के निकट पड़े एक पत्थर पर बैठकर गलमुच्छों वाले ने शेटी से पूछा—

“दादा ! चिलम तो है मेरे पास, तमाखू है क्या थोड़ी सी ?”

उसकी यह ढिठाई देखकर दुल्लभ शेटी ने साथी से कहा—.

“इन भिखरियों को छोटा-बड़ा कुछ है ही नहीं।”

गुमास्ते ने शेटी की बात पर सिर डुलाते हुए कहा---

“हाँ जी, और क्या ? क्यों रे ! ये कौन हैं, यह बिना पूछे, बिना जाने ही, एकदम हाथ पसारते हो ?”

“इतनी ही अकल होती तो भीख माँगते क्यों धूमते !”

“मेरे मालिक, तुम चाहो तो तमाखू मत दो, पर ये शेटी का एक दिन ऐसा आयेगा कि पूरा गाँव इसके दरवाजे पर हाथ पसारे खड़ा रहेगा। शेटी ! तेरे मस्तक पर रेखा ही ऐसी है। मैं भीख माँगने वाला रोटी का

कौर माँगता धूमता हूँ, पर मेरा बताया भविष्य कभी भूठा होगा नहीं। तब तुझे मेरी याद आयेगी रे मेरे महाराजा !”

यह सुनकर शेटी की अप्रसन्नता कुछ कम हुई। गुमास्ते ने भी कहा—

“लो, सुन लो। और कौन सा प्रमाण चाहिए? हम तुम्हें बार-बार बताते हैं कि इन गोरों का व्यापार ऐसा ही बढ़ता जायेगा, उन्हें तुम जैसों की जरूरत हर घड़ी पड़ेगी।”

कुछ प्रसन्न होकर दुल्लभ शेटी ने कहा—

“तब तुम्हारा मुँह भी मीठा करूँगा। अब तो खुश ?”

“मीठे भर से काम नहीं चलेगा, अभी बता देता हूँ। कल अणस्कुर घाट की चौकियों की नीलामी गोरों ने ले ली…। पर उन नीलामियों का हुआ क्या? बादशाह की ओर से कुछ खबर आयी? खलिता चिट्ठी आने पर सबसे पहले उसकी खबर तुम्हीं को होती है, इसलिये पूछ रहा हूँ।” गुमास्ते ने शेटी से कहा।

सामने नन्दी बैल वाले के अतिरिक्त कोई नहीं है, यह देखकर शेटी ने कहा—

“अभी वह बात सभी को बताने की नहीं है।”

तभी गुमास्ते ने अपने गले पर हाथ रखा, कहा—

“सौगन्ध है, किसी को नहीं कहूँगा। पर आपने हमारी यही परीक्षा की? भरोसा करो, तुम्हारी बात बाहर नहीं जायेगी।”

“नहीं जी, मैं क्या जानता नहीं हूँ तुमको? पर एक बात कही मैंने। इस रस्तमे जर्मा की करतूत तो सभी जानते हैं।”

“अधीर क्या, यही देखो। अब अपने ही दोस्त के लिये यह खान लोटे बनवाकर भेज रहा है, उसमें भी इसने अनाप-शनाप रकम बीच में ही ढकार ली। दाम डेढ़ गुना बढ़ाकर बताये। बहुत दिनों बाद पूत हुआ, इसलिये पगलाकर उसने भी उतनी रकम दे दी।”

“अजी, मुर्दे के तालू पर रखा थी तक चट करने वाले हैं ये लोग। यहाँ दोस्तों का क्या? ये लोग तो अपने वाप को भी लूटेंगे। पर यहाँ इन गोरों का काम देखा? पैसे का पूरा लेखा-जोखा, खर्चों का सारा व्योरा, कम्पनी की कचहरी में पहुँचेगा। अब इस अणस्कुर के घाट की बात ही

देखो । कल राजापुर सूबे की सूबेदारी कम्पनी ने बादशाह से नहीं ली तो मेरा नाम नहीं । ए, नन्दी वाले, सो रहा है क्या ? ”

जम्हाई लेते गलमुच्छों वाले ने कहा—

“दादा ! तुम्हारे इस देश में कीड़े और जीव-जन्तु भी कितने हैं । रात को कीड़ा निकला था । फिर नींद नहीं आयी । पर तुम्हारा साहब कब तक आयेगा ? ”

“अबे, वह तेरे जैसा डयामफूल है क्या ? ”

“दादा, ये डयामफूल क्या होता है ? ”

“डयामफूल माने इस देश का आदमी । ”

“गोरों की भाषा का शब्द है यह ? ”

“उनके पास समय देखने का भी यन्त्र है । ”

मुंह बाये, चकित हुए गलमुच्छों वाले ने पूछा—

“ओ मेरे बाप ! वह क्या होता है जी ? ”

“तू क्या समझेगा ? वह एक गोल यन्त्र होता है । उसमें काँच लगा होता है । अन्दर दो काँटे होते हैं । उनसे समय पढ़ा जाता है । दिन ढलते ही दोनों साहब खरगोशों की माला लटकाये हुए लौटेंगे । ”

“आने दो, आने दो, फिर मैं अपने नन्दी की करामात दिखाऊंगा । ”

“ये तेरा नन्दी क्या दिखाता है, बता भी । ”

“तो क्या तुम्हारे नायब साहब ने योंही भेजा है नन्दी राजा को ! खुद नायब साहब ने कहा—टोप वाला खुश होकर कुछ सिक्के देगा । ”

“पर तुम साहब को बताओगे क्या ? ”

“अरे, नन्दी राजा उसका भविष्य बतायेगा अक्षर-अक्षर । तुम्हारा साहब राजापुर का नायब बनेगा कि नहीं, यह भी वह बतायेगा । ”



अंजनवेली के घाट के पास तरी की राह देखते तीनों खड़े थे । साथ में उनका नन्दी बैल भी था । उसी घाट के समीप छप्पर के नीचे चौकी थी । व्यवस्थित ढंग से कटी दाढ़ी-मूँछों वाला चौकीदार खटिया पर बैठा हुक्का पी रहा था । चौकी का हाकिम एक व्यक्ति से झगड़ रहा था ।

उस व्यक्ति का बड़ा सा गट्ठर फैला पड़ा था । उसमें सुकड़ी, कच्चे

केले, पकी सुपारी, कटहल, अनन्नास और पडवल का ढेर था। भगड़ा पानी के चार नारियलों पर चल रहा था।

वह व्यक्ति गोल किये हुए कागज हाथ में सँभालते हुए बोल रहा था—

“तब ? यहाँ जो लिखा है वह क्या मेरे बाबा ने लिखा ?”

“वह सब सही है, पर उसमें इन नारियलों पर जकात माफ है, ऐसा कहाँ लिखा है ?”

अपने हाथ का कागज सँभालकर खोलते हुए उस व्यक्ति ने कहा—

“अरे, पढ़ो तो। एक बार पड़ने दो इस पर उजाला। क्या दिये जलाते हो ! देखो, पर सँभलकर, नहीं तो मेरा यह परवाना ही फाड़ डालोगे। कहीं यह फट गया तो फिर से मुझे दीवान की कचहरी में चक्कर लगाने पड़ेंगे।”

परवाने का कागज हवा में फड़फड़ाते हुए उस हाकिम ने कहा—

“क्या लिखा है………यह मोड़ी लिपि में लिखा एक अक्षर भी पढ़ा नहीं जा रहा है। सीधी भाषा में लिखा होता।

“हाँ, अजम अंवाजी भट्ट, कान्हला भट्ट।”

“अजी कान्हला भट्ट नहीं, कान्हया भट्ट। जो भी हो सिक्का। मोर्तव है या नहीं, देखो और नीचे वस्तुओं के नाम पढ़ो।”

“पढ़ रहा हूँ जी। इतनी जल्दी क्या है ? क्या शेर पीछे पड़ा है ? यह परवाना किसके नाम से दिया है, यह भी मैं न देखूँ ?”

“क्या करना है देखकर—कीलोतपाटीव वानर………तरी चली जायेगी मेरी। फिर मुझे व्यर्थ में घड़ी दो घड़ी यहीं रुकना पड़ेगा।”

“देखो जी, इसे चौकी कहते हैं। सीधे पार निकलो तो चौकी, नहीं तो अटकी। बैठे रहो यहाँ तुम्हारे उस बन्दर जैसी पूँछ अटकाकर, मेरे पास फालतू समय नहीं है।”

“ठीक है बाबा, पढ़ो। जो चाहो करो।”

आसपास खड़े और लोगों की ओर देखकर अपना रौब जमाते हुए और उस व्यक्ति पर आँखें टिकाकर हाकिम ने कहा—

“अब क्यों ? पहले कह रहा था, तो नहीं माना।”

“पैर पड़ता हूँ, तेरे बाबा ! पर अब आगे तो बढ़ो ।”

“हाँ तो यह परवाना किसलिये दिया ? परवाना भी अस्सल तो है ? या खोटा कागज है यह ?”

“मेरे सपूत ! यह कागज खोटा नहीं है । तनिक देखो, पढ़ो । सूबेदार मोहम्मद शरीफ का सिक्का पड़ा है उस पर ।”

“देख ? मुहम्मद शरीफ………हाँ, सही है । तो आगे क्या है, चिखली ।”

“नहीं, चिखली ।”

“ठीक है, चिखली सही । तो चिखली की ऊसर जमीन आवाद करने पर नीचे लिखे मुताविक जकात मुआफ की गयी है । नारियल पाँच, केले दस, पान नग पाँच सौ, सुपारी पच्चीस, धान दो पसे री, राब एक सेर, और मछली………क्यों भट्टजी ! तुम मछली भी खाते हो ?”

हाथ जोड़कर उस भट्ट ने कहा—

“मेरे बाप ! अब वस भी कर । अरे यह मछली खाने के लिये नहीं, सुपारी के पेड़ों में खाद देने के लिये है ।”

“ठीक है, भोपला । भट्टजी आपकी संस्कृत से इस भोपला शब्द का विग्रह क्या होगा ? भो………पल, भोपल । माने अजी, भागो, बचो । देखो, भट्टजी हमने भी थोड़ा व्याकरण पढ़ा है, शास्त्री जी के पास ।”

“अजी, पण्डितजी महापण्डित ! अब यह परवाने का काम समाप्त भी करो, भाई ।”

“ठीक है जी । तो आगे क्या है ? एक महागुल, एक कुभेड़ा और पडवल एक गट्टा;……।”

भट्ट ने देखा यह हाकिम सारा परवाना पढ़े बिना आगे बढ़ेगा नहीं । तब भट्ट उठा, उसने चुपचाप अपने गट्टर से दो नारियल उठाये और चौकी-दार के पास गया । उसे बताकर नारियल उसकी खाट के नीचे रखकर लोटा । चौकीदार ने हुक्के का कश खींचकर धुएँ से भरे मुँह से ही कहा—

“आ गया ख्याल में जबाब । बस । छोड़ दो उसे ।”

हाकिम परवाने का कागज लपेटते हुए बोला—

“हाँ, अब ठीक है । यही पहले किया होता तो ? व्यर्थ में झगड़ने

बैठा । ”

“गलती हो गयी जी । ”

पर यह झगड़ा समाप्त होने तक भट्ट की तरी चली ही गयी । नन्दी बैल वालों ने देखा कि इसी प्रकार जुटायी गयी वस्तुओं से वह सारा छप्पर भर गया था । जिन पर जकात देना आवश्यक था, ऐसी भी अनेक वस्तुओं को ले-देकर छोड़ दिया जाता था और खाड़ी पार जाने दिया जाता । पर थोड़ा भी कहीं झगड़ा किया कि फिर पूरी जाँच की जाती । अनेक बखेड़े किये जाते और विना जकात की वस्तुओं को भी अटकाया जाता । बैल पर कुछ टके जकात देनी ही पड़ती, पर चौकी की सारी कार्य-प्रणाली देखकर, नन्दी बैल वालों ने अपना हर समय का शस्त्र निकाला । चौकी के हाकिमों को ज्योतिष के चक्कर में खूब चढ़ाया, खुशामद की ओर इसी से आगे की तरी से विना कुछ जकात दिये उन नन्दी बैल वालों को दाखोल ले जाने का आदेश हुआ ।

उस तरी का सारा तल भर गया था । सूखी मछली की तीखी गन्ध से नन्दी वालों के सिर फटने लगे । तरी में मछुओं की कलकल और कोलाहल इतना कि उसमें बैठना दूभर हो रहा था । लहरों पर तरी डोल भी रही थी, सो अलग ।

पर इन तीनों का उस ओर विशेष ध्यान नहीं था । गलमुच्छों वाला और उसका एक साथी दाखोल बन्दरगाह का बैभव देखकर चकित हो रहे थे ।

बन्दरगाह के पीछे किसी पालनहार के समान ऊँचा पर्वत खड़ा था । उसकी ढलान नारियलों की धनी राई से ढकी थी । उनमें से बीच-बीच में आमों के वृक्ष डोलते दीख रहे थे । इन सभी में से मस्तिष्ठों की मीनारे आकाश में धुस रही थीं । उस हरे-हरे, रेशमी साड़ी के से आकाश के छोर पर बन्दरगाह के तट की सफेद वालू किनारी की सी शोभा दे रही थी । बन्दरगाह अत्यन्त सुरक्षित । ठीक अन्दर के घाट तक, नस्त से भीतर आधा कोस तक गहरा पानी । खुले सागर में तूफान ऊधम मचाता रहे, पर बन्दरगाह के भीतर पेट का पानी भी हिलेगा नहीं । सागर में लहरों के प्रचण्ड वेग में जहाज एक दूसरे से टकराकर चूर-चूर होंगे, पर भीतर

बन्दरगाह में खड़े जहाजों पर उसका कोई भी प्रभाव नहीं।

इसी कारण अक्षरशः हजारों जहाज इस बन्दरगाह पर आसरे के लिये आकर ठहरते थे। अनेकानेक देशों के और विविध आकार-प्रकार के जहाज थे। उनमें इसी तटपटी पर आते-जाते जहाज थे, उसी प्रकार अंग्रेजी, बलंदेजी, फ्रांसीसी, फिरंगी, अरबी और मूर, ऐसे कितने ही देशों के जहाज थे। सभी जहाजों पर उनके अपने देशों के झण्डे फहरा रहे थे। इनमें से कुछ जहाज घाट तक लग चुके थे। अनेक अपनी बारी की प्रतीक्षा में खड़े थे। कुछ खाड़ी में ही लंगर डालकर खड़े थे। उनकी डोंगियाँ इधर-उधर आ-जा रही थीं। खलासी चिल्ला रहे थे, गालियाँ देते झगड़े रहे थे। घाट पर लगे जहाजों से माल उतारा जा रहा था। घाट से जहाज तक पड़े पटे हमालों के आते-आते लप-लपकर नीचे-ऊपर हो रहे थे। उन पटों के थोड़े से स्थान में एक दूसरे को बचाते हुए हमाल दीड़ते-भागते माल ढो रहे थे। उनके काम की देखरेख करने वाले हाकिम उन पर चिल्ला रहे थे।

दाभोल की टेकड़ी के बालेपीर का उस दो-चार दिन पर आया था। दाभोल के इस पीर का स्थान प्रसिद्ध था। वह मनोती पूरी करता था, ऐसी चारों ओर श्रद्धा थी। इसी कारण उस पीर के हजारों भक्तों और मनोती वालों ने दाभोल में भीड़ कर रखी थी। उनमें से अनेक बन्दरगाह का कौतुक देखने घाट पर खड़े थे। दाभोल बन्दरगाह के महमूद शरीफ का कारोबार प्रसिद्ध था। निकल गया तो हायी भी, नहीं तो चीटी भी निकलना कठिन। सूबेदार चण्डू भी पीता था। चण्डू से हुक्का भरकर और हाथ में नली लेकर सूबेदार बैठा हो, फिर उससे चाहे जिस फर्मान पर सिवका करवा लो। आदिलशाही में दाभोल बन्दरगाह का दूसरी दृष्टि से भी महत्व था। वह बन्दरगाह 'दरवाजा-ए-मक्का' भी था। शाही आसामी मक्का जाते तो इसी मार्ग से और लौटते तो भी इसी मार्ग से। मक्का से आये जहाज भी दाभोल बन्दरगाह पर ही उतरते। परदेश से कलाकारी की सुन्दर वस्तुएँ मँगानी हों तो बादशाह सलामत दाभोल के मार्ग से ही मँगाता था। इसी कारण यहाँ एक चतुर और बुद्धिमान सूबेदार की आवश्यकता थी। पर महमूद शरीफ पर बड़ी साहिवा की विशेष कृपा-दृष्टि थी। इसी कारण दाभोल पर जमे महमूद शरीफ के तम्बू की

खंटियों को हाथ लगाने का दुर्साहस कोई नहीं करता था। सूवेदार का कारोबार पहले ही अफलातूनी, तिस पर पीर का उसे भी था। ऐसे में बन्दरगाह पर हो रही आपाधापी की कल्पना कोई भी कर सकता है। कितने ही जहाज खाड़ी में लंगर डाले खड़े थे, पर उनको घाट पर माल उतारने की अनुमति अब तक मिली नहीं थी।

एक ईरानी जहाज खजूर लेकर खाड़ी में गत तीन माह से अनुमति पाने के लिये प्रतीक्षा में खड़ा था। इतने समय में खाड़ी की नम हवा से वह सारा खजूर सड़ गया। चारों ओर दुर्गन्ध फैली थी। एक रात उस जहाज के माँझी ने सारा खजूर खाड़ी में डुबो दिया और दूसरे दिन जहाज नस्त में से बाहर निकालकर भाग गया। ऐसी बुद्धिमानी की व्यवस्था होने के कारण किसी की कोई सुनता नहीं था। फिर भी दाभोल बन्दरगाह पर प्रकृति की कृपा कण्भर भी कम नहीं हुई थी। अंजनवेल का आकाश छूता किला कितने ही वर्षों से नस्त की सुरक्षा कर रहा था। उसी के सहारे मछुओं के जहाज सफेद पाल लगाकर सागर के पंछी जैसे हवा में तैरते समुद्र पर निकलते थे और मछली भर-भरकर लौटते थे। सूवेदार के कारोबार की अव्यवस्था के कारण बन्दरगाह के किनारे पर चलते मछलियों के व्यापार पर कहीं कुछ रोकटोक नहीं थी। न ही कोई कठिनाई थी। इसी कारण ढेर-ढेर ताजी मछली तट पर उतरतीं और उठ भी जातीं। मछलियाँ भी इतनी बड़ी-बड़ी कि वस्तियों की गलियाँ उन मछलियों की पूछों से टपकते पानी से गीली हो जातीं।

नन्दी बैल वालों की तरी भी दाभोल बन्दरगाह पर आ लगी। तब बन्दरगाह के घाट पर एक दूसरा ही कौतुक देखने को मिला।

अंजनवेल के करोड़गिर अधिकारी का दाभोल के अधिकारी से व्यक्तिगत मनमुटाव था। अंजनवेल के अधिकारी ने एक हाथी का परवाना दिया था। हाथी एक बड़े से तराफे पर पैरों में चमीटे लगाकर और रस्से बाँधकर खाड़ी के इस पार लाया जा रहा था। खलासियों को बड़ी कठिनाई हो रही थी। हाथी हिलडुल नहीं पा रहा था, फिर भी उसने दो-तीन खलासियों को सूँड से पकड़कर दरिया में दूर फेंक दिया था। एसे में भी मल्लाहों ने

जैसे-तैसे वह जहाज घाट तक लगा दिया था। अब एक बार हाथी घाट पर उतरा कि वे सभी मल्लाह थकान दूर करने के लिये माँड़ पीने भागने वाले थे।

पर यहाँ एक झगड़ा खड़ा हुआ। दाभोल के अधिकारी ने हाथी का परवाना देखा और फेंककर कहा—

“यह क्या परवाना है? इस पर न सिक्का है, न ही मुहर लगी है। हम नहीं मानते इस कागज के चीथड़े को।”

वैसे देखा जाये तो हाथी आदिलशाही का ही था, मलावार से वह दाभोल तक आया था और यहाँ से उसे बीजापुर जाना था। हाथी के महावत ने आश्चर्य से पूछा—

“हुजूर, मुहर क्यों नहीं? सिक्का भी तो लगा हुआ है। थोड़ा ध्यान से देखिएगा।”

मुंह बनाकर उस अधिकारी ने कहा—

“कहाँ है? ये गोवर का धब्बा, इसे मुहर कहते हैं? एक अल्फाज भी देखने में आ रहा है?”

हाथी का उत्तारना ऐसे में उलझ गया था। इधर हाथी सूँड उठाकर चिघाड़ रहा था। उसकी आवाजों से बन्दरगाह की वस्तियाँ हिल सी गयी थीं। कुछ देर बाद हाथी ने बल लगाया, रस्से तोड़ दिये और स्वयं ही दरिया में उतर गया। घाट की ओर बढ़ते हुए उसने मार्ग में आयी डोंगियों को, नीकाओं को सूँड से डुब्रो दिया। उसके पीछे डोंगियों में भागते शाही हशम त्रस्त हो उठे।

नन्दी वाले तीनों ने चण्डिकाई देवी के मन्दिर के पास एक खेत में अपना पड़ाव डाला। वहीं तीन पत्थर जोड़कर बनाये चूल्हे पर बनी माँड़ खाकर जैसे-तैसे दिन बिता दिया। एक बुद्धिया और उसका नाती, इन दोनों को नन्दी वालों ने देखा। किसी के हृदय की बात वाहर निकालना इन लोगों का खेल था। वे उस बूढ़ी से बातें करने लगे। उन्हीं बातों में वह बूढ़ी कहने लगी—

“मुर्दा पड़ा उस सूवेदार का। जले उसका घर।”

“दादी! आंबलदार को ऐसी गाली नहीं देनी चाहिए।”

“दूँगी रे दूँगी । उस मरे का सत्यानाश होगा । उस कलमुंहे की पालकी उठाने मेरा पूत भागकर गया नहीं । तब इन मरों ने उसके पैरों में बेड़ियाँ डालकर उस बड़ी मस्जिद को झाड़ने रख लिया है । मैं छोड़ूँगी उसे ? हजार बार गालियाँ दूँगी ।”

“दादी, पर तुम यहाँ क्यों आ रही हो ?”

“मेरा पूत हर रोज हंटरों के नीचे मस्जिद का आँगन झाड़ता है और मुझसे धर में सुख से कौर निगला जायेगा ?”

“तब यहाँ क्या करती हो ?”

“रोज जाती हूँ उसके नमाज के समय मस्जिद के पास ।”

“और ?”

“रोज उस मरे को गालियाँ देती हूँ ।”

उस बूढ़ी के साहस को देखकर तीनों ही चकित हुए । गलमुच्छों वाले ने पूछा—

“तब वह यह सब सुन लेता है ?”

यह सुनते ही उस बूढ़ी ने अपनी साड़ी पीठ से एक ओर कर अपनी पीठ दिखाई और कहा—

“यह देखो मेरी पीठ । उस कलमुंहे के हशमों ने मेरी पीठ हंटरों से कैसी कर दी है ।”

गलमुच्छों वाला भय से चकित होकर उस बूढ़ी को देखता ही रह गया । कुछ क्षणों बाद उसने पूछा—

“तब फिर ?”

“तब फिर क्या ? दूसरे दिन भी मैं फिर गयी उसे गालियाँ देने, कहा—ले मरे, एक बार प्राण ले ले, और फिर से गालियाँ दीं ।”



दाभोल बन्दरगाह की वस्तियाँ नाना प्रकार के माल से भरी थीं । पवकी दूकानों के अतिरिक्त बागों में भी पाल ठोककर सैकड़ों दूकानें सजी थीं । सूती और चौल के रेशमी कपड़े, छोट, सरवलाद, मखमली टोपियाँ, पलंग की नेवार, ऐसा कितना तो कापड़ी माल था । जायफल, मायफल, कायफल, लौंग, दीड़, मिश्री, छुआरे, कालीमिरच, ऐसा किराना

माल भी था। सूती और चमड़े के लगाम, जीन, तोबरे, खरारे, गले में पहनाने की काले मणि, ऐसा घोड़ों का माल था। तलवार, छुरी, किरच, खंजर, पेशकच्च, कटारी, खांडे, गुर्ज, ऐसे विविध प्रकार के शस्त्र थे।

दूकानदार भी देश-विदेश के थे। टोप और तुमान पहने अंग्रेज बलंदेज थे। काले स्याह और धुंधराले वालों के सिंही थे। चोरे लगाये अरब थे। बड़ी-बड़ी पगड़ियाँ बाँधे कच्छी भी थे। दूकानदार भाव बताते, कभी कहीं इसी में झगड़ा होता, वातों-वातों में लोग शस्त्र निकालते, भाग-दौड़ होती, काजी के हशम दीड़ते, गरीबों को बाँधकर खींच ले जाते, मुँहजोर आँखें तरेरते धूमते, गुण्डे छुरियों और कटारों पर लगा रक्त पोंछकर उनको म्यान में रखते।

इस भीड़ में सारे ही मुसलमान हों, ऐसा भी नहीं। अनेक कुनबी किसान भी लंगोटी लगाये सारा माल आश्चर्य से देखते धूमते। कसकर साड़ी पहने अपनी घरवालियों और छोरों को लेकर वे पगलों जैसे बाजार में धूमते। कभी-कवचित् छोटी-छोटी परभू और ब्राह्मणों की लड़कियाँ वालों में फूलों के गजरे पहने अपने भाइयों के साथ इधर-उधर बाजार में धूम रही होतीं।

कभी-कभी भीड़ बढ़ती, एकाएक कबीलों से कुछ कुनबी विछुड़ जाते। इसीमें किसी की घरवाली खो जाती। वह घरवाया सा इधर-उधर भागता, मार्ग भूल जाता और अन्ततः निराश-हताश होकर एक ओर जा चैठता।

रात में गठड़ी वनी वे ही स्त्रियाँ मचवों में डालकर गुलामों के बाजारों की ओर भेजी जातीं। दिखने में जो सुन्दर होतीं, वे किसी गढ़ी वाले के जनाने में जातीं। फिर कभी उनका नख भी किसी को दिखता नहीं था।

ये सारी बातें अब आदत बन गयी थीं। इसमें अनोखा कुछ भी नहीं रह गया था। सामाजिक जीवन की इस दुर्गंध को ढोता हुआ सारा कोंकण एक-एक दिन, मास और वर्ष जैसे-तैसे बिता रहा था। उसी में एक दाभोल भी था। रात में हिलालों और मशालों के प्रकाश में बन्दरगाह के अहाते में मुशायरा हो रहा था। उसमें अनेक शायर अरबी और फारसी की गजलें

सुना रहे थे। उन गजलों को, उस भीड़ में सभी समझ रहे हैं, ऐसा नहीं था। भीड़ में सबसे आगे जो बैठे थे, वे शायर को दाद देते, वाह-वाह करते, उनकी वाह-वाह सुनकर भीड़ भी चिल्लाती। उसमें भी, अनेक दर्दी अपनी पाँचों-अंगुलियों को चूमते 'वल्लाह' कहकर महफिल गुंजा देते। चारों ओर पर्याप्त भीड़ जुटी थी। कभी-कभी शायर की गजल सुनना भी दुष्कर हो रहा था। तब एक ने उठकर कहा—

"मेरहरवानो ! अब इस महफिल का सबसे बेहतरीन तोहफा हाजिर किया जाता है, बादशाह सलामत, खुदाताला आपको सौ साल जिलाये।"

इस पर भीड़ ने 'आमीन आमीन' कहकर आवाजें दीं। इस दाद पर आदावअर्ज फरमाते हुए वह आगे बोला—

"आप जिन पर रहम की बरसात करते हैं, वे मशहूर दखनी शायर मुल्ला नुस्ती, खुदा आपको सलामत रखे, आपके शागिर्द नूर नुस्ती अब अपने उस्ताद की कुछ गजले सुना रहे हैं।"

यह सुनकर भीड़ प्रसन्नता से 'वाह, वाह' चिल्ला उठी। नूर नुस्ती अपना चोगा सेभालते खड़े हुए। एक बार उसने चारों ओर देखकर कुकुकर आदावअर्ज किया और कहा—

"इस नाचीज गरीब के उस्ताद मुल्ला साहब नुस्ती, जिनकी शायरी की खुशबू बसरा और बगदाद तक पहुँच गयी है, आपने उन कमीने मरहठों का आँखों देखा हाल बयान किया है, मुलाहिजा फरमाइए—"

इतना सुनते ही सारी भीड़ कुछ सेभलकर जम गयी। वहाँ खड़े अनेकों की मराठों की सेना के साथ मुठभेड़ हो चुकी थी और उन जूँभों की निशानियाँ आज भी वे शरीर पर ढो रहे थे। भागते-गिरते उनकी पीठ पर बने घाव आज भी पीड़ा दे रहे थे। सारी भीड़ को शान्त देखकर आदाज उठाते हुए नुस्ती ने कहा—

"वह जहन्नुमी नाबकार, लयीम, बदसलागान सिवा, अल्लाहताला— उसे दोजख में भेजे—उसने जो फौज खड़ी की है उसमें इकट्ठे कौन-कौन हुए हैं, मुलाहिजा फरमाइए—

"मिलाया मुखंड चोर खूँखारक,
अपस सारक रिदो अय्यारक !"

इन पंक्तियों को सुनकर सारी महफिल प्रसन्न होकर चिल्ला उठी—

“‘चोर खूँख्वारके’ वाह, क्या फरमाया, फिर से एक बार दुहराया जाय।”

सलाम बजाते हुए नूर नुस्ती ने वही गजल फिर से कही कि इस शिवा ने चोर, रक्त के प्यासे, घड़यन्त्र में कुशल साथी जोड़ लिये हैं। आगे बोला—

“लिया कर अंगे कुनभटाँ फनके जोर।

खनौरे दरोड़ेखोर औबाश चोर॥”

‘दरोड़ेखोर’ शब्द पर फिर से एक बार भीड़ उछल पड़ी, ‘दीन-दीन’ कहकर चिल्ला उठी। उन्हीं में से पाँच-छः मनचलों ने आगे बढ़कर नूर नुस्ती को गले लगाया। उसकी दाढ़ी छूकर उसे चूम लिया। बार-बार झुककर आदावअजं करते हुए नुस्ती की कमर दुखने लगी। चारों ओर से आवाजें आयीं—

“इसे फिर से दोहराया जाय।”

नूर नुस्ती ने वह गजल फिर से दुहरायी कि उसने अपनी सहज चतुराई से और जुगत से कुनवी और दरोड़ेखोर दुष्टों को इकट्ठा किया है। नूर ने आगे कहा—

“जराभर गौर कीजिए। गजल दखनी बोली में पेश है।”

भीड़ चिल्ला उठी—

“हम सब कद्र कर रहे हैं।”

नूर ने गजल पढ़ी—

“अपन रह को मिल चोरट्याँ में मुखण्ड।

रच्याँ यकसो दूजी तरफ फौज अखण्ड॥”

अर्थात् शिवा स्वयं उन चोरों का मुखिया बना, और उसने अजेय सेना खड़ी कर ली है।

नूर को हर शब्द पर दाद मिलने लगी। “वाह वा, क्या खूब”, कहकर सारी भीड़ कहकहे लगाने लगी।

तभी दो-चार बलिष्ठ जवानों ने उठकर मारा-पीटीकर अपने बाजुओं की आकांक्षा पूरी कर ली और भीड़ में घुसकर थोड़ी देर बाद निरपराध

—स्सी मुखाकृति बनाकर आगे आकर बैठ गये ।

इस सबमें नूर की बातें ढूब गयीं । किसी को कुछ भी सुनाई नहीं दे रहा था । इसी सारे ऊधम् को देखकर काजी हाथ की माला ऊँची उठाते हुए बोला—

“ईमानदारो, खुदा के लिये चुप रहो । यों शोर मत मचाओ । नूर साहब इससे वेहतरीन गजलें पेश करना चाहते हैं । अभी तो आपने कुछ भी नहीं सुना । अल्लाहताला दोजख के सब करिश्मे उस पर बरसाये । उस कमीने सिवा ने और क्या-क्या किया, जरा गौरकर सुनिए तो ।”

भीड़ कुछ शान्त हुई । नूर फिर से गजल सुनाने लगा—“उन कमीने मरहठों की करतूत तो सुनो जरा भर—

“दिसेना वो जल्दी के बहुत अपने आप ।

विरादर है सावाँ के चोरों के बाप ॥

हर एक मादवाँ उनकी गोया, परी ।

दिखावै चन्द्र को अपस दिलशरी ॥”

अर्थात् इन मराठों के बीने टट्टू मानो आकाश की परियाँ हैं । आकाश में चन्द्रमा से बातें करते भागते हैं, मानो वे आकाश में हवाओं के साथ भाग रहे हों ।

“करै फिर जो काव्या की खूबी अयाँ ।

पड़े पेचमे देख आवेरवाँ ॥”

अर्थात् ये मराठे जब गनीमी कावे से अपनी निपुणता दिखाते हैं तब आश्चर्य से नदी की मेंवर भी दौतों तले अंगुली देती है ।

“करै दीड़ में आ को बारे सूं बात ।

मुँहासा ले उसका उड़े हाथ हाथ ॥”

अर्थात् वे शैतान के पूत घोड़ों पर बैठकर ऐसे भागते हैं जैसे हवा से बातें करते हों । उस समय उनके सिर के साफे हाथ-हाथ उड़ते रहते हैं ।

“हर एक नेजा बाजी में राउत बड़ा ।

खुलेगा चन्दर हत्से काड़े कड़ा ॥”

अर्थात् वे सभी भाला चलाने में कुशल हैं । वे सोच लें तो चाँद के हाथ का कड़ा तक उतार लायेंगे ।

“जो घन फौज के नाज में मुए निपड़ ।

तो नेज्या की उंगलीसूँ खोले धूंधट ॥”

अर्थात् वे मराठे अपनी सेना से बड़ा प्रेम करते हैं। उसके लिये प्राण देने के लिये भी तैयार रहते हैं। वे अपनी सेना को अपनी प्रिया मानते हैं और अपने भाले की नोक की अंगुली से उसका धूंधट उठाते हैं।

यह सुनकर सारी भीड़ उत्तेजना में आकर चिल्लाने लगी।

नन्दी बैल वाले तीनों जने एक ओर बैठकर यह सारा देख-सुन रहे थे और अन्य श्रोताओं से छिपाकर उसका आनन्द भी ले रहे थे।



दाभोल के उत्तर में पहाड़ी के ठीक नीचे गाँव से कुछ ही दूर राम शेटी का नारियल का बगीचा था। उसके बीचोंबीच उसका बड़ा घर था। ओसारे में चौनी मिट्टी के बड़े-बड़े कुठीले थे। उनमें अमचूर भिगोया था। आँगन में एक मण्डप फैला था। उसके एक कोने में केले के लंगरों का ढेर पड़ा था।

बड़ी मस्तिष्क में फक्कीरों के लिये सदावर्त चल रहा था, उसमें साग बनाने के लिये केले भेजने की सूबेदार से सूचना आयी थी, इसीलिये राम शेटी ने सारे बगीचों में से केले इकट्ठे किये थे।

स्वयं राम शेटी प्रातः ही दीवानी कच्छहरी गया था। अब तक लौटा नहीं था। उसका पुत्र पांड शेटी किसी आसामी के लेन-देन का जोड़ लगाता चबूतरे की चौकी पर बैठा था। एक नौकर समीप के एक बड़े से लकड़ी के कोठे में से सुकड़ी निकाल रहा था। दूसरा नौकर हँसिये के एक-एक धाव से उसके ऊपर का छिलका निकालकर भीतर के नारियल को अलग कर रहा था। तभी बगीचे की चढ़ाई चढ़कर पानी के बहते सोते के समीप से तीनों नन्दी बैल वाले नन्दी को लिये शेटी के आँगन में आ खड़े हुए। ढोलक वाले ने ढोलक बजाना प्रारम्भ किया। उसकी आवाज सुनकर वाड़े में से छोटे-छोटे बच्चे दोड़ते-भागते नन्दी बैल के आस-पास एकत्र हो गये। आसामी का हिसाब लग नहीं रहा था और साथ ही उस शोर को देख सुनकर पांड शेटी कुछ खिन्न होकर चिल्लाया—

“क्यों, नन्दी बैल कभी देखा नहीं क्या? चलो, निकलो यहाँ से। घर-

में जाते हो या नहीं ?”

बच्चे थोड़ा पीछे हट गये। तभी गलमुच्छों वाले ने बैल के नीचे खुजलाते हुए कहा—

“अरे शेटी राजा ! बच्चे तो गोकुल होते हैं। उनपर नाराज नहीं होते। तेरा कल्याण होगा। नन्दी बैल को कोई गुदड़ी, धोती, साड़ी कुछ तो दे; नन्दी राजा तेरा भविष्य बतायेगा।”

इतना कहकर गलमुच्छों वाले ने नन्दी की ओर बढ़कर कहा—

“बोल रे नन्दी राजा, शेटी का कल्याण होगा या नहीं ?”

नन्दी बैल ने गर्दन हिलायी।

पांड शेटी ने नीकर को भीतर भेजकर सूप भरकर चावल मँगाया और नन्दी वालों की झोली में डलवा दिया और कहा—

“चावल मिल गये न ? चलो अब, निकलो। वस, हो गया तुम्हारा भविष्य। सारी ही न घटने वाली वातें।”

पर नन्दी वाले अड़ियल तो थे ही। वहीं चिपके खड़े रहे। चबूतरे पर बैठकर गलमुच्छों वाले ने कहा—

“शेटी राजा ! अरे मट्ठा होगा क्या, मटकाभर ? पीने के लिये ।”

पांड शेटी अब अधिक रुष्ट होकर बोला—

“मटकाभर ? और कुठीलेभर नहीं ? वाह रे भूखे भूत ! सारा दूध सूबेदार के टिकुरे पर देते-देते घर में वूँद तक तो बचता नहीं और इसे मटकाभर मट्ठा चाहिए ।”

गलमुच्छों वाला कुछ समझकर प्रसन्न हुआ, उसने पगड़ी वाले की ओर देखकर पांड शेटी से कहा—

“अरे शेटी राजा, सूबेदार प्रसन्न हुआ तो तेरे घर के द्वार पर गाय-में से बाँधेगा ।”

पांड शेटी घर में जाने के लिये उठा था। गलमुच्छों वाले की वात सुनकर वह रुका और अपनी आवाज कुछ दबाकर बोला—

“क्यों, सूबेदार ने तुम्हारे बैल के पैर में सोने का कड़ा पहनाया है क्या ? समझदार हो तो उसके दरवाजे मत जाओ। कमर के चिरगुट भी छीन लेगा और नन्दी बैल भेज देगा कसाई के घर। और, तुम्हें लात

देकर भगा देगा। वह कोई ऐरा-गौरा नहीं है, उसे महसूद शरीफ कहते हैं। उड़ते कौए को पकड़कर उसके पर निकाल लेगा तीर में लगाने के लिये और उस लोथरे को भेजेगा भटारखाने सालन बनाने के लिये।”

फिर स्वयं से ही बोलते हुए वह आगे कहने लगा—

“सारी सूवेदारी के बसूल का मक्खन यह स्वयं खाता है और वाद-शाह के हाथ पर डालता है थोड़ा सा मट्ठे का पानी। कभी देगा, कभी वह भी नहीं। उलटे कभी गलबतों और जहाजों की टूट-फूट सुधार के लिये तो कभी सेना के लिये दस-बीस हजार मुहरें यों ही उगाह लेगा।”

इतना कहकर पांड शेटी भीतर जाने को मुड़ा, तभी गलमुच्छों वाले ने पांड शेटी से पूछा—

“शेटी राजा ! रहन रखकर लेन-देन करते हो क्या ?”

“वह सब मुझे पता नहीं, पिताजी से पूछो कुछ बन्धक रखना होतो।”

“अरे, इस कोंकण में खाने-पीने के बड़े बुरे हाल हो रहे हैं। नन्दी के पैर का एक तोड़ा है, बन्धक रखना है, पर शेटीराज ! तेरा वाप कब लौटेगा ?”

पांड शेटी की खिन्नता अभी कम नहीं हुई थी। उसी झल्लाहट में बोला—

“गये हैं दीवानी कच्चहरी में। मुझे कुछ कह नहीं गये हैं कि नन्दी बैल वाले आये तो विठाकर रखना।”

गलमुच्छों वाले ने धैर्य से कहा—

“जाने भी दो। हम फिर से दियावत्ती के समय आयेंगे। ठीक है ?”

□

उस समाप्त होने तक के लिये राम शेटी ने चार हथियारबन्द रात को पहरा देने के लिये दरवाजे पर रखे थे, वे आ गये। खम्भे की खूंटी पर लटकाये दीपक के उजाले में राम शेटी नाती को खिला रहा था। उसने उनको पूछा—

“क्यों ? देर कर दी।”

“अजी, कितनी तो भीड़ जुड़ी थी वाजार में। कहीं कोई झगड़ा हो गया था। दो-चार मुर्दे भी पड़ गये।”

कुछ चिन्तित होकर राम शेटी बोला—

“उस बाजार के मार्ग से जाते हुए डर लगता है। काजी ने उसं तक के लिये अपनी कच्चहरी भी उसी बाजार में रखी है। दिनभर में एक बार उसे सलाम ठोकने जाना ही पड़ता है। किसी दिन चूकने पर दूसरे दिन पूछता है, ‘क्यों, नारियल पर कितनी सुकड़ी है?’ माने इससे दबकर न रहे तो यह सारा सत्यानाश करेगा। घर-द्वार जलाकर मसान बना देगा।”

तभी गलमुच्छोंवाला और पगड़ी वाला, दोनों ही, भाँकते कुत्ते को एक ओर कर नीचे से ही पुकारते हुए अँधेरे में से ऊपर चढ़कर आये। आगे चढ़कर गलमुच्छोंवाले ने कहा—

“अरे शेटी राजा ! तुम्हारा यह कुत्ता मेरी पिंडलियों का मांस तोड़ेगा अब।”

राम शेटी ने नीकर से कहा—

“छोटे ! जा, देख तो कौन आया है।”

छोटे आगे बढ़कर देखता तब तक ये दोनों ही शेटी के कुत्ते की न मानकर मण्डप में आकर खड़े हो गये। उन दोनों को देखकर राम शेटी ने सन्देह से पूछा—

“कौन हो तुम ?”

“हम नन्दी वाले।”

“नन्दी वाले ? और ऐसे असमय में ? कल दिन उगने पर आओ।”

“अरे शेटी ! तुम्हारे पूत ने ही कहा था कि पिताजी के आने पर आओ।”

तभी पांड शेटी भी बाहर आया। उसने इनको देखते ही कहा—

“कौन, नन्दी वाले ? यह समय है क्या बन्धक रखने का और लेने-देने का ?”

गलमुच्छोंवाले ने वहीं बैठकर कहा—

“अरे राजा, शेटी ! तुम्हारा कहना एकदम सही हुआ। हम अपना नन्दी बैल ले जा रहे थे। सूबेदार के हशम……”

पांड शेटी ने आगे आकर कहा—

“ले जा रहे थे न ? देखा पिताजी ? भिखरियों का बैल भी खाने की

दुर्लालसा । यह सूबेदार नहीं है, यह है भूखा भेड़िया । इसे कुछ भी चलता है ।”

राम शेटी ने अपने पुत्र से कहा—

“थोड़ा धीरे बोल रे ! अपना असन्तोष भी ऐसे बाहर नहीं आने देना चाहिए । क्या समझे ? अभी उसी के दिन हैं । उसने रात को दिन कहा, तो हाँ ही कहना चाहिए । दो सत्ताभाँ के विरुद्ध बोलना नहीं चाहिए, राजा की और ईश्वर की । रहने दो अब । इनको क्यों बुलाया था ?”

“इनको कोई नग गिरबी रखना है ।”

मुण्डी हिलाकर राम शेटी ने कहा—

“नहीं रे बाबा नहीं ! कहाँ और कौन सा तुम्हारा गाँव, न देखा, न सुना । तुम्हारी वस्तु हम बन्धक नहीं रख पायेंगे ।”

कुछ व्याकुल होकर गलमुच्छों वाले ने कहा—

“ऐसा मत कहो मेरे शेटी राजा ! तोड़ा रखना नहीं चाहते तो यह बैल ही तुम्हारे द्वार पर बाँध देता हूँ । पालो-पोसो इसे । इस बार कोंकण में कुछ घन्धा हुआ ही नहीं ।”

कुछ सोचकर राम शेटी ने कहा—

“अच्छा, ला । देखूँ क्या रखना है ?”

आगे बढ़कर गलमुच्छों वाले ने कपड़े में बैंधा चाँदी का तोड़ा राम शेटी के सामने रखा और फिर आवाज कुछ धीमी करके कहा—

“एक नग और है, पर जड़ाऊ है । बीचोंबीच बड़े दाने का सा पत्थर जड़ा है । अंधेरे में जुगनू सा चमकता है, बहुत पुराना जो है, पुरखों का । नन्दीराजा को ही पहनाया था । उसे रखना तो नहीं है, पर चलते-चलते उसका भी मोल कर लेना है ।”

शेटी ने कहा—“मैं उसमें कुछ समझता नहीं हूँ । फिर भी निकालो, देखूँ एक बार, कैसा है ।”

इधर-उधर देखकर गलमुच्छों वाले ने कहा—

“यहाँ चौड़े में ?”

तोड़ा लेकर राम शेटी उठा, पांड शेटी को कहा—

“चल रे, देखें यह क्या कहता है । ए, तुम अकेले ही आओ । क्या नाम-

तेरा ?”

भीतर बैठक थी, उसमें कड़ुवे तेल का दिया जल रहा था। राम शेटी गादी पर बैठते हुए पांड शेटी से बोला—

“जरा बत्ती आगे बढ़ाओ। हाँ, अब दिखाओ तो अपना नग !”

बैठक के दरवाजे पर ही गलमुच्छों वाला रुका। पीछे से भीतर घुसते चच्चों को देखकर बोला—

“ऐ, ऐसी भीड़ ?”

पांड शेटी उन पर चिल्लाया—

“ऐ भूतो ! जाओ पीछे। जहाँ-तहाँ आ टपकते हैं।”

चच्चे पीछे होते ही दरवाजे को थोड़ा उढ़काकर गलमुच्छों वाला दरवाजे पर ही बैठ गया। कुछ हँसकर बोला—

“अजी, राम शेठ ! नौ लाख का रत्न तुम्हारे पास है। तुम उसे क्यों नहीं पहचानते ?”

राम शेटी उसकी बातों से कुछ असमंजस में पड़ गया। कहने लगा—

“तुम्हें कहना क्या है ?”

बहिर्जी नाईक बोलने लगा।

अब उसका स्वर नन्दी बाले का नहीं था। उसमें अब तक की दीनता नहीं थी। अब उसने झूठा ओड़ा हुआ सारा आवरण दूर कर दिया था। उसकी बातों में आह्वान था, आवेश था, उत्साह था, प्रेरणा थी, मरे हुए मनों को जगाने की उसके शब्दों में शक्ति थी। शोषितों और पददलितों के लिये उसमें आश्वासन भी था।

वह बोलने लगा तो प्रवाह सा बहने लगा, बीच-बीच में उसे रोकने का क्षीण सा प्रयत्न राम शेटी ने करके देखा, पर उसे अनदेखा कर बहिर्जी बोलता ही रहा। कुछ ही क्षणों में उसने अपने जोश भरे भाषण से राम शेटी और उसके पुत्र पांड शेटी को सम्मोहित सा कर दिया। वे दोनों की तुक से बहिर्जी को देखते रहे।

बहिर्जी ने अपने भाषण में कोंकण के बीते बैभवशाली समय का सुन्दर चित्र उनके सामने चित्रित किया। उन दिनों कोंकण के बन्दरगाह कैसे

वैभवपूर्ण थे, यह उसने बार-बार समझाया। आदिलशाही सत्तनत आने पर यहाँ कौसी अव्यवस्था हुई, बढ़ी, उसकी विस्तार से चर्चा की। किर राम शेटी से पूछा—

“आपस में लड़-भगड़कर एक दूसरे के पैर खींचने वाले इन परदेसियों के हाथों से इस कोंकण को मुक्त करने का काम किसका है? इसी देश के सपूत्रों का यह काम नहीं है क्या?”

जिसे अब तक भीख माँगने वाला समझ रहे थे, उसके ऊपर के रूप के भीतर यह अंगार छिपा देखकर क्षणभर पितापुत्र, दोनों विस्मित हुए। अन्त में उन्होंने पूछा—

“नन्दी वाले! तुम हो कौन? यह सब हमारी बुद्धि के परे की बातें तुम कैसे देखते हो? कैसे सोचते हो?”

गलमुच्छों वाला बहिर्जी कुछ हँसा, कहने लगा—

“शेटी, जिसकी दृष्टि खुल चुकी है, ऐसे किसी को भी यह सब समझ में आता है।”

“अरे, पर, तुम्हारी ही दृष्टि ऐसी खुली कैसे? हमारी बुद्धि को क्या हो गया है?”

“कुछ भी नहीं हुआ है। तुमने व्यर्थ ही अपनी आँखें बन्द कर रखी हैं।”

“फिर भी तुम्हें यह सारा किसने पढ़ाया, दिखाया? ऐसा भेस बनाकर शत्रुओं के देश में तुम धूमने का साहस भी कैसे कर लेते हो?”

“गलती कर रहे हो शेटी! यह प्रदेश शत्रुओं का नहीं, अपना ही है। अच्छा, बताओ, यह चण्डिकाई का मन्दिर पहले का है या ये मस्जिदें?”

“यह क्या पूछते हो! अरे चण्डिकाई का मन्दिर ही पुराना है।”

“ये मस्जिदें अतिथि पाहुनी आयीं, यह सही है कि नहीं?”

“हाँ जी।”

“पाहुनी बनकर आयी स्त्री घर में पैर फैलाकर बैठ गयी और उसने घर की स्वामिनी को ही बाहर निकाल दिया तो इससे वह घर उस पाहुनी का हो जायेगा क्या?”

“ऐसा कैसे हो सकता है?”

“तब ठीक है, यह सारा प्रदेश भी अपना ही है। हमारे ही पुरखों ने इसे बसाया। वता सकते हो शेटी, तुम्हारे पुरखे यहाँ कवसे रहते थे ?”

“आँ… नहीं जी, नहीं वता सकते !”

“अब देखो। और तुम ही प्रश्न करते हो कि यह सब मुझे किसने दिखाया, सिखाया !”

शेटी कुछ सोचता हुआ कहने लगा—

“हाँ जी। तुम ठीक कहते हो !”

बहिर्जी ने गर्दन ऊँची उठायी। उसके बाजू फड़फड़ाने लगे। वह अपनी चौड़ी छाती पर हाथ रखकर कहने लगा—

“दादा ! ऊपर घाट पर रोहिंडेश्वर महादेव हैं।”

“सुना है !”

“अरे मेरे भक्तो ! वह बड़ा ऊँचा पर्वत और पठार है। उस पठार पर शंभुराजा कितने ही समय से बैठे हैं। उस शिवालय में एक दिन एक छोटा सा सपूत गया, दस-बीस मित्रों को लेकर। वहाँ जाकर उसने बेल भण्डार उठाया। कहा—‘भगवन् ! मैं आपके इस प्रदेश में आपका राज्य स्थापित करूँगा, हिन्दवी स्वराज्य।’ उस छोटे से सपूत ने इतनी बड़ी बात उस आकाश और पृथ्वी के स्वामी के सामने कही और आज वही महादेव उस सपूत के उन बोलों को पूरा कर रहा है।”

विस्मय से राम शेटी ने पूछा—

“नाम क्या है, उसका ?”

अभिमान के साथ बहिर्जी ने कहा—

“हम सभी मित्रों के गले का मणि, राजा शिववा भोंसला। हम उसी के सैनिक हैं।”

यह सुनते ही पांड शेटी की आँखें भर आयीं, वह उठा, बहिर्जी के पास गया, उसके दोनों बाजू कसकर पकड़कर बोला—

“अरे ! तुम कल वह स्वांग बनाकर आये और मैंने तुम्हें न जाने क्या-क्या कहा ! जला वह मुँह मेरा। सपूतो ! हम तुमसे बहुत-बहुत बैने हैं रे। तुम कौन हो यह सूवेदार को ज्ञात हो गया तो तुम्हारी चमड़ी निकाल लेगा, यह जानते नहीं ?”

हँसकर वहिर्जी ने कहा—

“वह सब हम जानते हैं पांड शेटी !”

“तुम्हारा साहस आकाश जैसा ऊँचा है ।”

“अरे, पांड शेटी ! पर तुम जानते नहीं । हमारे शरीर को कुछ हुआ तो वह जानते ही शिववा रातोंरात आकाश से यहाँ उतरकर तुम्हारे सूबेदार को समूल नष्ट कर देगा ।”

राम शेटी ने उसाँस भरकर कहा—

“यह सब ठीक है, पर हमारे लिये कौन आता है दौड़कर ? कल ही पड़ोस के गाँव का राधू पड़वल रात को चिल्लाता यहाँ आया था । भरे बाजार में से उसकी घरवाली देखते-देखते उठा ली गयी । क्या करेगे और कौन करेगा ? समझाया, यहीं थाली परोसी और बापस भेज दिया । अरे किसी एक समय पूरे गाँव की साहूकारी थी हमारी । इस गाँव को बसाया हमारे पुरखों ने । पर इस सल्तनत के आते ही एक ओर फैंक दिये गये हैं । यही क्या कम है कि सारा लूट-खसोट कर हमें नंगा करके यहाँ से भगा नहीं दिया है अब तक । हमारे पास पुराने दस्तावेज हैं, पर कौन पूछता है उन्हें । आज का यह ऐसा दुर्दैवी जीना क्या जीना है ! हमसे तो कुत्तों का जीना भी भला ।”

यह सुनकर वहिर्जी ने राम शेटी से कहा—

“दादा ! यह जीवन जीते हुए तुम्हारा मन जलता है या नहीं ? छाती में आग उठती है या नहीं ?”

“वह आग जलकर भी क्या हो ?”

सावधान होकर वहिर्जी ने कहा—

“भिखारी का भेस तो लिया ही है, तब एक भीख माँग रहा हूँ ।”

राम शेटी ने चिन्तित होकर पूछा—

“क्या माँगते हो ?”

“यह तुम्हारा जवान और बलदण्ड सपूत । घराओ नहीं । हम व्यर्थ में इस कोंकण में नहीं उतरे हैं । हमारा काम भूमि तैयार कर हल जोतने तक का है । इसी भूमि पर बीज डालने स्वयं राजा शिवाजी आने वाले हैं । तब उस समय इस पूत को उनके चरणों में दे दो । वस, अरे राम शेटी,

मरना किसी का टला है ? पर मरना भी ऐसा मिले कि कुल उजला हो,
उसे यश मिले, कीर्ति मिले ।”

पांड शेटी ने क्षणभर अपने पिता की ओर देखा और दूसरे ही क्षण
बहिर्जी के हाथ पर हाथ रखकर कहा—

“शिलेदार ! मेरी प्रतिज्ञा यह हो गयी । अब कल यहाँ याली पर
आना है, हमारे घर दाल-भात खाना है…”

उसका हाथ हाथ में लेकर बहिर्जी ने कहा—

“यही मत कहो, मेरे भाई ! वाहर अभी मैं तन्दी वाला ही हूँ और
तुम शेटी राजा । अभी यहाँ काम पूरा नहीं हुआ है ।”

“अब क्या रह गया है ?”

हँसकर बहिर्जी ने बताया—

“अरे ! अभी सूवेदार को खेल दिखाया नहीं है । उसके मन में
बीजापुर की बजीरी का मोह तो अभी जगाया ही नहीं ।”

चकित होकर पांड शेटी ने पूछा—

“इसका अर्थ हुआ कि तुम अब सूवेदार के पास जाने वाले हो । तब
तुम्हारा वह तन्दी बैल ? उसका क्या होगा ?”

“अरे हमारा बैल उधर चण्डिकाई के मन्दिर में बैठा है जुगाली
करते ।”

“और हशम पकड़कर ले जा रहे थे, वह क्या था ?”

फिर से हँसकर बहिर्जी ने कहा—

“राजा शिवदा के बैल को हाथ लगाने के लिये बड़े-बड़े दाँत होने
चाहिए ।”

“पर मेरे शिलेदार, तुम्हारा नाम ?”

“नाम की तुलना में हम काम को अधिक मानते हैं । पर फिर भी
तुम्हें नाम बता देता हूँ, मेरा नाम है बहिर्जी । वाहर जो तन्दी वाला बन-
कर बैठा है, वह आसामी साधारण नहीं है । उनका नाम राणोजी देशमुख ।
राजा के दौलतवंशी कहते हैं उनको ।”

घबराकर पांड शेटी ने कहा—

“और दौलतवंशी जूतियों के पास बैठे हैं !”

अभिमान के साथ बहिर्जी ने कहा—

‘मेरे भाई पांड शेटी ! जूतियों के समीप बैठकर, भिखर्मणों का भेस बनाकर हमने अपने लिये कैसा अमूल्य हीरा जोड़ा है ! तुम्हारे लिये जूतियों के पास बैठने से सम्मान थोड़े ही घटता है ।’

□

सूबेदार मुहम्मद शरीफ का पत्थरों का पक्का सुसज्जित भवन दाभोल बन्दरगाह से कुछ ही दूर था । आसपास नारियलों का सदावहार बगीचा था । भवन के सामने सुरु के वृक्षों की सुहावनी दो पंक्तियाँ थीं । उन दोनों पाँतों के बीच नहर सा लम्बा पोखर था । उसमें पहाड़ी से बहते झरने का पानी लाकर उसे चारों ओर छोटी-छोटी नालियों में घुमाया था । पोखर में रंग-बिरंगे कमल खिले थे । बाड़े के भीतर भीतों में चीनी मिट्टी की सुन्दर और वेलवूटेदार ईंटें जड़ी थीं । वह सारा भवन फूल सा खिल रहा था । वह बाड़ा मुहम्मद शरीफ ने नहीं बनवाया था । आदिलशाही ने अपनी जिस शाहजादी आयशा के लिये इस बन्दरगाह में बड़ी मस्जिद बनवायी थी, उसी के लिये यह आलीशान बाड़ा भी बनवाया गया था । इन दिनों उस भवन में शाही परिवार का कोई था नहीं, इसीलिये उसका कुछ भाग शाही परिवार के लिये छोड़ दिया था और शेष भाग में मुहम्मद शरीफ रहता था ।

सूबेदारी मिलते ही मुहम्मद ने इस सारे क्षेत्र में अपनी धाक जमा ली थी । आसपास के गाँवों के लोग आदिलशाही शासन को मानते ही नहीं थे । उन सभी को पकड़वाकर मुहम्मद दाभोल लाया । कुछ तोपें खराब हो चुकी थीं । उनको दरिया के तट पर उल्टा गाढ़कर उन पर जहाजों को बांधने की व्यवस्था की गयी थी । उन्हीं तोपों में इन सभी बन्दियों को लोहे की जंजीरों से जकड़ दिया गया । उनको प्रतिदिन मुट्ठीभर चने और थोड़ा पानी दिया जाता था । उसी में कुछ मर गये । एक-दो उस स्थिति में भी पहरे में से भागकर दरिया में कूदकर भाग गये ।

मुहम्मद शरीफ ने एक पराक्रम और किया । उसने उन सभी बन्दियों की घरवालियों के गहने-चूड़ियाँ लूटकर कचहरी के चोपदार की चाँदी की छड़ी में पिरोकर रख दीं । कचहरी में आने पर किसी विवाद के निर्णय के-

पहले दोनों ही आसामियों को उस छड़ी को दिखाता और कहता—

“देख रख्नो, गुश्ताखी का क्या नतीजा होता है। बदमाशी करोगे तो सजा भुगतनी पड़ेगी ही; साथ ही वीवी के हाथ के कंगन-फंगन भी…, समझ गये न ?”

मुहम्मद के ‘फैसले’ करने की कार्यवाही सीधी थी। रमल के पासे डालकर बैठने का उसे शोक था। रमल का दाँच जिसकी ओर से पड़ता, उसी की ओर ‘इन्साफ’ होता। किर भी दोनों ही पक्षों को पाँच सौ टके दीवान में जमा करने ही पड़ते थे।

बाले पीर के उर्स के अवसर पर रमल के बड़े-बड़े फनकार, बड़े-बड़े आफताब-ए-रमल दाभोल में जुटे थे। उन सभी का मुकाम सूबेदार के बाड़े में ही था। उनमें से कुछ चुने हुए जानकारों के सामने मुहम्मद ने अपनी समस्या रख दी, कहा—

“मेरे मन की मंशा पूरी होगी या नहीं, बताओ।”

सभी फनकार रमल के पासे डालकर बैठ गये। सभी अपने-अपने पासे देखते और अपनी मेहंदी से रंगी लाल-लाल दाढ़ियों पर हाथ करते बैठे थे। सामने मुहम्मद शरीफ गद्दी पर मसनद से टिका बैठा था। हुक्म के बुएँ में खोया-खोया वह रमल का निर्णय सुनने को अधीर था। तभी एक तेंगदाज ने आकर आदावर्ज करते हुए कहा—

“महल के बाहर एक बैल को लेकर काफिर भीख माँगने आये हैं, कुछ करतब दिखाना चाहते हैं, अगर हुक्म हो तो…।”

“बैल ? बैल से भीख माँगवाते हैं क्या ?”

“जी नहीं हृजूर, भीख तो खुद ही माँगते हैं, लेकिन कहते हैं जोतिस बताता है बैल।”

मुहम्मद शरीफ की आँखें चमक उठीं। उसने कहा—

“अच्छा, इसके माने जो बातें गुजरेंगी, सो बताता है।”

“जी, पता नहीं। क्या कहते हैं उसे…?”

एक रमलदां ने हाथ झटकते हुए कहा—

“उंह, वह नन्दी बैल होगा। सब बकवास। घोखावाजी है।”

क्षणभर मुहम्मद ने आँखें बन्द कर लीं। उस पर अब तक माजूम का

अमल चढ़ चुका था । दूसरे क्षण आँखें खोलकर उसने कहा—

“ले आओ अन्दर ।”

भीतर कचहरी में बैल लाना ठीक नहीं था । तेगंदाज कुछ सोचने लगा, तब सूबेदार की गद्दी के समीप बैठा कलमनवीस उस तेगंदाज पर चिल्लाया, बोला—

“अल्लामियाँ ने जरा भी अकल नहीं दी है क्या ? यहाँ माने, मैदान में ले आओ ।”

तेगंदाज बाहर चला गया और रमल वालों का हिसाब भी हो गया । वे सभी मुँह लटकाकर चुपचाप बैठ गये । मुहम्मद अपनी तंद्रा से कुछ जागा, उसने पूछा—

“क्यों, क्या बात है ?”

रमलदांओं में से एक बूढ़े ने कहा—

“अमा, बस, मुआफी चाहते हैं । खुदा आप पर शुक्र की वरसात करे, लेकिन…। समझ गये न ? आज नहीं कल फिर से हमारे इल्म का इम्तहां लिया जाये ।”

कुछ रुसे स्वर में मुहम्मद ने कहा—

“याने आप सभी कहना चाहते हैं कि हमारी मंशा पूरी न हो पायेगी ।”

“खुदा सलामत आपको सौ साल की उम्र…।”

तेगंदाज फिर से भीतर आया । उसने भुक्कर कहा—

“हाजिर हैं ।”

मुहम्मद कुछ अप्रसन्नता से उठा । एक गुलाम ने उसकी जूतियाँ सामने रखीं, अपने रुमाल से उनको साफ किया । जूतियों में पैर बढ़ाते हुए सूबेदार बाहर निकला । उसके पीछे-नीछे दो-चार रमलदां भी नन्दी बैल का करतव देखने आगे बढ़े । मैदान की ओर आते हुए सूबेदार को देखकर तीनों ही बैल वालों ने भुक-भुककर उसके सामने मुजरे किये । नन्दी बैल को संकेत करते ही बैल ने भी आगे के पैर मोड़कर भुककर सलाम किया । सूबेदार ने तीनों को कहा—

“यह नव कुफ बन्द करो । हमारे दिल की मंशा पूरी होगी या नहीं,

इसका जवाब चाहिए हमें। अगर दंदफंद करोगे तो ख्याल रखो, वैल को कत्ल कर सालन बनाने भेज देंगे।"

गलमुच्छों वाले के संकेत पर पगड़ी वाले ने ढोलक बजाना प्रारम्भ किया। दूसरे ने वैल के पुट्ठे पर थपथपी देकर उसे सतर्क किया। एकाएक गलमुच्छों वाला आगे बढ़ा, उसने वैल को कहा—

"मेरे नन्दीराजां! तुम महादेव के नन्दी हो। उन्होंने तेरे ऊर वैठकर दैत्यों को मारा। सारी देत्य सेना उन्होंने तेरे ऊपर बैठकर ही नष्ट की। अब इस समय भी वही महादेव तुम पर बैठे हैं, ऐसा समझो और इन सूवेदार का भविष्य बताओ।"

इतना कहकर गलमुच्छों वाले ने नीचे झुककर चुटकी भर मिट्टी उठायी और वैल के ऊपर से उतारकर फूँक दी और फिर सूवेदार की ओर मुड़कर बोला—

"हुजूर! आपके मन की बात पूछूँगा, नन्दी से। हाँ होगी तो मुण्डी सीधी हिलायेगा, ना होगी तो आड़ी हिलायेगा।"

फिर उसने नन्दी को कहा—

"अरे नन्दी राजा! सूवेदार के मन में दाभोल छोड़ना है या नहीं?"

नन्दी बड़ी देर तक गर्दन हिलाता रहा, पगड़ी वाले ने ढोलक बजाकर हल्ला भाजा दिया। गलमुच्छों वाले ने आगे बढ़कर 'हाँ, हाँ' करते और आदावर्जन करते सूवेदार को कहा—

"हुजूरे आला! नन्दी वैल कहता है आपके दिल में दाभोल छोड़ना है।"

यह सुनकर सूवेदार कुछ खुश हुआ, उसने पूछा—

"अच्छा, ये पूछो कि हमारी ख्वाहिश क्या है? ...हमारी तमन्ना पूरी होगी या नहीं?"

गलमुच्छों वाले ने फिर से नन्दी पर थपकी लगायी और कहा—

"बता रे मेरे राजा, तू महादेव का नन्दी है, उनको स्मरण करके बता कि खानसाब को दाभोल छोड़कर बीजापुर जाना पड़ेगा या नहीं!"

नन्दी इस बार भी बड़ी देर तक सीधी गर्दन हिलाता रहा। एक बार फिर से नन्दी वाला ढोलक बजाता रहा और गलमुच्छों वाला बार-बार

सूवेदार को अदावअर्ज करता बोला—

“हुजूर, वैल कहता है कि आप दाभोल से बीजापुर जायेगे, वहाँ आपको वजीरी मिलेगी ।”

यह सुनकर रमलदांओं में से एक खड़ा आगे बढ़ा और उसने चित्तलाकर कहा—

“कमीने ! पता है, इस जालसाजी के लिये हुजूर क्या सजा फर्माति है ? मीत !”

मुँह में हँसते हुए और एक आँख से सूवेदार की ओर देखते हुए गलमुच्छों वाले ने कहा—

“बूढ़े वावा; आप कह रहे हैं कि हुजूरेआला इतने संगदिल हैं ? हमारे इस वैल से भी ज्यादा ? अरे यह वैल हमको नहीं मारता । हमारे पेट के ऊपर पाँव देता है पर हमारे प्राण बचाता है ।”

गलमुच्छों वाले ने संकेत किया और उसी क्षण तीसरा नन्दीवाला भूमि पर गिरा । ढोलक वाले ने वैल को थोड़ा दूर ले जाकर मुँह फेरकर खड़ा कर दिया । उसके समीप खड़ा होकर ढोलक वाला ढोलक बजाने लगा । गलमुच्छों वाले ने कहा—

“अरे नन्दीराजा, तू महादेव का नन्दी है, हम तुम्हारी प्रजा । तेरे चरणों में पढ़े हैं । तेरी शरण में आये हैं, हमें न मार, हमें बचा । अपना करतब दिखा दे । हाँ, चलो जलदी-जलदी, तुम्हारा बच्चा बीच में सोया है, ध्यान रखना जी !”

गलमुच्छों वाले के संकेत पर वैल ने सींग हिलाये, गर्दन हिलाकर धुँधरू छनछनाये, घंटियाँ टिन-टिन कीं, और एकाएक पूँछ उठाकर चौखुर भागने लगा । तीसरा नन्दी वाला बीचोंबीच पड़ा था । वैल उसी ओर आ रहा था । ढोलक वाला ढोलक पूरी शक्ति से पीट रहा था । सूवेदार और उसके सभी रमलदां साँस रोककर, अब क्या होता है, यह देखने लगे । वह हाथी सा डीलडोल वाला वैल भागता-दौड़ता आगे बढ़ा और नीचे लेटे व्यक्ति के निकट आते ही एकदम रुक गया । उसने उस व्यक्ति के पैरों को नाक लगाकर सूँधा, और बाद में उसके पेट पर एक खुर हल्के से टेककर उसके सिर के पार निकल गया और वहाँ से गलमुच्छों वाले के समीप आकर

खड़ा हो गया ।

यह करतव होने पर गलमुच्छों वाले ने बैल को संकेत किया, बैल ने आगे के पैर मोड़कर भुककर आदावअर्ज कर्मया । बाद में आगे बढ़कर गलमुच्छों वाले ने भी सूबेदार को आदावअर्ज किया । यह सब देख-सुनकर सूबेदार प्रसन्न था, उसने रमलदांओं की ओर देखकर कहा—

“एक नाचीज बैल को जो अकल है, सो भी तुम्हारे भेजे में नहीं है । बैल ने ठीक ही तो बताया है कि हम जल्दी ही यहाँ का मुकाम छोड़कर बीजापुर जायेंगे । ए बैल वालो ! हम खुश हैं । जो जी चाहे सो माँग लो ।”

भुककर एक बार और गलमुच्छों वाले ने सूबेदार को आदावअर्ज किया और कहा—

“अगर खार्विद की इतनी मेहरबानी है तो आदिलशाही मुल्क में जकातमाफी का परवाना दे दें, कहीं भी इस गरीब बैल पर जकात न ली जाये ।”

सूबेदार ने कहा—“मंजूर……”



भोरधुंधलके में उठकर तीनों ही बैल वाले घाट चढ़ने लगे थे । पिछली रात वे एक गाँव के खलनाथ के छोटे से मन्दिर के सामने आँगन में रुके थे । सारा गाँव जला दिया गया था । इधर-उधर आग के चिह्न विखरे पड़े थे । गाँव सूना पड़ा था । एक टूटे प्लास के आगे मरियल सा कुत्ता पड़ा था । इन तीनों को देखकर उसने भौंक-भौंककर पर्याप्त हल्ला किया । इन लोगों ने उसे पुचकारा, कुछ खाने को दिया, तब वह पूँछ हिलाता इनके समीप आकर बैठ गया । प्रातःकाल वे सभी निकले तो वह भी इनके पीछे-पीछे रेंगने लगा ।

सारी घाटी सूनी, उदास लगती थी । घाटी चढ़कर ये तीनों ऊपर पहुँचे । वहाँ से वाणकोट की खाड़ी की रुपहली रेखा दिख रही थी । उसके बाद जले हुए जंगल की काली रेखा स्पष्ट दिखती थी । चारों ओर ठूँठ और अधजले वृक्ष खड़े थे । सुदैव इतना ही कि उस घने जंगल के बीचोंबीच जो पानी के ठिकाने थे, वे सूखे नहीं थे ।

वे तीनों उस पार घाटी उतरने लगे, तब अचानक उनके नाम से

आवाजें आने लगीं ।

“अरे नन्दी वाले हो ! ओ बाबा रे !”

वहिर्जी ने पीछे मुड़कर देखा, कहा—

“कौन होगा जी वह ? हमारे नाम से चिल्लाने को क्या हो गया ?”

बाजीराव ने कुछ सोचकर कहा—

“देखना ही होगा, दोड़ता आ रहा है । सारा शरीर पसीना-पसीना हो गया है ।”

राणोजी ने उस व्यक्ति को आवाज देकर पूछा—

“क्या हो गया जी ?”

तीनों ही रुक गये । कुछ ही समय में उनके पीछे-पीछे भागता एक किसान हाथ की काठी ठोकता इनके निकट आया । उसको देखते ही कुत्ते ने उसे पहचान लिया, वह उस पर उछलने-कूदने लगा । उसे हाड़कर एक और कर उसने कहा—

“ओ हो, हो, क्या तुम्हारा चलना ! मैं सोच रहा था कि अब खाड़ी तक दौड़ना पड़ता है क्या ।”

चकित होकर वहिर्जी ने पूछा—

“पर मेरे दादा, काम क्या है ?”

“वताता हूँ, पहले तम्बाखू निकालो ।”

वहिर्जी ने अपने बटुए में से तम्बाखू निकालकर उसके हाथ पर डाल दी । किसान उनकी चिलम ले नहीं सकता था । नन्दी वालों की जात छोटी जो ठहरी । पर तम्बाखू को कोई दोष नहीं था । सिर पर बँधी चिन्दी में से चिलम निकालते हुए उसने पूछा—

“आगे का मुकाम कहाँ का ?”

वहिर्जी ने सावधान होकर उत्तर दिया—

“हम भीख माँगने वालों का क्या कोई ठिकाना बताया जा सकता है ?”

“हाँ, हाँ, यह भी ठीक ही है ।”

लंगोटी के एक छोर से ही चिलम पकड़कर कश खींचकर फक-फक धु आँ छोड़ते हुए उस किसान ने खाँस लिया । यह हो रहा था, तब उसने

हजार बातें पूछीं। पर वह इतनी दूर तक भागता हुआ क्यों आया, उस बात को छोड़कर। दोनों ओर से चिलम साफ कर बाँध ली गयी। तब अपने स्थान से उठते हुए वहिर्जी ने कहा—

“चलते हैं अब हम। दिन ढलने के पहले खाड़ी पार करनी है।”

लंगोटी वाला भी उठा, अपनी काठी पर बल देकर खड़े रहते हुए उसने थोड़ा हँसकर कहा—

“यह हुई तुम्हारी अपनी बात, पर मैं इतनी दूर तक दौड़ते हुए क्यों आया, यह तुमने नहीं पूछा।”

गर्दन हिलाकर वहिर्जी ने कहा—

“दादा, यह गलती तो हो गयी, यह मानना ही पड़ेगा। अब तो बता दो कि इतनी दूर तक भागते क्यों आये थे।”

लंगोटी वाले किसान ने सिर की चिन्दी का दूसरा छोर खोला और कहने लगा—

“याने हुआ क्या कि तुमने जहाँ रात चूल्हा जलाया था, वह गाँव हमारा है।”

वहिर्जी ने अरेरे करते हुए कहा—

“सारा गाँव बेवसा हो गया रे, दादा।”

“याने इस वर्ष दो माह तक यही होता रहा। हमारे गाँव में शाही फौज का पड़ाव पड़ा था। पीछे चार वर्ष पहले पावसकाल में भी हमारे पश्च अपने बाड़े में रहने नहीं आये। अजी, दो वर्ष तक शाही फौज यहीं पड़ी थी।”

इस पर कुछ बोलने या पूछने को क्या था? किर भी वहिर्जी ने पूछा—

“इस सबसे मन में चुभन नहीं होती तुम लोगों को?”

“क्या होगा? क्या लाभ?”

“ठीक, ठीक है दादा।”

“तो हमारा मुकाम है पहाड़ी के जंगलों में।”

“खाने-पीने की तो बहुत कठिनाई होती होगी?”

अपने कपाल पर हाथ फेरते हुए किसान ने कहा—

“ईश्वर जैसे रखे, वैसा रहना चाहिए। हमारा क्या ठीक। एक जून

कुछ माड़ पी लेते हैं। परहमारी पाहुनी स्त्रियों के हाल? उनके धनी जूझों में खप गये। रण्डकी मुण्डकी होकर रहती हैं। उनको तो पेड़ के पत्ते खाकर ही समय निकालना पड़ रहा है।”

यह सब बताते हुए किसान ने अपनी चिन्दी में से एक वस्तु निकाली। उसे देखकर तीनों की आँखें फटी-फटी सी रह गयीं। वह एक सुन्दर नग था, सुधड़, बीचोंबीच माणिक जड़ा। चाँदी का वह एक तोड़ा था। उसे इन तीनों के आगे रखकर लंगोटी वाले ने कहा—

“हुआ क्या कि तुम दिन उगते वहाँ से चल पड़े, तब गाँव में क्या बचा है, यह देखने मेरा चाचा गाँव में उतरा था। उसे यह नग मिला। उसे उठाकर वह भागता भेरे पास आया और मुझसे बोला—‘सुभान्या! भाग, भाग। यह नग उन नन्दी वालों का है, किसी ने नन्दी पर चढ़ाया होगा। नन्दी वालों तक पहुँचाकर उनका तोड़ा उनको दे आ।’”

वहिर्जी ने तोड़ा हाथ में लिया। उस तोड़े का काम बहुत सुन्दर था। राणोजी ने भी उसे देखा और कहा—“तोड़ा तो अप्रतिम है, किसी सम्मानित ने अपनी वहू-वेटी के लिये बनवाया दिखता है।”

उस माणिक का रंग अत्यन्त लुभावना था। उसमें से प्रकाश की रेखाएँ निकल रही थीं। उस पर भिलमिलाती दमक भी अनोखी थी। लगता वे दो नग नहीं, दो जलती चिंगारियाँ थीं।

वहिर्जी ने नग किसान के हाथ में देकर कहा—

“दादा! यह नग हमारे नन्दी का नहीं है। तुम्हारा है, तुम वापस ले आओ। वहाँ फोज का मुकाम था, किसी का गिर गया होगा।”

यह सुनकर किसान कुछ कठिनाई में पड़ गया, उसने कहा—

“पर मेरा चाचा तो यही कहता था।”

“तुम्हारा चाचा कुछ भी कहता रहे, यह नग नन्दी का नहीं है।”

किसान ने क्षणभर कुछ सोचा और दूसरे ही क्षण नग वहीं एक पत्थर पर रखकर उसने कहा—

“मेरा चाचा मुझे मारेगा और पूछेगा कि ‘तुझे बताया था तोड़ा नन्दी वालों को सम्हालकर लौटा आओ तो क्यों नहीं दिया उनको?’ इसलिये यह तोड़ा तुम्हारा है, कुछ भी करो, ले जाओ या फेंक दो।”

इतना कहकर किसान लंगोटी सेभालता भाग गया। कुत्ता कुछ दूर तक उसके पीछे दौड़ा, और फिर से लौटकर इन तीनों के पास पूछ हिलाता मंडराने लगा।

वहिर्जी ने उसाँस भरते हुए कहा—

“कैसे-कैसे लोग हैं! खाने को घूंट-घूंट माड मिलना दूभर है, लंगोटी भी फट गयी है। पर जो नग उनका नहीं, वह उनके लिये विष के समान है। वाह रे लोगो! किस देवता ने गढ़ा है तुमको?”

—

बाबल भट्ट के घर आज दिवाली सी हो रही थी। वह इन तीनों का स्वागत करने के लिये आँगन में इधर-उधर भागता-दौड़ता घूम रहा था। उसकी वैसाखी से सारे लिपे हुए आँगन में गड्ढे पड़ रहे थे। आखिर आई ने उससे कहा—

“मुना, बाबल? पाहुने तेरे अकेले के नहीं हैं। सारे घर के हैं। मैं सब ठीक-ठीक कहूँगी उनका।”

“पर सिर पर लगाने के लिये तेल? कितने दिनों बाद गरम पानी से नहाना होने वाला है इनका।”

“वही दे रही हूँ। पर तुम आँगन में नाचते मत घूमो, संचार हुए के समान। सारा आँगन उखड़ गया, देख। अरे इसे टिपरी से ठोकते-ठोकते मेरे हाथों में गड्ढे पड़ गये थे।”

“पर मैं कहता हूँ...”

“हाँ, हाँ, जो भी कहना हो एक स्थान पर बैठकर बताते चलो कि यह ऐसा, वह वैसा।”

वहिर्जी और उसके दोनों साथी भाई-बहिन का वह संवाद रस लेकर सुन रहे थे। बीच-बीच में आनन्द लेने के लिये अपना भी कुछ जोड़ रहे थे। वहिर्जी ने कहा—

“दीदी का कहना सही है, जो कुछ आदेश देना है, एक स्थान पर बैठकर देना चाहिए। कैसे? —‘ए, कलाँ फलाँ, यह लाओ। ए, तुम कौन हो? वह लाओ।’”

राणोजी ने बात जोड़ी—“हाँ, हाँ, ऐसे ही।”

बाबल भट्ट ने बुदबुदाते हुए कहा—

“अरे, कोई आवाज पर दौड़ने वाला नौकर-चाकर न हो तो ?”

“अजी, कहने का अर्थ समझना चाहिए।”

“कैसे ?”

“यह कि स्वयं पालथी मारकर बैठना चाहिए, फिर शान से रुवाव से हुकुम छोड़ना चाहिए—

“‘ए फलाँ फलाँ, मानता नहीं ? तेरी…। मुण्डी उत्तरवाने की इतनी जल्दी ?’”

“भले, भले !”

“और फिर अपने आप उठकर अपने ही हुकुम की तामील करनी चाहिए। कैसी कही राणोजी ?”

राणोजी ने मुण्डी हिलाकर कहा—

“अजी, बीजापुर की ओर सारा चलन ऐसा ही है। कितने तो सरदार। हर दिन दस-बीस लोगों को सरदारी मिलती है और दस-बीस की सरदारी छिनती है। आदत से विवश देचारे। फिर अपने-अपने पुराने दीवान में टूटी चौकी पर उठकर हुकुम छोड़ते हैं—‘ए, लौडे ! हुक्का ला।’ और फिर स्वयं ही उठकर हुक्का ले आते हैं। ऐसा कोतुक है !”

यह सुनकर आबई हँसती हुई भीतर चली गयी।

रात में भोजन हुआ। कुछ आराम कर बहिर्जी ने बाबल भट्ट से कहा—

“शास्त्रीजी ! तुम्हारा वह ताम्रपत्र है क्या यहाँ ?”

“है जी !”

“लाओ तो !”

आबई ने बाबल के छोटे पुत्र से लंगोटी छोड़कर देवघर में से ताम्रपत्र लाने को कहा। छोटे ने पूछा—

“बुआ ! दूसरा भी लाऊ ?”

आबई ने कहा—“उसे क्यों निकाल रहा है ? रहने दे। अच्छा, अब ला उसे भी !”

उस छोटे ने दोनों ताम्रपत्र देवघर में से निकालकर बाबल भट्ट के हाथ में दे दिये। बाबल भट्ट ने उसे देखकर कहा—

“मूरख ! नंगा ही पाहुनों के सामने आ गया । भाग भीतर, लंगोटी लगाकर आ ।”

फिर बहिर्जी की ओर देखकर कहा—

“यह ताम्रपत्र ही सारे विघ्नों और आपदाओं का कारण है । इसी के पीछे सारे घर का सत्यानाश हुआ ।”

हर आठ-दस दिनों बाद इमली और नमक लगाकर देवमूर्तियों के साथ ताम्रपट भी साफ किया जाता था । इसी कारण उस पर लिखे अक्षर स्पष्ट दिख रहे थे । उन अक्षरों को पढ़ने के लिये बहिर्जी खटपट करने लगे । तब बाबल भट्ट ने आगे बढ़ते हुए कहा—

“सुनो, मैं ही पढ़कर बताता हूँ ।”

पढ़कर, उसने बताया—

“शासन की आज्ञा क्या थी, वह जात नहीं ।”

“कौसी आज्ञा ?”

“जिनकी संरक्षकता में यह स्वर्ण रखा गया, वे हमारे पुरखे थे दामोदर भट्ट । उन्होंने कहाँ रखा, इसका अतापता नहीं । भली प्रकार से रखा, पर कहाँ ? कैसे ? एक अक्षर भी कहीं लिखकर नहीं रखा है ।”

“एक अक्षर भी नहीं ?”

“विलकुल नाम भी नहीं ।”

कुछ सोचकर बहिर्जी ने कहा—

“वह ताम्रपत्र यही एक है ?”

“और क्या । और, इस दूसरे पर रेखा हुआ श्रीयन्त्र है । वस ।”

श्रीचक्र वाला ताम्रपत्रहाथ में लेकर बहिर्जी ने राणोजी और वाजीराव से कहा—

“देशमुख ! तुमको एक बात ध्यान में आयी ?”

“कौन सी ?”

“हमने दिन में कल्याणेश्वर का मन्दिर देखा था । उसकी बैठक का और यह चित्र, दोनों एक से हैं ।”

कुछ ध्यान से देखकर राणोजी ने भी मुण्डी हिलाकर कहा—

“हाँ जी, हाँ, सही है ।”

बाबल भट्ट ने कौतूहल से पूछा—

“क्या कहा ? फिर से कहो तो ?”

“मैंने कहा कि यह चित्र मन्दिर की बैठक का ही चित्र है, रेखांकित किया हुआ ।”

ठीक से देखकर बाबल भट्ट ने चकित होकर कहा—

“भले । अब तक मेरे ध्यान में आया ही नहीं था । देखा आवई ?”

अब तक आवई मर्यादा से घर में ही थी । अब उसके भी मन में कौतूहल जाग उठा । आँचल ठीक कर वह भी बाहर आयी । दिये की बाती ठीक कर उसने कहा—

“क्या कहते हो, देखूँ ।”

श्रीचक्र उसके सामने पकड़कर बाबल भट्ट ने कहा—

“यह देख । यह श्रीचक्र है या मन्दिर का मानचित्र ? यह गर्भगृह, यह सभा-मण्डप, यह हीं अक्षर है, वह नन्दी ।”

विस्मय से आवई ने कहा—

“सही है, मेरे दादा ।”

चुटकी बजाते हुए बहिर्जी ने कहा—

“शास्त्रीजी ! दक्षिणा निकालो अंजुरी भरकर ।”

“किसलिये ?”

“तुम्हारा सुवर्ण कहाँ रखा है, उसका पता लग गया है ।”

“बताओ, देखें ।”

हँसकर बहिर्जी ने कहा —

“तुम्हारे ध्यान में नहीं आया ? इस तात्रपत्र पर दाहिनी ओर कमल का फूल है ?”

“हाँ है, तब ?”

“वार्यों ओर है क्या ?”

“नहीं जी ।”

“कमल याने लक्ष्मी की निशानी ।”

“हाँ रे, मेरे मित्र !”

“तब मन्दिर के सामने दाहिनी ओर कोते में है क्या ? देखो, गाढ़कर

रखा हुआ लोटा।”

वावल भट्ट ने इन तीनों को आग्रह कर अपने घर रोक लिया। वह उन्हें जाने ही नहीं दे रहा था। हारकर वे तीनों वहाँ रह गये। ढोंग भी निभाना था, इसलिये प्रातः भीख माँग आये।

दिवे का क्षेत्र हब्शी लोगों का; वहाँ हब्शी लोगों की लीला और कोतुक देखने को मिले। एक मस्जिद के सामने से जाते हुए नन्दी के गले में बैंधी घटियाँ बर्जीं। मस्जिद के सामने एक सिंही चौकीदार बैठा था। उसकी तैयारी थी शेर के शिकार की, सारा सामाज और शस्त्र जुटाये जा रहे थे—भाले, फरसे, सारे आ गये थे।

घटियों की टुन-टुन सुनकर चौकीदार चिल्लाया—

“ए मुर्गो ! इधर आओ !”

उसे आदावअर्ज करते हुए वहिर्जी ने कहा—

“हाजिर हैं, हुजूर !”

वह गालियाँ बकता बोला—

“ये क्या देख रहे हो ? मालूम नहीं ?”

“मस्जिद है !”

“तो फिर, बेहया लोगो, मस्जिद के सामने वाजे वजाते हो ?”

“कहाँ वाजे वजाये सरकार, वाजा तो वजाया ही नहीं।”

“सुअरो, अभी-अभी टुन-टुन जो हो रही थी।”

“हुजूरे आला ! वो तो नन्दी ने वजाया, हमने नहीं।”

“अच्छा, ये वात ? चलो, हम तुम्हारे काफिर बैल को ही कैद करते हैं ?”

कितनी देर तक उस अमलदार की मिन्नतें करनी पड़ीं। खुशामद करनी पड़ी। नन्दी के सारे करतव दिखाने पड़े। नन्दी ने गर्दन हिला-हिलाकर दिल्ली की वादशाही उस अमलदारकी झोली में डाल दी। तब कहीं इनको छूट मिली। फिर भी बैल की पूँछ के बालों का सुन्दर गुच्छा उस अमलदार ने काट ही लिया।

रात को वावल भट्ट को उन्होंने बताया—

“शास्त्रीजी ! आज हमारे नन्दी की गर्दन पर खांडा ही चलने वाला था, अब कल हमें निकलने दो।”

“देखेंगे जी, अभी कल तो उगने दो ।”

आधी रात उत्तर रही थी । हाथ में छोटा सा दिया लेकर वाबल भट्ट
आया और इन तीनों को पुकारकर जगाते हुए बोला—

“चलो, उठो ।”

चकित होकर वहिर्जी ने पूछा—

“कहाँ ?”

“और कहाँ ? बल्याणेश्वर मन्दिर ।”

“किसलिये ?”

“आज के लिये ही तुम्हें रोक रखा था । शुक्ल पक्ष की रात है, चाँदनी
भोर होने तक रहेगी । सारा गाँव सो चुका है । मुझे गाँव के बाहर से मन्दिर
का मार्ग पता है । बंसाखी के खुर में मैंने चिन्दी लगा रखी है । खट-खट की
कोई भी आवाज नहीं होगी, चलो, उठो ।”

“अजी, पर……”

“हाँ जी, स्वयं खोदकर निश्चय कर लेना है । मन्दिर गाँव के बाहर
है, किसी को किंचित् भी आहट लगेगी नहीं । सुवर्ण मिला तो……”

“तो क्या ?”

“तो वह सारा राजे शिवाजी के सामने प्रस्तुत करना है । उनको
कहना है कि ‘विश्वस्त सभा का योगक्षेम देखने का सामर्थ्य हममें नहीं है ।
आप जो चाहो, सो करो, इस बात के लिये सौगन्ध आपको’ ।”

उत्तरती रात में सुखद वायु वह रही थी, पर उससे इतना ही हुआ कि
सारा गाँव ओढ़ना ओढ़कर फिर से गहरी नींद में सो गया । चाँदनी के
प्रकाश में सब कुछ स्पष्ट दिख रहा था । मन्दिर, उसके आगे का इमली का
पेड़ और श्वेत चाफे के बिखरे फूल । मन्दिर के चारों ओर सागर गोटे के
पौधों की झाड़ी की बाढ़ थी । उसे लाँघकर ये चारों अपने-अपने हथियार
संभालते भीतर गये ।

गर्भगृह के बाहर का विस्तार बहुत बड़ा नहीं था । वहिर्जी ने अन्तर
मापकर खोदने का स्थान निश्चित किया । सभी ने उसके निर्णय को गर्दन
हिलाकर मान लिया । इसके बाद राणोजी ने खोदना प्रारम्भ किया ।

माटी भूरभूरी ही थी । उसमें योड़ी रेत भी मिली थी । घाव पड़ते ही

खन्ती भीतर घुस जाती। बावल भट्ट और बहिर्जी, दोनों गड्ढे में से माटी निकाल रहे थे। सारा काम चुपचाप ही रहा था। किंचित् भी आवाज बाहर नहीं जा रही थी। तभी खाड़ी की ओर से मनुष्यों के चलने की सी आहट आयी। इन लोगों ने सोचा कि कुछ लोग तरी उतरकर उस असमय में ही गाँव लौटे हों। झट से ये चारों इमली के पेड़ के चौड़े तने की आड़ में छिप गये। मशाल आगे-आगे थी। इनकी दृष्टि में आने पर इन्होंने देखा कि जनाजे की पेटी कन्धों पर ढोते हुए सात-आठ गुलाम तीव्र गति से चल रहे हैं और उनके पीछे-पीछे तीन-चार अरब हशम। कोई मुँह से शब्द भी नहीं निकाल रहा था। चकित होकर बहिर्जी ने बावल भट्ट को संकेत किया। उसने सिर को हाथ लगाया। सभी चकित से खड़े देख रहे थे। वे सब मन्दिर के सामने से जाने लगे। तब तो इनके आश्चर्य की सीमा न रही। इन सभी ने आँखें मल-मलकर देखा, सोचा शायद हम सभी को कुछ भ्रम हो रहा हो, सभी एक दूसरे को संकेत कर रहे थे, पर उस बात को सभी ने देखा और अनुभव किया था।

उन जाने वाले सभी के मुँह मुर्दे से थे। लगता कब्रिस्तान से मुर्दे उठ-कर चल दिये हों। केवल आँखें खुली थीं, वे भी फैली हुईं। जो स्थिति अरब हशमों की, वही दशा गुलामों की थी। उन सभी में एक भी चेतना में हो, ऐसा नहीं लगता था। लगता था किसी सम्मोहन के द्वारा मुर्दों में प्राण फूँककर उनको चलाया जा रहा हो।

वे चारों ही साहसी थे। नहीं तो दूसरे तो डरकर चीख उठते, इतना वह दृश्य डरावना लग रहा था।

समय व्यर्थ विताना ठीक नहीं था। रात ढल रही थी। चारों फिर से बाहर आये और उन्होंने खोदना प्रारम्भ किया। स्थान अनुमान से निश्चित किया था। कितना गहरा खोदना है, इसकी कल्पना नहीं थी।

हर बार खन्ती भूमि में भीतर तक घुस जाती। नीचे से कुछ भी आहट या आवाज नहीं मिल रही थी। तभी मुर्गे ने बाँग दी, सभी कुछ सहम कर एक दूसरे की ओर देखने लगे।

यह खुदा गड्ढा कल मभी लोगों के ध्यान में आयेगा, फिर यह बात चार लोगों तक पहुँचेगी। बावल भट्ट के पास कहीं गड़ा हुआ धन है, यह

सभी ओर प्रसिद्ध था । विद्युत् के गर्जन सी यह बात सीधी दीवान तक जाएगी और तब एक बार फिर आदवखाना । पहले एक पैर जा चुका था, अब कदाचित् प्राणों से ही हाथ धोने पड़ेगे । यह हवशी लोगों की सत्ता है । दाद नहीं, फरियाद नहीं । मन में आया तो पहाड़ी पर बना पूरा घर उखाड़कर चारों ओर खिले देंगे । क्षणभर में ये सारे विचार बाबल भट्ट के मन में कोई गये । तभी खन्ती ने नीचे से उत्तर दिया । खण्खण की स्पष्ट आवाज आयी । खन्ती चलाने वाले राणोजी ने आनन्द से सभी की ओर देखा । सबसे अधिक आनन्द हुआ था बाबल भट्ट को । वह कुछ बोलने ही वाला था, तभी वहिर्जी ने उसके मुँह पर हाथ रखा ।

कुछ ही क्षणों में राणोजी ने हलके हाथों से भीतर का ताँबे का लोटा बाहर निकाला । उसके मुहाने पर भी ताँबे का ही पत्रा जड़ा हुआ था । उसे हिलाते ही खुन-खुन की आवाज आयी ।

सभी ने सारी मिट्टी भीतर डालकर भूमि एकसी कर दी । ठोक-ठोककर उसे समतल किया । वहिर्जी ने इमली के नीचे जाकर अंजुरी भर-भरकर फूल उठाकर उस स्थान पर फैला दिये । एक बार फिर वह सारा स्थान देख लिया, फूलों के कारण अब कुछ दिखेगा नहीं, यह पूरा विश्वास करने के बाद वे सभी शीघ्रता से मन्दिर के अहाते से बाहर निकल पड़े ।

अब तक दिन उगने लगा था । चारों ओर सुनहरी धूप छाने लगी । नारियल और सुपारी के पेड़ों से भरे आँगन में सभी ने स्नान किया । बाबल भट्ट ने उस ताँबे के कलश की समंत्रक पूजा की और बाद में वह ताँबे का लोटा राणोजी के हाथों में देते हुए कहा—

“लो जी, खोलो इसे । देखें तो सही, भीतर सोना है या कोयला ?”
वहिर्जी ने पूछा—

“क्यों जी, ऐसा क्यों ? वह तो बाहर से ही दिख रहा है ।”

कुछ विरक्ति से बाबल भट्ट ने कहा—

“जिस सोने ने मेरे पिता के प्राण हर लिये, जो मेरे पैरों पर भी उठा…”

उसे रोकते हुए वहिर्जी ने कहा—

“शास्त्रीजी, अब हम तुम्हें समझायें तो सूरज को दिया दिखाने जैसी

वात होगी। अजी, किंचित् ऐसा भी तो सोचो कि जो शुद्ध सोना है, कहीं किसी काम आना चाहिए, वह इतने वर्षों तक भूमि के नीचे पड़ा हुआ था, तब वह कुद्द हुआ। पर वही अब बाहर आया, अब वही सोना लक्ष्मी है। अच्छे काम में वह लगे तो ठीक।”

“हाँ राणोजी, खोलो उसे।”

राणोजी ने कुछ ही समय में कलश के ऊपर का ताँबे का पत्रा खोल दिया और कलश उल्टा किया। आँगन में उत्तरती सूर्य की किरणें उस कण्ठी पर आ गिरीं और वह सोना अपने सारे तेज के साथ दमकने लगा। सोने के ही तार में पिरोकर रखी वे एक सौ सत्ताइस सुवर्ण मुद्राएँ थीं। एक-एक मुद्रा एक-एक तोले की थी।

छोटे सभी अभी तक जगे नहीं थे। आबई ने उन बच्चों के ऊपर गुदड़ी सार कर उन्हें और सुला दिया था। वह अकेली चबूतरे के खम्भे के सहारे खड़ी कौतूहल से सब देख रही थी……।

प्रातःकाल की सूर्य-किरणों में दमकते उस सोने को देखते ही उसकी आँखों से पानी झरने लगा। कुछ संभलकर आबई ने कहा—

“अरे, बाबल ! उठा उस असगुने सोने को और फेंक दे खाड़ी में। वह विष है, विष। घर मैं पलभर भी मत रहने दो।”

चकित होकर बाबल भट्ट ने आबई की ओर देखा। अपनी सफेद साड़ी के आँचल से आँखें पोंछते हुए उसने कहा—

“लाख वह सोना हो, उसी ने पिताजी के प्राण लिये। पहले मेरी आँखों से दूर कर। यहाँ रहने ही मत दे उसे।”

बाबल भट्ट ने पूजा की थाली में से तुलसी-पत्र उठाया, उसे सोने पर रखकर उस पर पानी छोड़ते हुए कहा—

“लो बहिन ! अब इसका हमसे सम्बन्ध समाप्त हुआ। अब यह अपना रहा नहीं। यह सब अब राजा शिवाजी का है। सुना, नाईक ? तुम इस सोने का जो चाहो सो करो, पर यहाँ से अब इसे उठाओ।”

बहिर्जी ने पूछा—

“शास्त्रीजी, यह घर भी शिवाजी राजा का है या नहीं ?”

“जी……यह भी सही है।”

“तब यह सोना अब यहाँ रहने दो। अपने बाग में अच्छी प्रकार से सुरक्षित स्थान पर उसे छिपा रखो। हम सूचना देंगे तब स्वयं आकर राजा को यह सोना भेंट कर दो। तब तो ठीक होगा ?”

—

अवचित गढ़ के नीचे लमाणों का काफिला पड़ाव डाले आराम कर रहा था। बैलों की पीठों पर नमक लाद कर ले जाया जा रहा था। एक-दो दिन में सारा काफिला ऊपर घाट चढ़ने वाला था।

तीनों नंदी बैल वालों को भी लमाणों ने आग्रह कर हठात् अपने साथ मुकाम पर रख लिया था। रात में अलावं जलाकर सभी उसके आस-पास बैठे थे। बहिर्जी ने कहा—

“हमारे नंदी बैलों का बाड़ी में मेला लगता है, तब तलवारों का भरपूर खेल होता है। लगता है आज की रात खेल के बिना ही बीतेगी।”

लमाणों का नाईक बोला—

“ऐसा क्यों? अरे तुम हमें भविष्य बताओ, तब हम तुमको खेलकर के दिखायेंगे देखो।”

फिर मैं-तू करते-करते दो-चार लमाण उठे और उन्होंने तलवार और पट्टों के हाथ कर दिखाये। इन तीनों को उस खेल का कुछ कौतुक नहीं था। उन्हें तो लमाणों को स्वच्छन्द बोलने में लगाना था। लमाणों का खेल समाप्त होने पर उनके नायक ने कहा—

“ऐसा कैसे हो सकता है नाईक! अब तुम नहीं दिखाओगे तलवार की विद्या।”

बहिर्जी ने कहा—

“नाईक राजा! अरे हम भीख माँगते चारों दिशाओं में धूमते हैं, यह इतनी विद्या हमारे पास होती तो दस-बीस साथी लेकर इन खोहों, दरियाओं और पहाड़ियों में राज्य नहीं करते ?”

“तुम्हारा कहना भी सही है। पर दो-चार हाथ तो आते ही होंगे। ऐसा भी कोई मनुष्य हो सकता है जिसे तलवार धुमाना न आता हो ?”

“अरे, हमारा तलवार धुमाना क्या ?”

“जो भी और जैसा भी हो !”

तब विवश होकर ही राणोजी और वाजीराव उठे। उन्होंने पहले तलवार ही उल्टी पकड़ रखी थी। हैंस-हैंसकर लमाणोंने सारे पड़ाव को सिर पर उठा लिया। तब कुछ समझकर दोनोंने तलवार ठीक से पकड़ी और चौंवरी के समान अपने ही सिर के आसपास उसे डुलाने लगे। फिर इधर-उधर उछलते-कूदते हाथ घुमाते रहे। सिर नीचे कर उल्टी कूद लगाते रहे। बीच-बीच में धप-धपकर गिरते रहे। फिर से वे उठे और तलवार रखकर बोले—

“दहुत दिनों से खटाई के पानी की खुराक मिली नहीं, नहीं तो इससे भी बढ़कर खेल दिखाया होता।”

हैंस-हैंसकर सभी लमाण लोट-पोट हो रहे थे। एक ने कहा—

“शाब्दास। इस कारीगरी के लिये तुम्हें जागीर दी जानी चाहिए। वाह रे तलवार का काम।”

दूसरा बोला—“अरे, आसमान में देवों के विमान आ डटे थे, तुम्हारी तलवारवाजी देखने के लिये।”

एक बूढ़े लमाण ने तो हृद ही कर दी। उसने समीप जाकर वाजीराव को चूम लिया और बोला—

“अरे तेग बहादुर! मैं मरकर तेरा पूत बनूँगा। तब तू यह विद्या हमें सिखायेगा?”

वाजीराव ने भी शर्मिते हुए जब “हाँ” कहा, तब तो सारा पड़ाव एक बार फिर से हैंसी के ठहाके से गूंज उठा। उस बूढ़े ने अपनी फटी जूती निकाली और राणोजी तथा वाजीराव के ऊपर से उतारकर भूमि पर फटकारते हुए कहा—

“काली काली महाकाली, इन्दर की देटी ब्रह्मा की साली। अला-बला ले जा इन तेगबहादुरों की।”

एक लमाण तो हैंसते-हैंसते लोटपोट हो गया। बहिर्जी ने उठकर उसे पकड़ा और उसके मुँह में पानी की कुप्पी रीती करते हुए कहा—

“हाँ जी, हमारी तलवार का खेल भी हो गया। अब तो तुम ही कुछ इधर-उधर की बातें सुनाओ।”

“क्या बाबन बीरों की कथा सुननी है? हमारे इस बुढ़ऊ को आती

है। क्यों हो चुढ़ऊ ! तुम जानते हो न ?”

बहिर्जी ने पूछा—

“नायक ! तुम्हारा सारा जन्म इन्हीं घाटों को चढ़ते-उतरते गया । तुम ही कुछ अपने अनुभव और जानकारियाँ, कुछ घटी घटनाएँ सुनाओ ।”

चिलम पर अँगूली रख, दबाकर दो-चार कश खींचकर आँखें बन्दकर लमाणों के मुखिया ने कहा—

“हमारी क्या सुनोगे बाबा ? बाप-दादों का धन्धा छोड़ना नहीं, इसीलिये चला रहे हैं यह सब, नहीं तो अब इस धन्धे में कुछ नहीं रहा, सारा विगड़ हो गया है ।”

“अरे, माने बैलों को रोग हो गया क्या ?”

“अरे, रोग फैले भी तो बैल नये खरीदे जा सकते हैं । रोगी बैल की दबादारू की जा सकती है; उसकी कुछ आफत नहीं है ।”

“तो, पहले जैसा माल बन्दरगाहों में उतरता ही नहीं क्या ?”

“हाँ जी, तुम्हारा यह कहना सही है । दरिया की चाचेगिरी और किनार पट्टी का यह मनमाना कारोबार । अरे दस-बीस वरस पहले इधर कितने व्यापारी गोदाम थे, जानते हो ?”

“ना, ना, बाबा ! हम भी अभी-अभी इधर कोंकण में उतरने लगे हैं, पहले हमारे बाप और चाचा आते थे ।”

“बराबर । तो तुम्हें इधर का कुछ भी ज्ञान नहीं ।”

“नाय जी ।”

“अरे राजा ! वह राजापुर, वह मालवण, दाभोल, राजापुरी, चेऊल, अरे कितने बन्दरगाह थे । इनमें से सोने और मोतियों के प्रवाह बहा करते । धुआँ निकलता, वह भी सोने का । और, अब यह मुगलाई आयी है । इस सल्तनत में सभी की दौड़ राजधानी में । दूसरे का गला काटकर अपने आप वजीर कव और कैसे बनें, इसी ओर सभी की आँखें लगी हुईं । तब नीचे के कारोबार चलाने वाले भी अपने हाथ धो लेते हैं । यहाँ जकात, वहाँ पट्टी, यहाँ खुशमिजाजी जकात, वहाँ खुशहाली की जकात, ऐसे ही पट्टी भरते-भरते सिर के बाल लोप हो रहे हैं,

मेरे बाबा ! ”

“अरे नाईक, पर इस सबको बन्द करने कोई खड़ा नहीं होता क्या ? ”

“कौन खड़ा होगा ? यह सब परमेश्वर की इच्छा । इसके सामने कौन खम्ब ठोकेगा ? ”

“अरे इस देश की प्रजा ! ”

“प्रजा ? प्रजा की बात मत पूछो । सभी का जीना सभी को दूभर हो गया है जौर लूटने वालों की फौज कितनी ! ”

“कैसी ? ”

“अरे हाथी होता है । देखा है कभी ? ये लम्बी सूँड, ये लम्बे-लम्बे दाँत । ”

“नहीं जी । याने बहुत बड़ा जन्तु होता है । बनैले सुअर जैसा होता है क्या ? ”

“अरे, ऐसा उसका बल कि बड़े-बड़े पेड़ सूँड से उखाड़कर फेंकता है । ”

“ओहो-हो ? ”

“तुमने देखा ही नहीं, तब तुम क्या समझो । ”

“हाँ, यह सही कहा । ”

“तो, उस हाथी के पेरों तले देते हैं, बोरियों में बन्द करके सीकर दरिया में फेंकते हैं, मछली के खाने को फेंक देते हैं, ऐसे इनके दण्ड । इनके काजी को सारी ऐसी सजाएँ कण्ठस्थ । आये दिन नयी-नयी सजाएँ निकालते हैं । एक दिन क्या हुआ जानते हो ? ”

“क्या ? ”

“एक मनुष्य की काया पर गुड़ लिपटा दिया । ”

“गुड़ ? ”

“हाँ जी । और उसे हाथ-पैर बाँधकर भीत में लगी खूंटी पर लटका दिया । ”

“फिर ? ”

“फिर क्या, ऐसी चींटियाँ और चीटे, लाखों-लाख । उन्होंने काट-काटकर उसके प्राण लिये । आसपास सारे हँस रहे थे । हाथ पर ताली देते थे, विचारा पानी-पानी करते हुए ही मर गया । ”

“अराइरास्स”

“और, ये लोग भी क्या कम हैं? सभी चुगलखोर। छोटी-छोटी बातों पर लड़ेगे और फरियाद लेकर जायेगे काजी के पास। तब वे और क्या करेंगे?”

“सही है, तुम्हारा कहना।”

“यहाँ का मनुष्य आलसी नहीं है। भरपूर कष्ट उठायेगा, वर्षभर खपेगा। पर इसका भाग्य ही दरिद्र, उसे वह क्या करे?”

अलाव बुझने लगा था, उसमें कुछ लकड़ियाँ डालकर मुखिया ने कहा—

“अरे नन्दी वालो! तुम हमारी ही बातें सुनते हो। अपनी कुछ बात कहते ही नहीं।”

विवशता की सी हँसी हँसकर बहिर्जी ने कहा—

“भीख माँगते धूमते हैं, राजा! हमारे पास क्या होगा बताने के लिये!”

अब तक आसपास बहुत से लमाण गुदड़ी डालकर सो गये थे। यह देखकर लमाणों का नायक आवाज धीमी कर बहिर्जी से बोला—

“तुम्हारा यह सब, झूठ है, झूठ।”

सहमकर बहिर्जी ने पूछा—

“क्या झूठ है, वावा?”

“तुम भिखमंगे हो, यह झूठ है। तुम्हारा तलवार धुमाने का ढोंग भी झूठ।”

बहिर्जी ने उसका हाथ थामकर कहा—

“नहीं, मेरे राजा, नहीं।”

नायक ने कहा—

“अरे तुम क्या बताओगे हमें? दसों बन्दरगाहों का पानी पिया है हमने। हम ऐसे हाथोंहाथ फैस जायेगे? अभी-अभी जब तुम तलवार धुमा रहे थे, तभी मैं समझ गया था कि यह ऊटपटाँग तलवार धुमाना झूठा है, ढोंग है। नहीं तो टेढ़ी-तिरछी तलवार धूमती रहे और वह शरीर को कहीं भी छूती नहीं, यह हो सकता है? यह तो बहुत चतुराई का काम

है। अरे तुम हमें मत बताओ... और भिखमंगे होते तो ऐसी देश-विदेश के सुख-दुःख की बातें क्यों करते? और, एक बात बता दूँ?"

बहिर्जी ने धीमी आवाज में कहा—“पहचाने गये।” फिर पूछा—
“कौन सी?”

हँसते हुए उस नायक ने कहा—

“हाथी देखा नहीं, कहते हो। अरे, हाथी को तो इस दक्षिण में हर एक जानता है। इतनी फौज चारों ओर घूमती है। उसके साथ हाथी होते ही हैं। और तुमने अभी-अभी कहा, हाथी देखा ही नहीं। इतने देश-विदेश घूमते हो और हाथी देखा ही नहीं? छोटा वच्चा भी मानेगा इस बात की?”

बहिर्जी ने झट से उस नायक को बाजू से पकड़कर उसे उठाया। उतने ही से बहिर्जी के बाहुबल का उसे अनुमान हो गया। बहिर्जी उसे पकड़कर एक ओर ले जा रहा था, तब उसने बहिर्जी से कहा—

“मराठा है रे तू। चोल पहचाना कि नहीं?”

बहिर्जी ने उसका हाथ अपने गले पर रखकर उससे कहा—

“तुझे तेरी और मेरी विरादरी की सौगन्ध, किसी को यह बात बताना नहीं।”

“हम क्यों बतायें बाबा, हम तो राह देख रहे हैं कि इस कोंकण पट्टी में शिवबा भौंसला का राज कब आता है।”

बहिर्जी ने उसका हाथ कसकर दबाया। तब लमाणराज ने कहा—

“अरे राजा! हम भी धर्म-करम समझते हैं। धर्म का राज्य होकर सारा देश-विदेश नौनिहाल होगा तो उसमें हमें भी हर्ष है। हमारे पिता इसी देश में खप गये। उनकी समाधि भी इसी धाटी में है। जिस दिन इस देश का संकट दूर होगा, हम भी मिठाई बाटेंगे, हर्ष मनायेंगे। हम क्या गैर हैं इस देश के लिये?”



कोर्लई के दुर्ग के नीचे महादेव का मन्दिर था। उसके सामने दूर तक फैले एक वटवृक्ष के नीचे एक दीपमाला थी। उसी दीपमाला के सामने नन्दी बैठा जुगाली कर रहा था। ये तीनों ही उसी के समीप गुदड़ी डाल-

कर उस पर लेटे थे ।

कोलंई गाँव में बहू-बेटियों का भविष्य बताने का काम हो चुका था । दो कोस दूर ईसाइयों के गिरजे में किसी का विवाह था, वहीं सारे यहूदी लोग भी गये थे । वस्ती में कुछ बूढ़े ही थे । उनको भविष्य जानने में अब कोई कोतुक नहीं था । ढोलक की थाप का हल्ला भरपूर करने पर भी कुछ ही लोग आसपास आये । कुछ छोटे-छोटे बच्चे भी आये, पर उन्होंने केवल भोड़ की, भीख किसी ने नहीं दी । तब ये तीनों बैल को आगे हाँकते हुए कोलंई दुर्ग के निकट पहुँचे । किले के समीप फिरंगियों की चौकियाँ थीं । उनमें इसी देश के ईसाई बने सैनिक बैठे थे । उनके सामने नन्दी ने गर्दन हिला-हिलाकर उन सारों को पुर्तगाल में बजीर बनने का भविष्य बताया । ऐसे उन सभी से बोलचाल होने पर, गलमुच्छों वाले ने कहा—

“दादा रे ! उस मन्दिर के सामने थोड़ा आराम कर लें ?”

“हाँ जी, करो आराम इच्छा भर । इसमें कोई दमड़ी तो देनी नहीं है ।”

इस प्रकार इन तीनों को वह स्थान मिला । उसके सामने पसरी खाड़ी और रेवदण्डा तथा चेऊल तक का नारियलों का जंगल दिख रहा था । ये तीनों ही बैसे तो गुदड़ियों पर लेटे-लेटे बातें कर रहे थे, पर उन सभी की आँखें आसपास की सारी बातों को निरख रही थीं । बाजीराव ने अपनी आँखें किले पर टिकायी थीं । वाकी दोनों की दृष्टियाँ खाड़ी की ओर लगी थीं । दुर्ग सुन्दर था । दक्षिणोत्तर का प्रसार किसी नौका सा दिखता । उसके तटों पर बीच-बीच में पहरेदार आते-जाते दिखते थे । उनके सिर पर टोप थे, कन्धों पर कडाविनी थीं । इन दिनों आसपास कोई हलचल न होने से किले का प्रबन्ध उतना दक्ष-सतर्क नहीं था ।

बुजियों में से आगे निकली तोपों के मुँह धाम में चमक रहे थे । इसे छोड़कर, वहाँ किले की व्यवस्था का कोई चिह्न नहीं दिख रहा था ।

बाजीराव को ध्यान में आया कि किला बहुत ऊँचा नहीं है । चारों ओर की चढ़ाई भी कहीं मुँहतोड़ नहीं है । पर तट और बुजियाँ अवश्य बेलाग हैं । इस किले का उपयोग सागर पर दृष्टि रखना और खाड़ी का संरक्षण करना था । ऊपर के लड़ाके यदि असावधान हों तो चार-पाँच सौ

मावलों की सेना को यह किला जीतना कुछ कठिन नहीं।

राणोजी और वहिर्जी खाड़ी को निरख रहे थे। कितने तो जहाज बगुले के पंखों जैसे पाल फैलाकर खाड़ी में घुस रहे थे। बन्दरगाह के समीप आते ही पाल उतारकर लपेटे जा रहे थे। जैसे कोई सारस अपने पंख समेटकर भूमि पर उतरे, उसी प्रकार से। परन जाने क्यों, उनमें से एक भी जहाज बन्दरगाह से बाहर नहीं निकल रहा था। छोटी-छोटी ढोंगियाँ इधर-उधर आ-जा रही थीं। भीतर कहीं से माल भरकर भारी सा बना एक जहाज किसी गर्भवती स्त्री सा खुले सागर में उतरता आगे बढ़ा, पर वह भी बन्दरगाह के निकट ही लंगर डालकर खड़ा हो गया।

दोपहर ढल गयी। बायु का प्रवाह भी बदल गया। ज्वार का पानी खल-खल करता खाड़ी के दोनों तटों को समेटते आगे बढ़ने लगा। अब तक खाली-खाली सी लगने वाली खाड़ी किसी रूपरचिता के समान भरी-भरी सी दिखने लगी। पानी के श्वेत पक्षी सागर में से भीतर उड़ते आते और खाड़ी के पानी में बैठकर लहरों पर तैरने का आनन्द ले रहे थे।

एकाएक वहिर्जी ने राणोजी का हाथ दबाया और खाड़ी की ओर अंगुली दिखाकर कहा—

“राव ! देखो !”

उस ओर देखते ही राणोजी का मन उसी में खो गया, क्षणभर वाद बोला—

“अहाहा !”

बाजीराव ने यह सुना और उस ओर मुड़कर पूछा—

“क्या हुआ ?”

वहिर्जी ने सागर की ओर संकेत किया। वे तीनों देख रहे थे, जैसे भालाइतों की सेना ध्वज और पताका लेकर धीमी गति से किसी दरें से भीतर घुसती है, उसी प्रकार पुर्तगाली आरमार बड़े ही गर्व से खाड़ी में घुस रहा था।

दो-दो पालों के टोहलेने वाले आठ जहाज बाणों की सी पंक्ति बनाकर आगे-आगे बढ़ रहे थे, उनके पीछे दस-दस पालों के बड़े-बड़े जहाज एक के पीछे एक कर नस्त में से भीतर घुस रहे थे। उनके पीछे पच्चीस

फत्तेमारी जहाज चील के पंखों की रचना में आगे बढ़ रहे थे और ठीक पीछे अद्वंगोलाकृति में आठ टोह लेने वाले जहाज थे। अत्यन्त व्यवस्था से सारा आरमार खाड़ी में आ रहा था।

इतना बड़ा और पूर्ण अनुशासन में व्यवस्थित आरमार इन तीनों ने कभी देखा नहीं था। इसीलिये दाँतों तले अंगुली दबाकर वे उस आरमार को खाड़ी में प्रवेश करते निरख रहे थे।

बन्दरगाह सामने लक्ष्य में आते ही बड़े जहाज से सलामी की तोप दागी गयी। उसी के साथ तुमान पहने फिरंगी खलासी मस्तूल पर चढ़े और उन्होंने पाल उतारे तथा सारे ही जहाजों के पतंगे पानी में उतरे। आवाज दे-देकर खलासी पतंगे चलाने लगे। सभी जहाजों के पतवार करकराते बोलने लगे। देखते-देखते पाँत विना बिगाड़े सारे जहाज बन्दरगाह में आ लगे। सायंकाल के समय जंगल से लौटे पशु जैसे अपने-अपने स्थान पर आकर चुपचाप खड़े हो जाते हैं, वैसे।

“क्या देख रहे हो ?” नये क्रिस्तान सैनिक की इस आवाज से तीनों ही योड़ा डर गये, पर ऊपर-ऊपर दीनता से हँसकर बहिर्जी ने कहा—

“यह भानमती का खेल ।”

चौकी छोड़कर वह सैनिक भी आरमार को देखने के लिये ही इनके निकट आया था। तीनों के सामने एक शिला पर बैठकर वह इन्हें सारी जानकारी देने लगा। उसने बताया—

“हर दिन यह मजा देखने को नहीं मिलता ।”

सैनिक निश्चन्त मन से बोल रहा है, यह भाँपकर बहिर्जी ने उसकी खुशामद करते हुए कहा—

“कप्तान साहेब ! तुमने हमें यहाँ बैठने की इजाजत दी, इसलिये यह सब देखने को मिला। नहीं तो हमें यह सब कौन दिखाता !”

उस छोटे से सिपाही का सिर कप्तान साहेब के सम्बोधन से फिर गया। उसने कहा—

“यहाँ भी ऐसा सभी दिन देखने को नहीं मिलता, समझे ?”

“आज कुछ विशेष कारण होगा ही ।”

“इसका नाम क्या है, जानते हो ? आर्मीड़ा। क्या समझे ? आर्मीड़ा।

याने जहाजों की कतार, पाँत । तो हर माह कल के दिन ये सभी जहाज यहाँ से बाहर खुले दरिया में जाते हैं । दिन भर लड़ाई का अभ्यास करते हैं । याने अपना ही एक जहाज दरिया में खड़ा करते हैं, किर उस पर तोप दागते हैं । उसके बाद नाचना-गाना । फिर रात भर ये सारे खुले दरिया में ही रहते हैं और दूसरे दिन आज जैसे ये सभी वापस लौटते हैं । आदत होनी चाहिए लड़ाई की, इसलिये यह सब करना पड़ता है ।”

यह सुनकर बहिर्जी ने पूछा—

“नकली युद्ध में यह नाच-गाना किसलिये ?”

उस नये क्रिस्तान (ईसाई) ने बड़े ही अभिमान से कहा—

“वह हम क्रिस्तानों का रिवाज है, याने खरा युद्ध होने पर इधर जहाज पर हमारा बाजा बजता ही रहता है । हमारे धर्म में यही तो मजा है ।”

तीनों ही आश्चर्य से मुख में अंगुली देकर सब सुन रहे थे । यह देख-कर उस सैनिक ने बड़े ही गर्व से आगे कहा—

“तुम लोग मरने पर नरक में जाओगे, और हम? हमारे लिये हमारा तारनहार प्रमु काँसी चढ़ गया, उसके हम सभी पुत्र सीधे स्वर्ग में जायेगे ।”

बहिर्जी ने पूछा—

“इसका अर्थ हुआ, वाप ने काँसी पर लटकना, और इस प्रकार स्वर्ग का दरवाजा खुल जाने पर वाकी लोगों ने स्वर्ग में जाकर मजा करना ?”

“हाँ, हाँ, बिलकुल सही ।”

“होगा भई, होगा । हमारे पगले देव ने तो वाप के बताने पर चौदह वर्ष बनवास भोगा । अब यह जिसके घरम का रिवाज है, उसे कौन क्या करेगा ?”

इन बातों का व्यंग्य समझ सके, इतनी बुद्धि उस सिपहिया में होती तो वह सचमुच का कप्तान न होता !



रायरी के चारों ओर चौकियाँ लगाकर राजा शिवाजी ने चन्द्रराव मोरे को दुर्ग में ही बन्द कर दिया था । इस अभियान में राजे स्वयं ही सेना लेकर चढ़ आये थे । इसका भी एक कारण था । उन्हें किला देखना और परखना था । ये दिन ग्रीष्म के थे । सारा जंगल पतझड़ के कारण

कुछ सूना-सूना सा लग रहा था। पाकड़ और ढाक जैसे पेड़ों पर लाल-लाल फूल दंमक रहे थे। वाकी सारे ही वृक्ष अपने सिर के पत्रभार को उतारकर हल्के हो गये थे। लगता था मानो वे सारे पर्ण परतन्त्रता के युग के थे। इन वृक्षों में बीते वसन्त में कोपले फूटी थीं, तब इस दुर्ग पर सत्ता मोरे की थी। मोरे स्वयं को आदिलशाही का बन्दा कहता था, बादशाह की कदमबोसी करने में धन्यता मानता था। बादशाह की जूतियाँ मस्तक पर धारण करना उसकी दृष्टि में सर्वोच्च सम्मान की बात थी। ऐसा वह सत्त्व और स्वत्त्व से शून्य था। कभी-कभार वह रायगढ़ पर चढ़ गया होगा। तब इन वृक्षों के पर्ण हिले होंगे। उनके चौंवर से डुलाये गये होंगे। पसरी शाखाओं ने कभी उसे हवा की होगी।

इस सभी का शूल उस जंगल के लतावृक्षों के गन में चुभ रहा था, मानो इसीलिये उन सारे पुराने पर्णों के बोझ को मस्तक से उतारकर वह सारा जंगल हल्का-हल्का अनुभव कर रहा था। अब उनमें वसन्त में नयी कोपले फूटने वाली थीं। वे पर्ण-पल्लव अब शिवाजी राजा पर छाया करने वाले थे। उन पर्ण-पल्लवों के संभार के डुलने से वही हवाओं से इस धरती माता के सपूत्रों के श्रम-स्वेद से भीगे-भीगे अंग शीतल होंगे। इन वृक्षों की शाखाएँ विस्तार पाने वाली थीं, वह भी अब केवल धाम के ताप से तपे इन देशभक्तों पर ही छाया करने के लिये।

और ऐसी सेवा के लिये आतुर हुए जंगल में गत एक माह से राजा की छावनी की राहटियाँ (तम्बू) पड़ी थीं। पर अभी तक रायरी अधिकार में नहीं आ रहा था। चारों ओर से राजा ने व्यवस्था उत्तम की थी। पाचाड़, बाड़ी, निजामपुर, वालणकोड़ी, वाघोली, कलसुर, इन सभी गाँवों की ओर से रायरी को घेरकर सुदृढ़ चौकियाँ और पहरे बैठा दिये थे। किसी भी ओर से चींटी को भी दुर्ग पर जाने के लिये अवसर नहीं था। मोरे के सैनिक कभी-क्वचित् नीचे से ऊपर चढ़ने का प्रयत्न करते, कभी ऊपर से नीचे उतरने का अवसर ढूँढ़ते, पर तभी उनको पकड़ लिया जाता, उन्हें बाँधकर राजा के सामने प्रस्तुत किया जाता।

राजा का स्वयं का मुकाम किसी एक स्थान पर रखा ही नहीं गया था। वस्तुभार भी कुछ बहुत नहीं था। एक साधारण सी राहटी। उसके

सामने घोड़ा बाँधने की खूंटियाँ। राहुटी में भूमि पर विछी ऊन की जीन। उस पर सफेद मोटी चादर। यही राजा का आसन था। पीछे एक सुन्दर माचवा, उसमें दो सुन्दर धनुष टैंगे थे। वहीं एक धारदार पल्लेदार खड़ग। माचवा के समीप एक पानी की सुराही, 'राहुटी' के बाहर एक चतुर दक्ष पहरेदार। बस, यही और इतना ही राजा का साजसामान होता।

ऐसी ही राहुटियाँ पाचाड़, निजामपुर, वालणकोंडी जैसे गाँव-गाँव में एक-एक कर खड़ी की थीं। अभियान की व्यवस्था स्वयं देखते हुए राजा इसमें से किसी भी स्थान पर मुकाम करते थे।

मोरे के पकड़े गये सैनिक जेरवन्द कर राजा के सामने उपस्थित किये जाते। राजे एक क्षणभर उस सैनिक की आँखों में झाँकते, दूसरे ही क्षण उसकी आँखें नीचे झुकतीं। राजा आज्ञा देते—“इसकी मुस्कियाँ खोल दो। छोड़ दो, छोड़ दो इसे।”

राजा की आज्ञा का पालन होता। पकड़े जाते समय कहीं छोटा सा घाव हुआ हो, तो राजे उस पर हल्के-हल्के हाथ फेरते। कहते—“देखो, नाई को बुलवाकर पट्टी बँधवा लो, नहीं तो घाव सड़ता जायेगा।”

सैनिक किसी आग सी आपदा की बल्पना कर उसी तैयारी से मन को कड़ा कर खड़ा होता। उस पर राजा के इस मृदु व्यवहार के फूल बरसते और वह सैनिक मक्खन सा पिघल जाता। क्षणभर पूर्व का आवेश हवा हो जाता और वह धड़बड़ बोलने लगता। राजे पूछते, “किले में पानी कितना है?”

“है जी, एक-दो तालावों में, पर वह भी अब कम हो रहा है। पुरबेय्या का पानी नहीं बरसा तो पानी की बूँद भी दूधर हो जायेगी।”

“तालाव कितने हैं?”

“एक तालाव पूरब की ओर है, पर उसका पानी भी उतर रहा है, उसे कोँलिव तालाव कहते हैं। पश्चिम की ओर बारह छोटे-छोटे तालाव हैं, फिर यहाँ-वहाँ...।”

“राव कहाँ रहते हैं?”

“दुर्ग के ऊंचे पर किलेदार का बाड़ा है।”

“अनाज की व्यवस्था ?”

“वह सब जानने का कोई उपाय नहीं, पर वह भी कुछ अधिक नहीं होगा।”

“तोपें ?”

“हैं एक-दो, पर बहुत पुरानी, हवा फूँकने की नली सी। ऊपर थोड़ा भी बारूद नहीं है।”

“ऊपर सैनिक कितने हैं ?”

“अजी, क्या सैनिक, केवल बाजारू जमाव है। ऐसों से कभी कोई जूझ पार हुई है क्या ?”

चारों ओर से चढ़कर, जूझकर दुर्ग को अधिकार में करना राजा के लिये कठिन नहीं था। पर कितना भी हो, आखिर मोरे सुलतान का मनो-नीत व्यक्ति या तो भी अपना था। राजा की बड़ी उपाधि पायी थी, वह भी राजा के बल पर। इसीलिये कभी तो सूत सा सरल और नम्र होने की सम्भावना थी। और इस सबसे महत्वपूर्ण कारण यह था कि चन्द्रराव मोरे का भांजा हैवतराव शिलिमकर देशमुख राजा की ओर से जूझ के लिये आ डटा था। वह अपनी पूरी शक्ति से जूझ रहा था। मोर्चे लगा रहा था, पहरे-चौकियों की देखरेख करता था। चारों ओर से पूरा प्रयत्न कर रहा था।

राजा को भी दुर्ग चारों ओर से सभी प्रकार से देख-परख लेना था। वह दुर्ग राजा के मन को भा गया था। इसीलिये चारों दिशाएं परखकर, दुर्बल स्थान पहचान कर, दुर्बल वातों को निरखकर वह दुर्ग उन्हें जीतना था।

एक दिन भोर होते-होते निजामपुरी की राहटी के सामने सौ-सवा सौ जंगल काटने वालों को लेकर बाजीराव उपस्थित हुए। बन्दन कर उन्होंने राजा से कहा—

“अभियान पर निकलता हूँ, आज्ञा हो।”

राजा ने उस सेना को देखा और आश्चर्य से पूछा—

“यह इतनी बड़ी फौज किस निमित्त जुटायी है रावजी ?”

“आपके आदेश से दुर्ग के नीचे की झाड़ी काटनी है, वहाँ झाड़ी बहुत घनी है। उसमें धुसने का प्रयत्न करने पर सारा शरीर कट-फट जाता है।”

राजा ने कुछ कड़े स्वर में कहा—

“नहीं, नहीं, रावजी ! उस भाड़ी को हाथ लगाने की विलकुल आवश्यकता नहीं । अजी वह भाड़ी तो दुर्ग का कवच है । उसमें से एक भी टहनी तोड़ने मत दो । एक भी वृक्ष पर आधात नहीं होना चाहिए । हम लोग जिस दुर्ग को लेना चाह रहे हैं, उसका विघ्वंस थोड़े ही करना है, एक बार यह भाड़ी टूटकर किला खुला हो गया तो उसे फिर से ऐसी भाड़ियों से ढकने को कितने वर्ष लगेगे, इसका कुछ विचार करिए ।”

“तब आप ?”

“हम चारों ओर से धूमकर देखना चाहते हैं, उसके लिये दो हाथ चौड़ा मार्ग बना लो बस ।”

इतना कहकर राजे बाहर आये । उनके इन जंगल तोड़ने वालों के समीप जाते ही सभी ने झट झटकर जौहार किया । उनमें से एक बूढ़ा राजा के सामने दण्डवत् करके पड़ा रहा । राजा ने उसे उठाया और कहा—

“वावा ! उठो । चरणों पर पड़ना चाहिए ईश्वर के । हम जैसे मानव के सामने इतना झुकने की आवश्यकता नहीं । आपका रहना कहाँ है ?”

“अजी, यही क्या नाम...”

उस बूढ़े का लड़का भी उस भीड़ में था, वह आगे बढ़ा । उसने उत्तर दिया—

“जी, यही वालणकोंडी की पिछाड़ी की ओर हमारा घर है ।”

“कितने घर हैं वहाँ ?”

“हैं जी पाँच-सात ।”

“आसपास घना जंगल होगा ?”

“जी, बहुत घना ।”

“कभी शेर भी तो आ जाता होगा ।”

“उहौं, वह तो आये दिन आता रहता है । घर में बच्चा होता है न, गाय का । उसी के लिये आता है । अभी-अभी तो आया था एक दिन ।”

“तब ? उधर शेर और तुम इधर ?”

“घर पर और भी तो लोग हैं ? इस पूत की माँ है और इसकी घर-

वाली भी तो है।”

कुछ हँसकर राजा ने पूछा—

“इसके माने, आपका कहना है कि घर पर स्त्रियाँ हैं, शेर आया भी तो उसकी चिन्ता-व्यवस्था वे सभी कर लेंगी। आपको चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं।”

बूढ़े ने हँसकर कहा—

“हाँ जी, कोई आवश्यकता नहीं।”

रावजी की ओर देखकर राजा ने बूढ़े से पूछा—

“खेती कितनी है?”

“थोड़ी सी है। मूठ-मूठ, अंजुरी-अंजुरी कुछ अनाज उत्तरता है।”

उस बाबा की उस निश्चिन्तता और निर्मयता को देखकर राजे अपने ही विचारों में क्षणभर खो गये। क्षणभर पश्चात् भान संभालकर उन्होंने कहा—

“रावजी! ये इतने सब अपने-अपने घर के काम को एक ओर छोड़कर आये हैं। अब इन सभी को काम पर लगाओ। पर एक बात ध्यान में रखो, उतनी दो हाथ की राह छोड़कर वाकी पेड़ों को हाथ लगाने की आवश्यकता नहीं। और, इन सभी को तत्काल मजूरी मिलनी चाहिए, देर नहीं होनी चाहिए। घर पहुँचना है, दूर भी जाना है इन सभी को। जाओ, काम में लगो।”



चारों ओर से दुर्ग को देखते हुए राजा शिवाजी पैदल ही उसकी परिक्रमा कर रहे थे। टकमक सिरे के सभीप उसकी तलहटी में आकर खड़े हुए और उस सिरे का सीधा उभार देखने लगे।

किसी विशाल जहाज का सिरा संकुचित होता हुआ अन्त में नोक पर आकर समाप्त होता है, उसी प्रकार वह टकमक का सिरा दिख रहा था। दोनों ओर से अत्यन्त ऊँचे तक सीधी कगार टूटी थी। लगता था पर्वत का वह छोर किसी दैत्य ने परशु लेकर छाँट दिया हो।

राजा के पीछे शिलेदारों में शिलीमकर थे, उनकी ओर मुड़कर राजा ने कहा—

“राव ! कैसी अद्भुत करती है निसर्ग की ? लगता है परशु का फल ही आकाश में उठाया हुआ है !”

शिलीमकर ने मुण्डी हिलाकर कहा—

“विलकुल वेलाग ! किसकी छाती है कि इस ओर से दुर्ग पर चढ़ जाये ?”

राजा ने कहा—

“इस दुर्ग के चारों अंगों में से कहीं से भी ऊपर चढ़ जाना कठिन है, राव ! चारों वाजुओं से चारों ओर कगारें काटकर बनायी हों, ऐसी वेलाग, लगभग डेढ़ वस्ती ऊँची ।”

राजा इतना बोले ही थे कि तभी ऊपर से सनसनाता एक तीर अत्यन्त वेग से उनकी ओर आया और समीप के ही एक वृक्ष में वित्ताभर धंस गया । राजा ने तत्क्षण झाड़ी में घुसते हुए शिलीमकर से कहा—

“देखा, आपका यह भाईचारा ? तुम कहते हो कि किला समझा-वुझाकर हाथ में आ जायेगा । यह क्या उसका लक्षण है ?”

शिलीमकर का मुख लाल हो उठा, उन्होंने कहा—

“महाराज, हमारा कुछ भी कहना नहीं है । अब किसी भी ओर से बोलने को अवसर नहीं रहा, अब आप चाहे जिस मार्ग से दुर्ग लेने को कहें ।”

“माला लगाकर ?”

“जी ।”

“चारों ओर से फाँसते हुए ।”

“जी, मैं प्रस्तुत हूँ पर अब एक प्रार्थना है ।”

“कहिए ।”

“आप यहाँ से लौट जायें ।”

“ऐसा क्या हो गया है कि पीछे लौट चलूँ ?”

“ऊपर से ऐसी यह सनसनाहट चल रही है, आगे कहीं ऊपर से कोई चट्टान धकेल दी तो ?”

राजा ने शिलीमकर की ओर मुड़कर कहा—

“राव ! हमारी आयुष्य-रेखा इतने में खंडित होगी नहीं । आप

चिन्ता न करें। इस दुर्ग पर हमारा मन बहुत है। एक बार इसे चारों ओर से हमें देख लेने दो। इतनी सी बात से भय मत खाओ। कुछ करना है तो रात-दिन ऐसे ही तीरों की वर्षा में घूमना-फिरना पड़ता है। एक तीर के भय से ऐसे मार्ग छोड़कर भागूँ तो…।”

“तो क्या ?”

“अजी, यह दुर्ग भी हम पर हँसेगा।”

इतना सुनकर शिलीमकर चुपचाप राजा के पीछे-पीछे चलने लगे।

दायीं और गगन तक पहुँची दुर्ग की प्रचण्ड भीत, बायीं और धनी भाड़ी, वहाँ से उतरते ढाल के नीचे से बहने वाली काल नदी। उस भाड़ी में कभी पुरातन समय में गिरे-टूटे पत्थरों में से राजा चल रहे थे। बीच में ही रुकते, अखिलों पर आड़ा हाथ रखकर, दुर्ग की ऊँचाई मापते-जोखते। पर्वत की मूल बनावट में पत्थरों, शिलाओं और चट्टानों की आड़ी परतें दूर से चली आ रही थीं, एक से एक जुड़ी…। लगता था आदि स्थपति ने इस पर्वत की रचना करते हुए प्रस्तरों के स्तर एक पर एक रचे थे। हर स्तर का अलगाव स्पष्ट दिख रहा था। उन स्तरों से बनी चट्टानें भी ऐसी ठोस कि उन पर धास का तिनका भी उगता नहीं। किंचित् भी कहीं माटी नहीं। दूसरी ऐसी ही कगारों में चट्टानों के कुछ मृदु भाग झुके थे, वहाँ शैलगृह से बन गये थे। उनमें चीलों ने अपने धोंसले बनाये थे।

पर रायरी के आसपास के प्रस्तरखण्ड ऐसे ठोस और बेलाग कि सारे पर्वत में दो-चार बने शैलाश्रयों को छोड़कर कहाँ होटा सा आला तक नहीं बना था। आसपास का जंगल बास्तव में अत्यन्त धना था। उसमें से बड़ी कठिनता से दो हाथ चौड़ी पगडण्डी तोड़कर ठीक की गयी थी। पर वह मार्ग भी क्या था, दोनों ओर के भाड़भाड़ के विस्तार और पैरों तले आने वाली बाधाओं का कोई उपाय नहीं था। बीच-बीच में बहते नाले और गड्ढे, तीव्र ढलान और संकरी भाड़ी। कहाँ-कहाँ दोनों ओर का जंगल इतना धना कि पैरों तले भी अंधेरा होता। आगे-पीछे भरोसे के शिलेदार चल रहे थे, कहाँ बीच-बीच में किसी बच्ची-खुच्ची भाड़ी की कोई ठहनी आगे आती तो उसे काटकर दूर फेंकते और इस प्रकार मार्ग निर्वाध करते। राजा मार्ग चलते हुए भी दुर्ग पर से अपनी दृष्टि इधर-उधर बिना हटाये

उसे निरखते आगे बढ़ रहे थे ।

एकाएक रुककर राजा ने शिलोमकर से कहा—

“एक बात ध्यान में आयी आपके ?”

“जी ।”

“चारों ओर से पर्वतों के कड़े ऐसे बेलाग होने के कारण ही किले पर कहाँ भी हाथभर भी तटवन्दी खड़ी नहाँ की गयी है ।”

“जी, धनी ! एक मुख्य द्वार छोड़कर ।”

“आपने ध्यान दिया होगा उस द्वार के दोनों ओर ही तटवन्दी बनाकर पक्की करनी होगी ।”

“जी ।”

लगभग आधा कोस चलकर उस पर्वत का एक छोर, हाथी की सूँड़ सा उत्तरता, उस पार काल नदी के समीप तक पहुँचा था । उस उत्तरते भाग को जोड़ने वाला दर्रा सामने आ गया था । उस दर्रे का चढ़ाव अत्यन्त दुर्गम । हर प्रस्तर और शिला को पकड़कर शरीर ऊपर उठाना पड़ता । कितनी देर तक तो राजा अपनी टुकड़ी के साथ उस झाड़ी की भूलभुलैय्या में खो गये थे । जंगल तोड़ने वालों ने वह दो हाथ चौड़ी पगडण्डी भी न बनायी होती तो दिशा को जानने का भी कोई उपाय न रहता ।

सारे ही जैसे-नैसे गिरते-पड़ते उस दर्रे में जा पहुँचे । तब दुर्ग का दूसरी ओर का बेलाग कड़ा दायीं ओर दिखने लगा । वह भी जैसे अब तक देखे थे, उसी प्रकार का था । दर्रे में ही उस कड़े की भयंकरता कुछ कम थी, वाकी उसका सीधा उभार वही था । वही और वैसा ही दुर्गम मार्ग, उसी पर आगे बढ़ते हुए राजा वालसुरे के ऊपर की ओर आ पहुँचे । वहाँ राजा की एक चौकी थी । वहाँ के पहरेदार आगे आये और उन्होंने राजा का झुक-झुककर बन्दन किया । वहाँ का कड़ा निरखते हुए राजा ने पूछा—

“नाईक ! कुछ विशेष जानकारी ?”

“कुछ विशेष नहाँ । कल-परसों एक गडरिया आया था । वह कह रहा था, यह जो दूर पहाड़ी दिख रही है उसे कोयरी कहते हैं और बीच में खड़ी पहाड़ी को पोटला का डोंगर कहते हैं । बस इतनी सी नयी जानकारी है ।”

“इस भाग का क्या नाम है ?”

“जी, इसे कोंडे खली का गड्ढा कहते हैं।”

राजा ने रुककर सारा भाग एक बार फिर से देख लिया, फिर शिलीम-कर से कहा—

“राव शिलीमकर जी ! राणोजी ने एक बार पहले कहा था कि रायरी देवगिरि से दस गुना ऊँचा है, वह एकदम सही है। दुर्ग एकदम बेलाग और सुरक्षित है। पर यह एक स्थान ही दोषपूर्ण है। ऊपर से उतरती जो खोह सी दिखती है, वह इस कगार को दोनों ओर से काटती नीचे उतरती है। कोई चतुर, कड़ा चढ़ने वाला हो तो यहाँ से ऊपर चढ़कर मोरे को चकित करना असम्भव नहीं। आप क्या सोचते हैं ?”

“जी, धनी। पर, यहाँ से ऊपर चढ़कर माला लगाना है ?”

“हाँ ! हमारे पास एक व्यक्ति ऐसा भी है, जो इस दुर्गम कगार पर भी चढ़ सकता है। उसका नाम निदान्या है।”

दिन ढल रहा था। जंगल की शीतलता चारों ओर बढ़ रही थी। ‘कोंडे खली’ के गड्ढे की तलहटी में राजा के साथ निदान्या खड़ा था। राजा ने निदान्या से पूछा—

“निदानराव, कड़ा देखा ?”

“हाँ जी।”

“तब, ऊपर चढ़कर माला लगा सकते हो ?”

“प्रस्तुत हूँ जी। पर आज और अभी ही चढ़ना होगा ?”

“तब, तुम्हारे मत से क्या ?”

“विजयादशमी के बाद ठीक रहेगा। उस समय कुछ साधन भी होता है।”

शिलीमकर निदान्या को कुछ कहने वाले थे, उनको रोककर राजा ने पूछा—

“दशहरे के बाद का समय ठीक कैसा निदानराव ? उस समय तो कगारों पर सब ओर शैवार होगी।”

“वह शैवार सावन-भादों में होती है। दशहरे के आसपास तो उसका सूखकर पापड़ बन जाता है।”

“पर उस समय कुछ साधन क्या होगा ?”

“जी, उन दिनों में इन कड़ों पर धास के तिनके पक्के और कड़े बन जाते हैं। अजी, उनको पकड़-पकड़कर ऊपर रेंगते जाना सरल होता है।”

“पर निदानराव, अब हम लोगों को दशहरे तक रुकने को समय नहीं है... बीतती हर घड़ी का उपयोग कर ही लेना है।”

“ऊपर चढ़कर क्या करना है ?”

“कमर में बाँधकर एक रस्सा ऊपर ले जाना है। ऊपर वे वृक्ष दिखते हैं, उनमें से किसी एक के तने में रस्सा बाँधना है। वस, तुम्हारा काम समाप्त !”

“हाँ जी, यह क्या, अभी आपके सामने करता हूँ।”

“ऊपर जाने पर नीचे उत्तर भी लोगे ?”

“न उत्तरने को क्या हुआ ?”

इतना कहकर निदान्या आगे बढ़ा, उसने वह वेलाग कगार अच्छी प्रकार से देख ली और बाद में कमर में रस्सा बाँधकर देखते-देखते वह बन्दर के समान उस कगार के ऊपर सरसर करता पहुँच गया।



सफेद निशान लेकर चन्द्रराव मोरे का चर प्रातःकाल ही आया था। राजा शिवाजी योजना के अनुसार ही सायंकाल के समय चढ़ान चढ़कर दुर्ग के द्वार के समीप जा पहुँचे थे। उनके साथ शिलीमकर थे और साथ ही दो हजार सैनिक भी। वे सभी भाले लेकर और तलवार पेलते हुए द्वार के बाहर खड़े थे।

चौथाई घड़ी और बीत गयी। पर द्वार खोलकर चन्द्रराव हाथ बाँधकर सामने उपस्थित नहीं हुआ था। शिलीमकर कुछ अशान्त हो उठे। राजा ने उनको आँखों से ही संकेत किया और कहा—

“देर हो रही है, यह बहुत ही अच्छा हो रहा है।”

“आपका अभिप्राय ?”

“हम आपकी चिन्ता समझ सकते हैं, पर थोड़ा धैर्य...।”

“जैसी आज्ञा !”

चौथाई घड़ी और बीत गयी तथा अन्त में द्वार की अर्गला खोलने की

आवाज आयी। वह पुराना द्वार करकराते हुए खुल गया और चन्द्रराव मोरे ने द्वार के बाहर पैर रखा। उसके पीछे दोनों हाथों में म्यान बन्द तलवारें लिये चार सेवक चल रहे थे। चन्द्रराव मोरे ने राजा की दृष्टि से दृष्टि भिड़ाने का एक बार प्रयत्न किया, पर दूसरे ही क्षण आँखें झुकाते हुए उसने कहा—

“अन्ततोगत्वा हमने अपने भांजे की बात रखना ही ठीक माना।”

राजा ने आश्चर्य से पूछा—

“आपके इस विश्वास के लिये हम आभारी हैं, पर आपकी साधन-सामग्री समाप्त हो गयी, इसीलिये तो कहीं आप किला हमें नहीं सौंप रहे हैं?”

गर्दन सीधी कर कुछ दम्भ से चन्द्रराव मोरे ने कहा—

“कौन कहता है साधन-सामग्री समाप्त हुई? सभी कुछ लेकर मुकर्रंबजहां इन चार-आठ दिनों में...”

“आने भी दीजिए खान साहब को, उनकी खिदमत करने हम हाजिर हैं। कहीं न कहीं उनकी भी व्यवस्था हो ही जायेगी। पर एक बात जानने के लिये आपको कुछ देर हो गयी है, किला आपने हमें सौंप नहीं दिया है, हमारे जवानों ने वह जीत लिया।”

कुछ चिढ़कर चन्द्रराव ने कहा—

“इतनी डींग क्यों हाँकते हो? अब भी हमारी कडाविनियों में बारूद भरी है, इसी क्षण हम दरवाजा फिर से बन्दकर तोपों की वर्षी कर तुम्हें पराजित कर सकते हैं। जावली में जो अपघात से हो गया, वह यहाँ भी होगा, ऐसी आशा कर रहे हो तो उसे झुठलाने में हमें देर नहीं लगेगी, यह वज्रलेप सा समझो।”

राजा के पीछे दूर, कगार के माथे पर खड़ा एक सैनिक किसी संकेत की प्रतीक्षा में था। इसी क्षण उसने संकेत किया। उसे देखते ही राजा ने कहा—

“ठीक है, चन्द्रराव मोरे! तुममें इतना साहस हो तो तुम जैसा कह रहे हो, उसे सही कर दिखाओ। अब आप जा सकते हैं, आपको अनुमति है।”

चन्द्रराव ने ओठों को दाँतों से दबाते हुए राजा की ओर देखा और अपने कमर के खड़क की मूठ को हाथ में कस लिया। क्षणभर बाद वह एक पग पीछे लेकर द्वार की ओर मुड़ने ही वाला था कि तभी दुर्ग के ऊपर से प्रचण्ड कोलाहल उसके कानों में पड़ा और उसी के साथ दुर्ग के भीतर से गर्जना हुई—‘हर हर महादेव’।

चकित होकर चन्द्रराव मोरे ने राजा की ओर मुड़कर पूछा—

“इसका क्या अर्थ है ?”

“एक बार फिर से समझाकर बताने की भी आवश्यकता पड़ेगी क्या ? आदिलशाह द्वारा तुम्हारे सामने फेंकी गयी जूठन खाकर तुम्हारी बुद्धि इतनी भ्रष्ट हो गयी है, तो सुनो, किसी को देने-नेने के लिये अब यह दुर्ग तुम्हारे स्वामित्व में नहीं रहा। हमारे सैनिकों ने माला बौधकर दुर्ग जीत लिया है।”



राजे अत्यन्त आश्चर्य से किले का विस्तार और परिसर देख रहे थे। कोस-सवा कोस लम्बा वह किला त्रिकोण सा पसरा था। ऊपर यहाँ-वहाँ कुछ बना था। तालाब तो थे, पर वे थे बहुत पुराने, लगभग हजार वर्ष पहले के होंगे, ऐसा अनुमान किया जा सकता था। किलेदार के पुराने बाड़े के पीछे हशमों की भोपड़ियाँ थीं। किले पर किसी सुधड़ सज्जा की शोभा किंचित् भी नहीं थी।

त्रिकोण के बीचोंबीच पश्चिम की ओर पठार था। उसके पीछे सात-आठ ढलान उतरे थे। उनके नीचे खोहें थीं। उन खोहों में भी घनी झाड़ी थी। इतनी घनी कि उनमें चारा खाने उतरा हाथी ढूँढ़ना भी कठिन होता।

पर ईश्वर ने एक विशेष वरदान उस दुर्ग को दिया था। ईश्वर की उस कृपा की जितनी प्रशंसा की जाये उतनी थोड़ी है। चारों ओर से प्रचण्ड ऊँचाई के कड़े, भय दिखाने वाले, मुँह बाये, मानो खाने को दौड़ रहे हों और उनके बीचोंबीच नीराजना की जलती बाती के समान वह रायरी दुर्ग।

वे प्रचण्ड कड़े और रायरी दुर्ग, इन दोनों के बीचोंबीच पश्चिम की

ओर गांधारी नदी, तो पूरब की ओर काल नदी, इन दोनों नदियों ने किले को धेर रखा था। कोई सोचे कि इन दोनों नदियों को बिना पार किये या कोंकण की उन प्रस्तर की भीतों पर बिना चढ़े रायरी किले पर पैर रख सकँगा, तो वह नितान्त असम्भव था। पावसकाल में तो निसर्ग-निर्मित खाई के पानी का किले के चारों ओर धेरा पड़ा होता था।

राजे पूरब के छोर के समीप जाकर खड़े हो गये। वायीं ओर कुछ दूर उनको भाले के तीखे फल सा आकाश में घुसता एक शिखर ऊपर उठा सा दिखा। राजा ने विस्मय से पूछा—

“शिलीमकर ! वह महादेव का शूल देखा ?”

मोरे का गडकरी राजा के पीछे-पीछे ही धूम रहा था। उसने बन्दन करके कहा—

“धनी ! उसका नाम लिंगान्या डोंगर है। ऊपर कुछ तालाब हैं पानी के, बहुत पुराने।”

राजा ने स्वयं से बोलते हुए धीरे से कहा—“उसे भी बनवाना चाहिए।”

इसके बाद राजा की दृष्टि दायीं ओर मुड़ी तो उनको सामने ही उनके दो प्रिय दुर्ग दिखे, उन्होंने शिलीमकर से कौतुक से कहा—

“राव ! थोड़ा हाथ बढ़ाया तो राजगढ़ को स्पर्श करना सम्भव होगा कि नहीं ?”

शिलीमकर ने हृषित होकर कहा—

“और तोरण दुर्ग को भी।”

“हाँ।”

क्षणभर रुक्कर उसाँस लेकर राजा ने कहा—

“दूसरे किसी भी दुर्ग से इन दोनों का इतना निरूपम दर्शन नहीं होता।”

कुछ धणों तक राजे उन्हीं दो प्रिय दुर्गों को देखते रहे। फिर अपनी एकाग्रता में से निकलकर पीछे मुड़कर राजा ने गडकरी से पूछा—

“वयोंजी, यह सारा आसमन्त आपका परिचित है ?”

“जी, धनी।”

“रहना कहाँ का ?”

“गाँव में। यहाँ वालणकोंडी के पीछे की ओर ही हमारा गाँव है पान !”

“यह जो सामने भाड़ी से ढकी-ढकी सी घाटी दिखती है वह कौनसी है ?”

“जी, उसे कावले बावले की घाटी कहते हैं। याने उसके एक ओर कावला गाँव है और दूसरी ओर बावला गाँव है। बहुत ही घना जंगल। वहाँ दिन में भी अंधेरा सा छाया रहता है।”

“और मठ्याघाट किधर रहा ?”

“वह रहा उधर लिंगान्या पहाड़ी की ओर। और वह जो पहाड़ी दिखती है सामने की भीड़ में...”

“वह ?”

“जी। उसका नाम कोंकणदीप है।”

“अब हमें यह बताओ कि दुर्ग का घेरा कितना और कैसा है ?”

“जी, पश्चिम की ओर पाचाड़ गाँव।”

“हाँ, जानते हैं। घाटी के परे बाड़ी, उसकी तलहटी में निजामपुर; आगे बोलो।”

“उसके सामने पानगाँव, वालणकोंडी, बाघेरी, और उसके बाद दुर्ग के साथ ही साथ बाघेरी की घाटी। वहाँ भी घना जंगल है। वहाँ पश्यु भी घुसते नहीं।”

“हम उसमें से घूम आये हैं, आगे बोलो।”

आश्चर्य से मुँह पर हाथ रखकर गडकरी बोला—

“आप उस घाटी के मार्ग हो आये ?”

शिलीमकर ने कहा—

“चार ही दिन हुए, राजा ने सारा दुर्ग परिक्रमा कर देख लिया है।”

गडकरी और अधिक चकित होकर कहने लगा—

“ये मनुष्य नहीं, प्रत्यक्ष परमेश्वर हैं ! अजी, हममें से कोई भी और कभी भी नहीं गया उस भयंकर घनी भाड़ी के मार्ग से दुर्ग के आसपास। हममें से किसी को भी यह सुवृद्धि कभी नहीं सूझी।”

राजा ने उसे रोककर कहा—

“धाटी के परे कौन सा गाँव है ?”

“जी, उस धाटी के परे वाघुली और तलहटी में बालमुर और उसके बाद फिर से वही पाचाड़ ।”

अब तक राजा धूमकर पठार के पश्चिम के छोर पर आ चुके थे । उस छोर के सामने एक बड़ा सांवेलाग कड़ा हाथी की सूँड़ सा नीचे उतरा था ।

राजा ने पूछा—

“वताइए जी, यह कड़ा नीचे तक वेलाग टूटा है क्या ?”

“जी, धनी । हम तो समझ रहे थे कि वन्दर को भी इस वेलाग कड़े को रेंगकर चढ़ना कभी सम्भव नहीं होगा, पर आपके मावले कल उस कोंडे धाटी के गड्ढे में से ऊपर चढ़ आये । यह साहस उन्हीं का था ।”

“वह भाग तटबन्दी से सुरक्षित करना है, शिलीमकर जी ! अच्छा ठीक है । वह जो दायीं और पाताल तक टूटा छोर दिख रहा है…?”

“जी, उसे टकमक का कड़ा कहते हैं । एक बार वहाँ से कोई लुढ़का कि उसके चिथड़े भी मिलने नहीं । अच्छों-अच्छों की आँखें धूम जाती हैं, ऐसा भयंकर और धोखे का स्थान है वह ।”

राजा ने अपना घोड़ा उस ओर धुमाया । टकमक कड़े के समीप पहुँचने पर शिलीमकर ने कहा—

“अब पाय उतार होना ही ठीक होगा ।”

राजा ने घोड़ा वहाँ छोड़ दिया और वे दायें हाथ के छोर की ओर मुड़े । उस छोर के ठीक माथे पर पहुँचने पर सामने जो दृश्य दिखा, उसे देखते ही वे क्षणभर उसी में ढूँव गये ।

दो-द्वाई सौ हाथ वह कड़ा आगे जाने के बाद समाप्त होता था और वहाँ से ठीक तलहटी तक वह एक सीधे में कटा हुआ था । वहाँ से एक रेखा में खड़ी वह भीत निकलकर, जहाँ राजे खड़े थे उसके नीचे से, पार दूसरे छोर तक वैसी ही पहुँची थी । राजा ने झुककर तलहटी में देखा, नीचे नदी के आसपास चरते ढोर चींटी से लग रहे थे । नीचे के अन्तराल से एक चील उड़कर ऊपर आयी और राजा के ऊपर मंडराकर आकाश में दूर ओभल हो गयी । लम्बी उसाँस भरकर राजे वहाँ से आगे धीरे-धीरे

टकमक छोर की ओर बढ़े। शिलीमकर के संकेत पर दो शिलेदार राजा के आगे दोनों ओर से चलने लगे। वह भाग अत्यन्त संकरा और भयानक था। वह जहाँ समाप्त हुआ था, वहाँ राजा क्षणभर खड़े रहे। तलहटी में कहीं-क्वचित् एक-दो खेतों की भूमि में ढेर कूड़ा जलाकर खेतों को तापा जा रहा था। उसमें से उठते धुएँ के छोर ऊपर उठते थे, पर वे भी दुर्ग तक नहीं पहुँचते थे। मानो नीचे की सृष्टि ही इससे अलग थी। नदी का पाट, उसके दोनों ओर के खेत, उनके बाँध, उनके परे धना जंगल, उस जंगल में छप्परों से ढके छोटे-छोटे घंर, उसके भी पीछे छाती फुलाकर खड़ा पर्वत, उनमें से किसी का भी ऊपर के संसार से सम्बन्ध नहीं था। वह सृष्टि ही निराली थी, मानो विश्वामित्र की रची हुई। उस साहसी तापस की स्वयं की कल्पना से चित्रित किया हुआ वह एक कल्पना-चित्र था। उसे केवल निरखकर उसाँस लेना, चुपचाप देखते रहना, यही मन होता था। वहाँ से दूर होने की इच्छा नहीं होती थी, केवल साँस साधकर देखते रहने की इच्छा होती थी। यदि कहीं श्वास भी वेग से छोड़ा तो उस चित्र का स्वरूप ही विगड़ जायेगा।

कोई मन्त्र फूंक दे और चपल व्यक्ति वहाँ गड़ा सा, ठगा सा खड़ा रह जाये, उसी प्रकार राजा सुधवुध खोकर उस चित्र को निरख रहे थे। तब तक सूर्यमण्डल नीचे ढलने लगा था।

राजा का ध्यान उस सूर्य-विम्ब की ओर गया। सूर्य-विम्ब सागर में उतर रहा था। मानो कोई तपा हुआ सोना साँचे में ढाल रहा हो, वैसी एक सुवर्ण-रेखा उनकी आँखों के सामने चमकी। उस दीप्ति-रेखा के दर्शन से वे अवाक् हो गये। उनके मुख से एकाएक शब्द निकला—“अहा हा, सागर !” राजा उस अलौकिक दृश्य में खो गये। सूर्यनारायण धीरे-धीरे नीचे उतर रहे थे। सूर्य ने समुद्र-रेखा को स्पर्श किया। उसके आसपास दो-तीन मेघखण्ड तैर रहे थे। उन पर भी उस विम्ब की आभा का स्पर्श हो रहा था। सूर्य और मेघमण्डल दोनों का अन्तर समाप्त हो गया और वह सारा ही दृश्य एक स्वर्णिम आलोक से उजला-उजला और स्वर्णिम दिखने लगा।

देखते-देखते वह विम्ब सागर की आड़ में उतरने लगा। प्रथम सोने के

घड़े जैसा, बाद में अंग्रेजों के टोप सा, कुछ ही क्षणों में सूर्य-बिम्ब सोने की नौका सा दिखने लगा और पश्चात् सोने की लम्बी सी पट्टी सी दिखने लगी और अन्त में सब कुछ समाप्त हो गया। इतना बड़ा तेजस्वी आदित्य-मण्डल, पर उसे भी मानो सागर ने निगल लिया। बहुत देर तक राजा एकाग्रता से उस अलौकिक चित्र को देख रहे थे। क्षणभर उसाँस लेकर उन्होंने पीछे देखा। वहिर्जी नाईक, राणोजी और बाजीराव, तीनों ही पीछे आकर खड़े थे। उन्होंने आगे आकर झुककर बन्दन किया। आनन्द से राजा ने पूछा—

“अरे, तुम, नाईक ! और सभी ? दौलतबंकी और देशमुख भी ? कब आना हुआ ?”

“जी, अभी-अभी आ रहे हैं।”

“कार्य सम्पन्न ?”

“जी।”

“तुम तो सिंह हो, सिंह। किसी काम के लिये निकलो कि उसे पूरा किये बिना पीछे लौटना ही नहीं।”

राजा ने उन तीनों के समीप जाकर पूछा—

“नाईक ! प्रकृति ठीक ?”

“आपकी कृपा है।”

“दौलतबंकी ! गोजाई भाभी ने माँ साहिबा को परसों ही सन्देश भेजा है कि पूत को गोद में लेने और देखने आसवली तक आना होगा। तब ? आज की रात हमारे पास रहकर सारा विवरण दो और कल भोर होते-होते यहाँ से निकलो, नहीं तो भाभी हम पर रुष्ट होंगी।”

“जी !”

“ननावरे देशमुख ! तुम्हारी पार्वती माँ साहिबा के पास रहकर ब्रत-उपवास करती रहती है, एकदम ब्राह्मणी बन गयी है। हमारी भी सुनती नहीं।”

बाजीराव ने धीरे से कहा—

“वहिन किसकी है !”

राजा ने पूछा—

“क्या कहा ?”

“अपराध क्षमा हो महाराज ! पर मेरा कहना था कि वह आपकी ही, तो बहिन है। आप भी माँ साहिवा की कहाँ सुनते हैं ? वे कहती हैं चार दिन हमारे साथ रहो, खा-पीकर जहाँ...”

राजा ने वाजीराव की पीठ पर हाथ रखकर कहा—

“राव ! तुम जैसे हीरे-माणिक भिखरिमण्गों का स्वाँग रचकर उजाड़ जंगलदेश घूमते रहते और हम माँ-साहिवा के साथ रहकर खा-पीकर मोटे होते ? नहीं, यह शोभा नहीं देता। फिर हम पर हँसेंगे नहीं वडे महाराज ?”



परशुराम पर्वत के नीचे चौकी के नाकेदार ने चकित होकर पूछा—

“ये इतने घोड़े ? यह सारा असबाब ! ये सब अमीर ?”

घोड़े पर बैठे-बैठे ही गुसाई ने कहा—

“तब ? अरे वहाँ आकर देखो, शिखर शिंगणापुर में, जहाँ महंत महाराज का मठ है। वहाँ तो बहुत बड़ा सफेद हाथी है, लावलश्कर है और ऐसा ही बहुत सा है। और, हाथी के पैर में सोने का तोड़ा भी है, कभी देखा था ?”

आश्चर्य से थूक निगलकर नाकेदार ने कहा—

“नहीं, नहीं !”

गुसाई ने गर्व से कहा—

“तब ?”

रहमत खान की फौज इसी मार्ग से नीचे कोंकण में गयी थी। तब उसके साथ का एक दुवला हाथी उस नाकेदार ने देखा था। पर सोने का तोड़ा पैर में पहने सफेद हाथी की बात उसकी कल्पना के भी परे की थी। वह हाथी जिस शिखर शिंगणापुर के महंत के द्वार पर झूम रहा है, उसके साथ ऐसे तगड़े सात-आठ घोड़े होना स्वाभाविक है, यह समझकर उसने उस महंत के साथ जाने वाली अश्वारोही टुकड़ी को रोका नहीं। उत्तम श्याम घोड़े पर बैठे, तरुण, सुन्दर महंत और उनके साथ का गुसाईयों का वह काफिला परशुराम के मन्दिर के सामने जाकर घोड़ों से उत्तरा। वे सारे

ही गुसाई मुण्डन किये थे, सभी के शरीर पर कफनी थी, सभी ने सिर पर भगवे साफे बाँध रखे थे। महंत के कान में सोने की बाली थी। हाथ में कड़े भी थे। तेजस्वी महंत की चौकस दृष्टि चारों दिशाओं में धूम रही थी और आसपास के परिसर को परख रही थी। खाड़ी का तट और दरिया किनारा। ये दोनों ही बातें महंत के लिये नवीन थीं। महंत के स्वर्गस्थ गुरु महाराज ने उनको आदेश दिया था कि शिखर शिंगणापुर के सरोवर के जल से सारी कोंकण पट्टी के देवताओं का अभिषेक करो, उन सभी तीर्थ-क्षेत्रों की यात्रा कर वहाँ का सागर-जल स्वयं जाकर लाओ और उस जल से शिखर शिंगणापुर के महादेव का अभिषेक करो। उस श्रेष्ठाज्ञा को पूरा करने के लिये ही महंत कोंकण की यात्रा के लिये निकले थे, नहीं तो मठ का आराम छोड़कर सुख की काया इस यात्रा के कष्टों में डालने का उनको कोई कारण नहीं था।

चिपलून के सूबेदार की कचहरी में महंत ने उसांस लेकर और मुँह बनाकर कहा भी था कि, “अगर हमारे मुर्शद का हुक्म न होता तो क्या जरूरत थी इस सूने में और बीराने में धूमने की, लेकिन किसी ने फर्माया है न, कि, क्या ? खैर जाने भी दीजिए। आप भी समझदार हैं और बुजुर्ग भी हैं, समझ गये होंगे।”

कोंकण में यात्रा करने का परवाना महंत के हाथों में देते हुए सूबेदार ने आश्चर्य से कहा था—

“महंत जी ! आपकी जुबान तो बड़ी मँजी हुई है। साफ-साफ उर्दू बोल लेते हैं आप।”

“बादशाह सलामत के कदमों में बचपन गुजरा है न।”

“अच्छा, आप बीजापुर में थे ?”

“जी।”

परशुराम का मन्दिर छोटा सा था, काले पत्थरों का। उन्हीं प्रस्तरों की आसपास की भीत भी थी। महंत को और उनके साथ के लोगों को देखकर परशुराम की छत्रछाया में रहने वाले सेवक और पुरोहित लोग वहाँ इकट्ठे हो गये, पूछताछ भी प्रारम्भ हो गयी, ठीक कोंकण शैली की।

“कौनसा गाँव ?”

“शिखर शिंगणापुर !”

“यह कहाँ है ? अच्छा, अच्छा, ऊपर घाट पर है। वहाँ क्या मठ है आपका, पहाड़ी पर ? तब तो मठ कुछ बहुत बड़ा नहीं होगा। होगा छोटा सा। ये धोड़े कहाँ से लाये ?”

“अपने हैं।”

“तब तो वात कुछ बड़ी है। वैसे ही पूछ रहा हूँ, कोई विशेष वात नहीं है, पर यह तुम्हारे महंत के हाथों में जो कड़ा है, वह शुद्ध सोने का है कि यों ही दिखावा ?”

कोई उत्तर न मिलने पर, “हर दिन भोजन की क्या व्यवस्था है ?

“दाम देकर सामान खरीदते हैं ? तब तो आश्चर्य है, नहीं तो दूसरे वैरागी सदावर्त में भोजन करेंगे और मुखशुद्धि के लिये मार्गे काली मिर्च का चूर्ण ।”

अब तक महंत देवदर्शन कर वाहर आ गये थे, उन्होंने उन सभी पुरोहितों और पण्डितों से पूछा—

“यह मन्दिर गिर कैसे गया ?”

पुजारी ने वात कुछ दो टूक ही कही—

“हमारे घर भी कहाँ रंगमहल हैं, जैसे हम, वैसा हमारा देव ।”

महंत ने पूछा—

“इस देव का चढ़ावा, भूमि-उपज कौन खाता है ?”

“हम सभी खाते हैं।”

“आय का दूसरा कोई साधन ?”

“इस भूमि को छोड़कर दूसरा कुछ भी नहीं। फिर जो भी कभी यजमान आता है, उसका अभिषेक इत्यादि। क्या समझे ? चल जाता है किसी प्रकार ।”

“पुजारियों के घर कितने हैं ?”

“हैं, आठ-दस, कौन गिनता है ।”

महंत ने कुछ अप्रसन्न होकर कहा—

“इतने कुटुम्ब इस देवता के स्थान पर आश्रित होकर जीवन जी रहे हों और उसकी यह दशा कि देवता को अन्धकार में रखते हों ।”

समीप ही दूसरा नंगे शरीर खड़ा पण्डित बोला—

“अजी महंत ! परोपदेश पाण्डित्यम् तो सभी को करना आता है।”

तभी एक गुसाई आगे बढ़कर उसे समझाने लगा तो उसे एक और सारकर वही उद्घण्ड पण्डित बोला—

“अजी, यह देवता ही आय का साधन है, यही एकमेव । देवता हमें भरपूर दे, तो हम भी रात-दिन उसके आसपास कपूर के दीपक जलायेंगे । पर घरबार और कुटुम्ब को भूखों रखकर देवता का तेल-धी से अभिषेक करें, यह हमें अभी तक किसी ने सिखाया नहीं । यह सब रहने दो, बोलो, क्या अभिषेक करने वाले हो देवता पर ? या केवल दो हस्तक और एक मस्तक ?”

यह सब कुछ सुनकर लाल हुए महंत ने कहा—

“हमें कुछ भी नहीं करना है।”

और वे तुरन्त देवालय से बाहर निकल गये । योड़ी दूर पर पहाड़ी के समीप एक धर्मशाला थी । एक गुसाई ने सुझाया, “महाराज ! वहाँ उस धर्मशाला में रुकें ?”

“जहाँ भी हो… पर इन पण्डों से दूर ।”

□

सूर्यास्त होते ही सायंकालीन शीतल समीर बहने लगा । शुक्ल पक्ष होने से आकाश में चन्द्रमा की ज्योत्स्ना फैली थी । नक्षत्रों ने गगनमण्डल पर चारों ओर अपना साम्राज्य फैलाया । इसी कारण सामने का सारा प्रदेश स्पष्ट दिखने लगा ।

पर्वत की तलहटी में वायीं और दूर से वासिष्ठी नदी बहती दौड़ती आयी थी, और गोवलकोट के समीप खाड़ी में जा समायी थी । प्रतिदिन सागर का पानी गोवलकोट तक पहुँचकर वहाँ से चिपलूण को छूता था । खाड़ी के दोनों ओर नारियल के वृक्षों की धनी राई थी । चाँदनी का प्रकाश खाड़ी के पानी पर दमक रहा । लगता था, सब ओर किसी ने रजतरेखा के पावड़े बिछा दिये हों । पश्चिम से बहती हवाएँ दरिया को छू-छूकर आतीं, नीचे के बाँसों के जंगलों में घुसतीं, वहाँ से सूँ-सूँ की आवाज करते हुए ऊपर देवालय के समीप खड़े नारियलों के माथों को हिलाती-डुलाती-

पीछे के घने जंगल में खो जातीं ।

धर्मशाला के सामने एक बड़ी सी शिला पर महंत बैठे थे । एक प्रौढ़ गुसाईं समीप खड़ा था । वाकी सारे धर्मशाला को झाड़कर साफ करने में लगे थे । उन्हें रसोई के काम में भी जुटना था । महंत और उनके समीप खड़े गुसाईं धीरे-धीरे बातें कर रहे थे ।

“विनती यह है कि यहाँ के क्षेत्रस्थ ब्राह्मणों पर रुष्ट होने में कोई लाभ नहीं है । एक तो देश ही दरिद्री, दूसरे अंग्रेजों का आतंक । एक बात और, ये जायें भी तो कहाँ और करें भी तो क्या ?”

“पर इसलिये देवाखिदेव परशुराम को अंधेरे में ही रखना ? देवालय की साफ-सफाई भी नहीं करना ?”

“यह बात तो सही है ।”

“मोरगिरि ! आपने एक बात की ओर ध्यान नहीं दिया । देवालय के पीछे इन ‘महापण्डितों’ का एक गुट क्या कर रहा था, जानते हो ?”

“क्या ?”

“अजी, वहाँ पट विछा था । कौड़ियाँ खुल-खुल बोल रही थीं । इधर देवालय में देव कूड़े में पड़ा है और उधर वे गोटियाँ सार रहे थे ।”

इस पर मोरगिरि कुछ भी नहीं बोले । कुछ क्षणों बाद कुछ शान्त होकर महंत ने पूछा—

“यह जो सामने दिखता है वह महेन्द्र पर्वत है ?”

“जी ।”

“महारथी कर्ण इसी स्थान पर भगवान के पास अस्त्रविद्या सीखने आया था ।”

“जी ।”

तीक्ष्ण स्वर में महंत ने कहा—

“अपने पुजारी अपनी कभी ऐसी भी दशा करेंगे, यह यदि परशुराम को तब ज्ञात होता तो...”

“तो क्या महाराज ?”

“तो उन्होंने इन सबको भी शाप दे दिया होता ।”

तभी जलती मशाल हाथ में लिये एक वृद्ध ब्राह्मण धर्मशाला के समीप

आया। काँपते किन्तु शान्त स्वर में उसने पूछा—

“शिंगणापुर के महंत यहीं ठहरे हैं क्या ?”

मोरगिरि ने आगे बढ़कर पूछा—

“आप क्या चाहते हैं ?”

“कुछ नहीं बाबा, मैं केवल उनसे मेंट करना चाहता था। सायंकाल मैं देवालय में नहीं था। यहाँ से कुछ दूर मार्जनी गाँव में लड़की व्याही है, उसे पहुँचाने गया था। घर लौटने पर देवालय का सारा वृत्तान्त ज्ञात हुआ; उसी क्षण दौड़ता यहाँ आया हूँ।”

इतना ही वह ब्राह्मण बोल पाया था, पर इतने से ही वह यक गया था। मोरगिरि ने उससे कहा—

“आप यक गये हैं, दो क्षण विश्राम करें।”

हाथ हिलाकर मना करते हुए उस ब्राह्मण ने कहा—

“नहीं, सर्वप्रथम महंत से मेंट करूँगा। हाथ जोड़कर चरणों में माया टेककर क्षमा मार्गुँगा। उनको बताऊँगा कि क्षेत्रस्थ ब्राह्मणों से इससे भिन्न च्यवहार की अपेक्षा होना एकदम सही है, पर क्या करें, कुछ होते ही ऐसे हैं, आयु से बड़े होने पर भी उनकी समझ छोटी ही रहती है, उनको क्षमा करें और देवता पर क्रोध न करें।”

यह सुनकर महंत अपने स्थान से उठकर ब्राह्मण के समीप आये। उन्होंने ब्राह्मण को कहा—

“नमस्कार करता हूँ, बाबा !”

“कल्याणमस्तु ! मैं समझता हूँ...।”

मोरगिरि ने कहा—

“आपका अनुमान यथार्थ है, स्वयं महंत ही आपके सामने खड़े हैं।”

मशाल आगे बढ़ाकर ब्राह्मण ने महंत की मुखमुद्रा निरख ली और अपनी बाणी को प्रयत्नपूर्वक स्थिर रखते हुए उसने आश्चर्य से कहा—

“थोड़ा ज्योतिष भी पढ़ा है, मुख पर दिखते ये लक्षण...। नहीं... कदाचित्, मैं गलती भी कर रहा हूँ...। आजकल मेरी दृष्टि कम देखती है...।”

महंत ने मोरगिरि को संकेत करते हुए ब्राह्मण से पूछा—

“आप क्या चाहते हैं, बाबा ?”

“प्रथम एक ही अपेक्षा है कि आप ब्रह्मवृन्द पर का क्रोध देवता पर मत निकालिए। उसकी यथासांग पूजा और अभिषेक करें, मन की आर्तता उसे बतायें, दक्षिणा दें या न दें, पर मन की पीड़ा ईश्वर के सामने अवश्य ही रखिए……।”

“हम देवता पर क्रोध नहीं कर रहे हैं, बाबा ! हम तो उसी के पूत हैं, उसी पर क्रोध करेंगे, तब फिर कहाँ और किसके आश्रय में जायेंगे ? कल आप हमारे लिये श्री का अभिषेक करें, अब तो ठीक हुआ ?”

“और……और…… !”

“और क्या ?”

“दक्षिणा के लोभ से नहीं कहता, किन्तु मुझे मेरी विद्या का यह आह्वान है।”

“बोलिए।”

“एक बार आपके हाथ के चिह्न देखने की इच्छा है।”

□

महंत का कुछ लाल-लाल और मृदु हाथ देखकर छोड़ते हुए, आँखों को अपने पहने वस्त्र के छोर से पोंछते हुए ब्राह्मण ने कहा—

“न्यूनाधिक बहुत कुछ कहा जा सकता है, पर मुझ वृद्ध का एकमात्र अनुरोध है—आप अस्वीकार मत कीजिए।”

महंत ने कहा—

“बता भी दीजिए।”

“सूर्योदय के पूर्व अभिषेक के समय आपके लिये ईश्वर से केवल आरोग्यवृद्धि की कामना की थी। आप एक बार मेरे साथ देवालय चलिए।”

“किसलिये ?”

“आपके लिये उस ईश्वर के आगे कुछ और निवेदन करना है—इतनी हाथ जोड़कर……।”

उस वृद्ध ब्राह्मण के दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर महंत ने कहा—

“हमारी भी आपसे हाथ जोड़कर एक विनती है।”

“क्या ?”

“बार-बार हमारे सामने हाथ जोड़कर हमें और छोटा न करें।”

हँसकर ब्राह्मण ने कहा—

“ठीक है।”

“एक और।”

“बोलिए।”

“जो भी कुछ करना है, शान्तचित्त से और विना आडम्बर के करें।”

फिर से मन्दिर की ओर जाते समय महंत को जो दृश्य दिखा वह कल के सन्ध्या के समय से अत्यन्त भिन्न था, अधिक मनोहारी था। प्रभात की वायु की शीतलता अभी चारों ओर छायी थी। नीचे के पानी को छू-छूकर वायु तरंग के तरंग ऊपर उठाकर पर्वत को स्पर्श करते देवालय की वस्ती से भाड़ी में विलीन हो रही थी।

सूर्यमण्डल अब भी पीछे की पर्वत-श्रेणी से उदित नहीं हुआ था, पर उसकी ऊर्ध्वमुखी किरणें आकाश में विखरी थीं। उसकी परावर्तित आभा से ही नीचे का पानी का प्रवाह दमक रहा था। दो ओर के नारियलों की राइयों में से टेढ़ी-तिरछी पसरी खाड़ी के प्रवाह में पाल फड़फड़ाते हुए दो-चार जलपोत खुले सागर में से चिपलूण की ओर जा रहे थे। हवाएँ वेगवती न होने के कारण पाल पूरे फूले नहीं थे, फिर भी उन जलपोतों की गति ऐसी मोहक दिख रही थी कि दृष्टि उन पर टिकी ही रह जाती थी। जलपोत खाड़ी में भीतर घुस रहे थे, पीछे खाड़ी का दरिया तक पसरा पानी दिख रहा था। खाड़ी में दूर तक फैली पानी के प्रवाह की रजत सी रेखा दूर तक पर्वतों के बीच में से जाते हुए आगे उन्हीं में ओझल हो गयी थी। आगे का सारा परिसर प्रातःकाल के धुँधलके में डूब गया था।

यह दृश्य महंत के लिये सर्वथा नवीन था। उन्होंने घाटों में से वहती नदियाँ देखी थीं, पावसकाल में उनके उफनते गर्जन-तर्जन करते प्रवाह देखे थे, पर वही नदी घाट उत्तरने के पश्चात् अपने प्रिय से मिलने के लिये जाते हुए उसका क्या होता है, उसे महंत ने कभी देखा ही नहीं था। इसी कारण प्रातःकाल के दरिया के उस दृश्य को देखने के लिये उनके पैर

देवालय की ओर बढ़ते हुए वार-बार रुक रहे थे।

वृद्ध ब्राह्मण के साथ महंत और मोरगिरि देवालय के विशाल बाड़े की सीढ़ियाँ उत्तरकर देवालय में गये। उस समय वहाँ एकदम एकांत था। प्रभातपूजा समाप्त हो चुकने के कारण प्रभात की पारी का ब्राह्मण घर पला गया था। ये तीनों ही देवालय के गर्भगृह में जाकर खड़े हो गये। सिंहासन पर तीन मूर्तियाँ खड़ी थीं, काल और काम के बीच में परशुराम खड़े थे। उन मूर्तियों के आगे दीपक का शान्त और प्रसन्न प्रकाश आलोकित हो रहा था। अभिषेक के समय लगायी धूप-वत्तियों की सुगन्ध महक रही थी। मूर्तियों को लगाये गये चन्दन की, फूलों की और कपूर की सम्मिश्र गन्ध गर्भगृह को भरकर चारों ओर फैल रही थी। भगवान् परशुराम की पापाण की मूर्ति के सामने ये तीनों ही हाथ जोड़कर खड़े थे। ब्राह्मण ने देवमूर्तियों के चरणों में चढ़ाये दो फूल अपने हाथ में उठाये और अपने काँपते गम्भीर स्वर में कहना प्रारम्भ किया—

“भगवन् परशुराम ! आपको सभी कुछ ज्ञात है। मैं आप से भी कुछ कहूँ, बताऊँ, ऐसा है नहीं। … उन्मत्त हुए सारे अत्याचारी देत्य-कुल आपने अपने परशु से समाप्त किये, तभी उस परशु को आपने नीचे रखा था और इसी वासिष्ठी नदी के पानी में उसका फल धोया था।

“आप चिरंजीव हैं, आज भी चारों दिशाओं की तीर्थयात्रा करते हैं, देत्यकुल फिर से उन्मत्त हो गये हैं और दीन-दरिद्रों का जीना असम्भव कर दिया है, यह सब मैं पामर आपको क्या बताऊँ ?

“फिर भी एक याचना है। इस पुरुष के हस्ततल पर रेखित रेखाएँ मैंने देखी हैं, आपने अपना परशु धोया था, तब आपके हस्ततल के जिन लक्षणों के ऋषियों को दर्शन हुए थे, उनका उन्होंने वर्णन कर रखा है, ठीक वैसे ही लक्षण इस महंत के हाथ पर मुझे दिख रहे हैं।”

क्षणभर रुककर उस वृद्ध ने अपना स्वर संयत और स्वच्छ किया, फिर कहा—

“देवाधिदेव ! महंत का यह रूप सत्य होगा, कदाचित् दिखावा भी होगा, अपने मन की बात यही जाने, मैं व्यर्थ पूछताछ करूँगा नहीं, पर यदि आपने अपनी हस्ततल की रेखाएँ इस पुरुष के हाथ पर अंकित की हैं, तो

आप अपने समारोपित कर रखे हुए सारे अस्त्र-शस्त्रों को भी एक बार फिर से आह्वान कर इसके हाथों में सौंप दीजिए। अपना अनादिकाल से चलता आया दैत्य-निर्दलन का कार्य अब इसके हाथों निष्ठापूर्वक होने वें और आपने अपने परशु को जैसे शत्रु-रुधिर से स्नान करवाया, ठीक उसी प्रकार इसके भी शस्त्र शत्रु-रुधिर से नहाकर सार्थक हों। इससे अधिक आपसे कुछ याचना नहीं है।”

इतना बोलकर ब्राह्मण कुछ क्षण आवेश के कारण काँपता खड़ा रहा, फिर पीछे मुड़कर उसने हाथ के फूल महंत के हाथों में दे दिये। महंत ने उस प्रसाद को अत्यन्त आदर से ग्रहण किया और मूर्तियों के सामने दण्ड-वत् कर वृद्ध के चरणों में माथा टेक दिया। वृद्ध ब्राह्मण ने अन्तरतम से आशीष दिया—

“चिरविजयी भव।”

मोरगिरि को संकेत कर महंत गर्भगृह से बाहर निकल गये। मोरगिरि ने ब्राह्मण से कहा—

“आपको भूयसी देनी है।”

इतना कहकर मोरगिरि ने उस ब्राह्मण के हाथों में ग्यारह स्वर्ण-मुद्राएं रखीं। आश्चर्य-सागर में डूबते उस ब्राह्मण को वहीं छोड़कर मोरगिरि भी महंत के पीछे-पीछे चले गये।



जोश-खरोश की गरम वातें और झगड़ा साधारण सा ही हुआ था, पर उतने से ही खाड़ी के आसपास का वातावरण हड्डबड़ा गया था।

गुसाईयों का यह जट्ठा हरिहरेश्वर की ओर निकला था। श्रीवर्धन से बाहर निकलकर ये सभी खाड़ी के समीप पहुँचे, तभी चौकीदार का एक प्यादा ललकारता आगे बढ़ा और गालियाँ बकता कहने लगा—

“बेहूदो ! इत्मीनान से घोड़ों पर बैठकर गुजर रहे हो चौकी के सामने से ? जराभर अक्ल नहीं है ? नीचे उतरो। सदरे आला चौकीदार से माफी माँगो……।”

गुसाईं सुन ही नहीं रहे हैं, यह देखकर वह धींगामस्ती पर उतर आया। अन्त में उसने आगे खड़े मोरगिरि पर और हीरगिरि पर अपनी तेग

भी उठायी, तब महंत की ओर देख हर घोड़े से नीचे उत्तरते हुए मोरगिरि ने कहा—

“अच्छा, चलो। मैं स्वयं चलता हूँ चौकीदार के पास।”

“चौकीदार कहता है, कमीने ! सदरेआला कहने से क्या तेरी जवान में कीड़े पड़ जायेगे ?”

मोरगिरि ने अपना क्रोध दबाकर उस प्यादे को बाजू से पकड़कर चौकीदार के छपर के सामने ले जाकर खड़ा कर दिया। वहाँ हुक्के की दस-पन्द्रह हाथ लम्बी नली का छोर मुँह में देकर चौकीदार अपनी खाट पर लेटा पड़ा था। मोरगिरि ने कहा—

“आदावर्ज चौकीदार साहब !”

मुँह की नली एक ओर किये बिना मोरगिरि को अनदेखा कर चौकीदार ने रुखे स्वर में पूछा—

“क्या बात है ?”

“बात हमने पैदा नहीं की, आपका यह प्यादा……।”

“क्या कहता है ?”

आगे बढ़कर उस प्यादे ने मोरगिरि की कफनी गले के पास पकड़कर कहा—

“जुवान खींच लूँगा……तू समझता क्या है, काफिर ? ये सब कुफ मुला दूँगा……।”

किसी मवखी को उड़ाते हैं, वैसे एक ही हाथ से प्यादे को रोककर चौकीदार बोला—

“कहाँ के हो ? कहाँ जा रहे हो ?”

“महन्त महाराज हैं, शिखर शिगणापुर के। जा रहे हैं हरेश्वर के दर्शन करने……।”

“चाहे जो हो और चाहे जहाँ जाओ, जहन्तुम में भी, लेकिन ये सब क्या पहन रखा है ? ये गेहूँ कपड़े……।”

“जी, हम लोगों में यही रिवाज है।”

“क्या, गुसाईं साधु हो ?”

“जी।”

“बीबी-बच्चे कहाँ हैं ? लड़के कहीं न कहीं तो होंगे ही ? खैर, ब्याह शुदा न हों तो इधर-उधर के……”

मोरगिरि ने अपने आवेश को जैसे-तैसे रोककर कहा—

“देखिए चौकीदार साहब ! आपका काम है परवाना देखना ।”

इतना सुनते ही चौकीदार ने हुक्के की नली मुँह से निकाली, उठकर बैठते हुए उसने कहा—

“मुँहजोर ! काफिर !! मबकार !!! तू हमको पढ़ाने आया है ? अब कौन है वहाँ ? इन सबको कैद करो……”

“लेकिन चौकीदार साहब परवाना ।”

“परवाना गया भाड़ में ।”

अब उस पिछी प्यादे को भी जोश आ गया। दूसरा प्यादा दिशा-मैदान गया था, वह भी लौट आया। वे दोनों इन घुड़सवार गुसाईयों के पास जाकर घोड़ों की लगामों को खींचने-खींचने लगे। घोड़ों ने उनको झटके दिये और पिछले खुरों पर खड़े होकर हिनहिनाने लगे। उनके खुरों से चारों ओर धूल उड़ने लगी। ऐसा एक हल्ला हो उठा। घोड़े पर बैठे-बैठे ही एक तरफ गुसाई ने महंत को पूछा—

“क्या करना है महाराज ? आज्ञा हो तो……”

उसे आँखों से ही मना करते हुए महंत ने खाड़ी की ओर संकेत किया। उसने उस ओर देखा तो तरी में से उतरकर एक ओहदेदार पालकी में बैठकर इधर ही आ रहा था। आगे-पीछे चार-छः प्यादे दौड़ रहे थे। श्रीवर्धन का नायब तहसीलदार था, सलावतखान।

कुछ ही समय में वह पालकी चौकी के पास आयी। उसने बाहर झाँककर पूछा—

“अमा, क्या माजरा है ?”

पालकी देखते ही चौकीदार चौकी में से बाहर निकला। जूती ढूँढ़ने लगा तो उसे एक ही जूती मिली। उसी में पैर डालकर फटक-फटक करता वह पालकी के पास जाकर आदावअर्ज करते हुए बोला—

“जी, अर्ज ये है कि गुनहगार हाजिर है। ये सब काफिरों के मुश्वर्द हैं। पूछा कहाँ के हो, क्या हो, तो गालियाँ बकने लगे। कैद करने का

हुक्म दे रखा है। अब आगे जो हुजूर फर्मायेगे।”

मोरगिर तत्परता से पालकी के पास पहुँचे। हाथ में ली हुई परवाने की थंडी खोलते हुए उन्होंने आदावअर्ज किया और कहा—

“साहब के लिये दुआ माँगता हूँ भगवान से। जो हुआ उसे बाद में पूछा जाये, पहले आप इस परवाने पर जरा नजर गुजार दीजिए।”

नायब तहसीलदार खानदानी था, जवान था। सुरमा लगी अपनी आँखें फर्मान के ऊपर से धुमाते हुए उसने कहा—

“अच्छा, आप शिखर शिगनापुर के महंतसाव हैं। तीरथ करने जा रहे हैं?”

मोरगिर ने नम्रता से कहा—

“जी, मैं नहीं आप...”

महंत अपना घोड़ा पालकी के पास ले आये और नीचे उत्तरकर आदाव करने भुक्ने लगे। तब तक शीघ्रता में पालकी से उत्तरकर, उनका हाथ पकड़कर दवाते हुए और उनके उस सुन्दर रूप को देखते हुए नायब तहसीलदार ने कहा—

“नहीं, नहीं। यह आप क्या कर रहे हैं? आप हिन्दुओं के मुर्शद हैं। सलाम हमने आपको फर्माना लाजमी है। खैर, जा कहाँ रहे हैं?”

“जी, हरिहरेश्वर के दर्शन करने।”

“जरूर जाइए। वहाँ दरिया है, एकदम खुला दरिया। पहले तो देखा होगा?”

“जी नहीं।”

“तब आपको वह ठिकाना बहुत भायेगा। क्या खूबसूरत नजारा है! अच्छा तो शोर-हल्ला क्यों मचा था?”

“जी, कुछ नहीं। वह सब आप भूल जाइए।”

“इन प्यादों ने और चौकीदार ने कुछ बेअदबी की आपसे?”

“अर्ज कर रहा हूँ कि आप भूल जाइए।”

नायब तहसीलदार ने कुछ डपटकर चौकीदार से कहा—

“ए! क्या नाम है तुम्हारा?”

“जी, नाचीज को सुभानल्ला कहते हैं।”

“खुद जाकर देखो कि महंत महाराज इत्यीनान से खाड़ी पार होते हैं—खलासियों से हमारा हुक्म जाहिर करो कि आपको कोई तकलीफ न हो।”

फिर महंत की ओर मुड़कर नायब ने कहा—

“महंत साहब वापस कब लौटेंगे? अगर एकाध रात इस गरीब के गरीबखाने में विता सकें तो दो-चार बातें होंगी फलसके पर। गरीब भी थोड़ा शोक रखता है।”

महंत ने स्मित करते हुए कहा—

“एतवार कीजिए, आगे किसी न किसी दिन मुलाकात होगी ही।”

—

श्री हरिहरेश्वर के मन्दिर के पीछे समुद्र-तीर पर महंत खड़े थे। ज्वार का समय हो चुका था। सागर के पानी का वेग अब कुछ स्थिर हो गया था। अब पानी जहाँ का तहाँ स्थिर हो गया था। तट पर असंख्य प्रस्तर पड़े थे। उन पर धोंधों ने अपने घर बना रखे थे। उनसे भरे उन प्रस्तर-खण्डों पर समुद्र की लहरें आ-आकर फूट रही थीं। तब वहाँ असंख्य बुलबुले उठते। पानी फिर से पीछे लौटता। तब उन शिलाओं के गड्ढों की रेत धीरे-धीरे नीचे बैठती। उसके पीछे ही दूसरी लहर आकर उन शिलाओं पर टूटती, पानी के असंख्य तुपार उड़ते।

उन उड़ते तुपारों से महंत का शरीर भीग रहा था, पर उनको इस सब का भान नहीं था। उस असीम फैले सागर के दर्शन में ही उनका मन खो गया था। उनके पीछे भूमि थी, चिरपरिचित भूमि, सदा विश्वास से आश्रय देने वाली, गोद में लेकर शान्त नींद सुलाने वाली, उस पर किये विश्वास का निर्वाह करने वाली। और सामने पसरा था अज्ञात सागर। उसका पानी कितना, इसकी कोई थाह नहीं; वह कितना गहरा, इसका ज्ञान नहीं। ऊपर दिखता निःपद्वी पानी, नीला सा, हरा सा, उछलता, ऊपर उठकर स्वयं के ही शरीर पर गिरने वाला। पर उसके भीतर क्या-क्या था? उसमें से मानव को कितना ज्ञात था? मत्स्य कितने? जलसर्प कितने? कच्छप कितने? कितने बड़े उनके आकार-प्रकार? कितनी बड़ी-बड़ी उन मत्स्यों की वे दाढ़े! कितने विकराल वे दाँत! मनुष्य को

सहज ही लील ले, इतनी धुधा। कैसी उनकी पाचन-शक्ति, और ऐसे असंख्य प्राणियों की जन्मभूमि, भोगभूमि और श्मशान-भूमि यह सागर ही। कैसे-कैसे अद्भुत रहस्य और कितने असंख्य जलपोत इसमें समाये हैं। उन पर क्या-क्या लदा था? वह सब किसके लिये था? पर वह सब जिसका था, उसे मिले बिना ही सागर ने लील लिया और ली थी एक डकार। जैसे आतापी और वातापी को खाकर अगस्त्य ने ली थी, उसी प्रकार। सारा का सारा पच गया, ऊपर किसी प्रकार का कोई चिह्न नहीं।

कितने राजपाट इसने देखे होंगे! अनेकों विदेशियों के कितने ही जल-पोत इसने अपनी छाती पर बहन किये होंगे। इसके आँगन में कितने युद्ध हुए होंगे। कितने-कितने वीर योद्धा और वीराग्रणी उछलकर सागर जल में गिरे होंगे, मत्स्यों के भक्ष्य बने होंगे। कितने ही जलपोत जलते वाणों से जले होंगे। अग्नि-मन्दिर बने वे जलपोत धूमते उत्तराते अन्त में कहीं डूब गये होंगे।

अचानक महंत के मन में आया, यह सागर पुरुष नहीं है, यह दरिया-भवानी है, क्रोध से अपनी आँखें फैलाकर अहिमहियों को लीलने वाली; और यदि यह पुरुष ही होगा तो फिर प्रलयकर शंकर ही।

यह कितना-कितना गम्भीर और कितना असीम-असीम!

महंत का मन भर आया, मन पर संयम कर उन्होंने आँखों में भरता पानी रोक लिया।

इतना होते हुए भी मानव अत्यन्त नम्र होकर सागर के पानी में अपने पर्तिगे ढूबाता ही है। तब यही असीम सागर उसे अपनी छाती पर धारण करता है। कैसे तो निर्भय माँझी कि उनको धरती की अपेक्षा सागर ही अधिक सुरक्षित लगता है। भूमि पर उन्हें भय लगता है, पर सागर की गोद में निश्चन्त होकर वे सुख की नींद सो जाते हैं। वही उनका सखा, सहोदर, वही उनका अनन्दाता। सागर में से ही निकालकर, उसे खाकर, मास-मास वे निश्चन्तता से उस पर यात्रा करते रहते हैं।

ऐसे इस असीम से परिचय आज तक नहीं किया, इसका महंत को खेद हो रहा था, पर उस असीम का परिचय यहाँ और इस रूप में श्रीहरेश्वर

के साक्ष्य से हुआ, इसलिये भी उनको बहुत-बहुत आनन्द और समाधान हो रहा था।

महंत ने सागर का तीन अंजुरी भरकर पानी लिया और वह उसका उसी में छोड़कर कहा—

“दरिया रे ! मन में उठे तेरे लिये प्रेम का यह प्रथम अर्ध्य !”

—

सभी लोग रात में सारा देखभाल कर, ढककर सोने की तैयारी में थे, तभी बगीचे के पीछे से, नारियल के पेड़ों की आड़ से मशालों का प्रकाश दिखा। आबई झट से उठ बैठी, कुछ डरकर उसने आवाज दी—

“कौन है रे बाबल ?”

बाबल भट्ट ने बैसाखी उठायी और उस पर झूलकर वह आँगन में जाते हुए बोलने लगा—

“क्या जाने, पर लगता है वे सब इधर ही आ रहे हैं।”

उसके पास खड़ी आबई ने कहा—

“मरे ये ! यह तो घोड़ों की टप-टप है।”

आहट लेते हुए बाबल भट्ट बोला—

“हाँ जी !”

आवेश से पीछे मुड़कर आबई ने तीखी आवाज में कहा—

“तू पीछे बगीचे में जा, बाबल ! जा, सीधे पहाड़ी में गया तो भी चलेगा, वहाँ तुझे छिपने के लिये हजार स्थान हैं। अरे, निकल ! जाता है कि नहीं ?”

“अरी, पर……”

“वह सब बाद में देखेंगे। वे सब जलमुंहे फिर से आये हैं। उनके मुँह में खता पड़े। और, इस बार वह सोना बाग में गड़ा है। एक पैर मरों ने तोड़ दिया है, अब दूसरा भी तोड़ेंगे। तू जा, मैं देखती हूँ, क्या है।”

“पर, तू अकेली !”

“अरे, मेरा परमेश्वर है और ऐसी कोई बात आ ही पड़ी तो मुझे भी मरना आता है। मैं रंडकी-मुँडकी हूँ, मुझे कोई हाथ लगाने लगा तो उसकी गर्दन पहले दबा दूँगी और बाद में वहाँ प्राण दे दूँगी। तू भाग, चल !”

बाबल, कौन है, यह जानना चाहता था, पर आवर्ड ने उसे पीछे लौटा दिया। अब तक मशालों का प्रकाश घर के समीप तक आ पहुँचा था। मार्ग नहर के किनारे-किनारे या, उस पर से आते घोड़े स्पष्ट दिखने लगे।

बाबल भट्ट बगीचे के पीछे गया देखकर, आवर्ड ने आगे बढ़ते हुए पुकार की—

“कौन है ? अरे, कौन चाहिए ?”

आगे-आगे आने वाले घुड़सवार ने उत्तर दिया—

“बाबल भट्ट जी का घर।”

“वो घर में नहीं हैं, लौट जाओ।”

घोड़ा आगे करते हुए सवार ने कहा—

“माई ! बहुत दूर से उनका नाम सुनकर आये हैं।”

“अरे, पर वे घर पर हैं ही नहीं, बता रही हूँ, पर सुनते नहीं। सुनाई नहीं देता क्या ?”

“माई, तुम्हारा कल्याण होगा। आठ-दस मूर्तियाँ हैं, प्रातः से चले हैं, बहुत भूखे हैं।”

“अब क्या करूँ ? बताती हूँ तो सुनाई नहीं देता ? कान फूट गये हैं क्या ? बाबल घर पर नहीं है। उधर गाँव में जाओ। उधर कोई याली की व्यवस्था कर देगा तुम्हारी। यहाँ पानी भी नहीं मिलेगा, बताये देती हूँ।”

उसका मना करना अनसुनाकर सारे ही घुड़सवार आँगन में आकर खड़े हो गये और झट-झट घोड़े से कूदकर उतर गये। उनमें से एक ने आगे बढ़कर कहा—

“माई ! साधुओं की सेवा करोगी तो तुम्हारा घर धन-सम्पत्ति से भरपूर हो जायेगा। तुम्हारे बाल-बच्चों…।”

दोनों हाथ कमर पर रखकर आवर्ड ने अब आवाज तीखी कर कहा—

“अरे, घर में घुसने वालो ! जलें मुँह तुम्हारे। कैसे मरे निसंग, जाओ कहने पर भी हाथ-पैर फैलाकर यहाँ पसरने की तैयारी कर रहे हैं।”

आवई नहर के बांध पर गयी और निकट की वस्ती में रहने वाले मछुओं को पुकारने लगी—

“आबू ! आबू ! दीड़ो तो, मारो तो । ये देखो तो कौन कहाँ के गुसाई रात-वेरात घर में घुस रहे हैं । मुर्दे पड़े इनके ।”

तब तक महंत ने धीमी आवाज में वहिर्गिरि को कहा—

“वहिर्गिरि ! वावल भट्ट हो तो देखो, नहीं तो वापस लौट चलें ।”

आवई ने एक बार फिर से चिल्लाकर कहा—

“अरे सौ बार वताया, फिर भी तुम्हारे कानों में नहीं घुस रहा है, कान हैं या केवल छेद हैं । अरे, वह घर में नहीं है ।”

अब वहिर्गिरि आगे बढ़ा और उसने तीखी ऊँची आवाज में पुकारा—

“वावल भट्ट ! ओ शास्त्री जी !”

वावल भट्ट नारियल के पेड़ के पीछे छिपा अवश्य था, पर उसका ध्यान आँगन में क्या हो रहा है, उधर ही लगा था । वहिर्गिरि की पुकार सुनकर वह कुछ भयभीत हुआ । उसने एक बार फिर से आहट ली, तब तक उसके कान पर एक पुकार और आ गिरी—

“ओ जी, वावल भट्ट जी महाराज !”

यह सुनते ही वावल भट्ट के मन में कुछ परिचय जगा और वह आनन्द से रोमांचित हो उठा । तुरत-फुरत बैसाखी जहाँ-जहाँ टेकता वावल इस ओर भागा, एक बार तो पेड़ के थाल में गिरते-गिरते बचा । तब वहीं से चिल्लाया—

“आया, आया जी !”

वावल की आवाज सुनकर आवई चौंक गयी । वह समझ ही नहीं पायी कि क्या गड़वड़ है । वहिर्गिरि ने तनिक बनकर कहा—

“अरे आ भी जाओ तुरत, नहीं तो इस वहिनावाई के हाथ का झाड़ू मेरी पीठ पर आ गिरेगा ।”

वावल भट्ट ने आगे के आँगन में आते हुए आवई को कहा—

“अरी, आवई ! तू ऐसी कैसी है, इनको इतना भूल गयी ? अरे, वे नाईक हैं नन्दी बैल वाले ।”

मुँह पर दोनों हाथ रखकर आश्चर्य से आवई ने कहा—

“ओ, मेरी माँ री ! और उस समय की वे गलमूँछें कहाँ हैं ? उस समय वह स्वांग बनाया था, और इस बार वह गेहूआ बाना !”

अब तक वावल भट्ट सामने आ गया था। नाईक को बाँह में पकड़कर उसने अत्यन्त आनन्द से कहा—

“वया, तुम नाईक ! स्वांग तो तुमने एकदम सही किया है। और भी बहुत से लोग दिख रहे हैं, कौन-कौन हैं ? ये तो रहे बाजीराव देशमुख, बाकी ये सारे कौन-कौन अपरिचित ?”

नाईक ने अत्यधिक आदर से कहा—

“अजी, वावल भट्ट जी ! स्वयं महाराज !”

आश्चर्य की पराक्रांति पर पहुँचा वावल भट्ट चकित होकर सभी के मुँह की ओर फैली आँखों से देख रहा था और परिचय जगते ही अत्यानन्द से पुलकित हो उठा। आगे बढ़कर बन्दन करने लगा तो झट से झुककर राजा ने उसे बाजुओं में पकड़कर कहा—

“यह क्या वावल भट्ट ? हम तो केवल भीख माँगने वाले हैं। एक रात ठहरने की और थाली की कुछ वात बनती है क्या ? यही पूछने आये...”

एक शब्द भी न बोलते हुए वावल भट्ट ने कमर में पहने पंचे से आँखें पोंछते हुए पीछे मुड़कर भरे-भरे स्वर से कहा—

“आवई ! इधर आ। आ भी। अरी संकोच करने का कुछ कारण नहीं। नाक रगड़ इनके सामने। अरी, ये स्वयं...”

महंत ने वावल का वाक्य बीच में ही तोड़कर कहा—

“शिखर शिगणापुर मठ के हम महंत हैं। रामेश्वर से आये हैं, अब काशी जा रहे हैं।”

अब तक त्रिलोचनी सी कड़कती आवई, मन में जो भी आता था उसे जीभ से उनपर फैकती रही। पर वावल भट्ट के आगे आने के बाद से आँगन में ही खड़ी-खड़ी, आश्चर्य से फटी-फटी आँखों से सब देख रही थी।

वावल भट्ट की आवाज सुनकर वह भागकर भीतर गयी और मन की भावनाओं का आवेग रोककर वह जैसे-तैसे बड़े से लकड़ी के पलंग पर जा

गिरी और उसने मुँह से बाहर निकलती सिसकी दवा ली ।

बाबल भट्ट आश्चर्य करता उसे पुकारता ही रहा—“अरी, भाग क्यों रही है ? मैं यहाँ आ कह रहा हूँ न, आ तो ।”

कुछ ही क्षणों में आवई उठी, वह बगीचे में गयी, लौटी, तब बाबल के केवल लंगोटी पहने छोटे लड़के को उठाया और नारियल के नीचे गाढ़-कर रखी हुई सोने की मुद्राओं की कण्ठी उसके हाथ में देकर, उसे पकड़कर वह चतुर स्त्री महंत के निकट गयी और बोली—

“छोटे, उनके पैरों में माथा टेक । … अरे, वह रख दे उनके चरणों में । क्या है पूछा, तो बता दे कि यह भीख है, इसे स्वीकार कर लो और रात-दिन छाती पर पढ़े इस पत्थर के भार से दबते हमको मुक्त करो ।”

घबराये उस छोटे से बालक ने बताया तो कुछ नहीं, पर सोने की मुद्राओं से बनी कण्ठी महंत के पैरों के समीप रखकर उसने नमस्कार किया । महंत ने उसे अपने निकट खींचकर उसके सिर पर हाथ फेरकर कहा—

“अरे, अपनी बुआ को कहो, इतने से नहीं होगा । फटे कान के और घर में घुसने वाले ये सभी गुसाई थाली किये बिना यहाँ से टरेंगे नहीं ।”

आवई ने कहा—

“छोटे ! महंत जी से कहो रात-बेरात किसी जंगल में बसे घर में एकाएक काफिला लेकर घुसने पर इस देश में अतिथि की ऐसी ही पूजा होती है, और थाली की कहो तो विदुर के घर की कनी खाये बिना यहाँ से जाने की बात भी की तो बुआ के प्राणों की सौगन्ध है ।”

इतना जैसे-तैसे बोलकर आवई घर में चली गयी ।

□

शोर सुनकर मछुओं की वस्ती के कुछ लोग बाबल के आँगन में आ गये थे । आवई ने उनमें से एक-दो को भीतर बुलाया और उनके हाथों भीतर से लकड़ी की चौकी आँगन में बिछवा दी । उस पर घर का सबसे अच्छा सा आस्तरण लाकर बिछाया । महंत मना करते रहे, तब आवई ने कहा—

“छोटे, महंत जी को कहो, जो कुछ घर में था, कच्चा, जला, जैसा-

अन्न बना था उसी को आपने भीठा मानकर स्वीकार किया है। अब शान्त-चित्त से इस विछावन पर सो जाओ, और इसे भी मना करते हो तो बता दो कि हमारे घर में आपको सोने को भी स्थान नहीं मिलेगा, जहाँ चाहो जा पड़ो।”

महंत ने हँसकर कहा—

“बावल शास्त्री ! रात में जैसे कोई धावा बोल दे, उसी प्रकार हम आपके आँगन में आ गये। उसके कारण निर्मित हुआ क्रोध अभी भी कम हुआ, ऐसा दिखता नहीं।”

आवर्डि ने कहा—

“छोटे, बता दे उन्हें कि कोंकण की मिरची कुछ अधिक ही तीखी होती है।”

अत्यन्त तृप्ति से उस चौकी पर पालथी मारकर बैठते हुए महंत ने कहा—

“छोटे, वहिनजी से यह कह दो कि हमें कई-कई रातें घोड़ों पर बैठकर या कभी जंगल में एकाध पत्थर सिरहाने लेकर वितानी पड़ती हैं और आज जब वहिन ने अपने हाथों ऐसा उत्तम विछोना दिया है तो उसे एक ओर करे, इतना दुर्दृश्य यह महंत नहीं है।...अच्छा, बाजगिरि ! सब कुछ ठीक है ?”

“जी। चारों ओर एक चक्कर लगा आया, गाँव के मार्ग पर एक को रख छोड़ा है, आप सुख से बोलिए।”

अब महंत ने आवर्डि की ओर मुड़कर कहा—

“अब बातचीत में बीच में छोटे को लेने की आवश्यकता नहीं है आवर्डि वहिन ! एक तो वह अब सो गया है, दूसरे, तुम और हम एक ही माँ की सन्तान हैं, इसलिये छोटे भाई के साथ बोलते हुए इतनी मर्यादा का पालन नहीं किया तो भी चल सकता है। मैं एक बात पूछता हूँ—हम तुम्हारे भाई को अपने साथ ले जाने के लिये आये हैं।”

चौंककर आवर्डि ने कहा—

“उसने तो सप्तशती का अनुष्ठान प्रारम्भ किया है।”

बावल भट्ट ने कहा—

“तू जानती नहीं, आवई, आपको यश मिले इसीलिये यह अनुष्ठान है। स्वयं वे ही…।”

“अरे, पर अनुष्ठान सप्तशती का है।”

क्षणभर सोचकर बाबल भट्ट ने अपनी छाती पर हाथ रखकर कहा—

“आवई ! व्रत और अनुष्ठान के नियम और मर्यादाएँ उनके लिये हैं जो सभी और से निर्वल होते हैं। स्वयं माँ भगवती जिनके खड़ग की धार पर निवास करती हैं, वे सभी नियमों से मुक्त होते हैं और उनके लिये भी यदि मेरा कुछ उपयोग है तो आज तक हुए अनुष्ठान से माँ भगवती प्रसन्न हैं, ऐसा ही कहना चाहिए। क्या समझी ?”

आवई ने कहा—

“अपना तुम ही देखो। तू और तेरे…।”

महंत ने तुरन्त बाबल पूरा किया—

“…महंत ! अर्थात्, आवई का कहना ऐसा है कि कुत्ता जाने और चमड़ा जाने !”

बाबल भट्ट आनन्द से बोलने लगा—

“तू किचित् भी चिन्ता मत कर आवई ! और महंत जी अपने लिये हीन शब्द का प्रयोग करें, इसकी भी आवश्यकता नहीं।”

महंत ने इस चर्चा को वहीं समाप्त करते हुए कहा—

“बाबल शास्त्री ! एक बात बताइए, यह जो मुर्वण आपके पास है…?”

“या,—न्यास के रूप में, अब वह सारा आपको सौंप दिया।”

“उसको स्वीकार भी किया है, परन्तु हमें उसका हेतु भी तो विदित हो !”

बाबल भट्ट ने आवई को और अपने पुत्र को भीतर भेजा, रेशम की लंगोटी पहनकर छोटे ने ताम्रपत्र निकालकर आवई के हाथ में दिया, उसने भी उसे अपने आँचल से साफ कर बाबल भट्ट के आगे बढ़ाया। दीपक हाथ में लेकर आँखें सिकोड़ते हुए बाबल भट्ट ने ताम्रपत्र पर लिखा लेख पढ़ते हुए कहा—

“क्या हुआ, है……। एतत्प्रमुखे छा………तथा सत्तांशी से सत्
सुवर्णः……।”

“प्रारम्भ से ही क्यों नहीं पढ़ते ?”

बावल भट्ट ने शक संवत् पढ़ा, तब महंत ने कहा—

“याने कितने वर्ष हुए ?”

गणना करते हुए बावल भट्ट ने कहा—

“कुल पाँच सौ सत्तानवे वर्ष हो गये, क्योंकि, ऐसे देखिए कि आजकल
शक है, पन्द्रह सौ उनासी ।”

मोरगिर ने गर्दन हिलाकर कहा—

“गणना एकदम सही है ।”

“उस युग में किसका शासन था ?”

मोरगिर ने उत्तर दिया—

“वहिर्जी नागांव का शिलालेख पढ़कर लाये हैं, उसमें ऐसा है कि शक
संवत् ६३४ में पश्चिम समुद्राधिपति श्रीकोंकण-चक्रवर्ती केशीदेवराय का
शासन कोंकण प्राप्त में था ।”

महंत ने बीच में ही वहिर्गिर से पूछा—

“नाईक ! लेख पढ़ने वाले उस व्राह्मण को दक्षिणा भेज दी क्या ?”

“जी, महाराज ! लमाणों के मुखिया के हाथों……।”

“ठीक है । बावल शास्त्री आगे पढ़ो ।”

बावल भट्ट पढ़ने लगा—

“सोवू पडगविद्,” यह नाम सुनते ही हँसकर महंत ने कहा—

“तो इन षडंगविदों में भी एक शिवा था, रहने दें, आगे पढ़िए ।”

दामोदर का नाम आते ही बावल भट्ट ने कहा—

“ये दामोदर जो हमारे पूर्वज थे, यहाँ से आगे के वंशवृक्ष का लेख
हमारे पास है ।”

“अच्छा ! आश्चर्य है । आगे पढ़िए ।”

बावल भट्ट ने आगे पढ़ना प्रारम्भ किया—

“दामोदरः, पासीं ठवियलें । सु० गा: १२७ सुवर्णः योगक्षेमु स्थानहचा ।
दीवेचे रिसियर्पै पौवदेवः पडंगवि तिकै । पडंगवि जीवणं नागरुदभट्ट मधुवै

षडंगवि मधुवय देवल है जागति: । जे सुवर्ण लिहिले ते कोठेअ समेतः ।”

वावल भट्ट रुका, तब दृष्टि केन्द्रित कर इस वाचन को सुन रहे महंत ने कहा—

“समाप्त हो गया ?”

“जी ।”

“मोरगिरि ! इतने छोटे से गाँव में भी षडशास्त्रों के ज्ञाता षडंगविद् पांच थे ।”

“जी, वेदविद्या उन दिनों कोंकण में जीती-जागती थी, महाराज !”

“हमें कोतुक और आश्चर्य लगता है, इस निर्धन देश के ब्रह्मणों का विचार करने पर । अत्यन्त दिरद्रिता, धाम की तपन और वर्षा के आधात, पश्चिम से जलपोतों में भर-भरकर आते आरब और मूर और परदेशी गोरों का प्रवाह; इन सभी के साथ संघर्ष करते हुए ये अपनी विद्या से एकनिष्ठ रहे ।”

कुछ क्षण रुक्कर महंत ने वावल शास्त्री से पूछा—

“वावल शास्त्री ! आपके घर प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ होंगे ।”

“जी, बहुत हैं ।”

“तब उनमें नौकाशास्त्र पर भी कोई ग्रन्थ है ?”

“होगी एकाघ पोथी, क्या नाम उसका नौकाशास्त्र या वास्तुशस्त्र-सार ।”

“सहज मिल सकेगी क्या ?”

“नहीं, ढूँढ़नी पड़ेगी ।”

“उतना काम करिए, उसकी आवश्यकता है । अच्छा यह रहने दें । यह सुवर्ण, इन ब्रह्मवृन्दों का योगक्षेम चलता रहे, इसीलिये रखा था ।”

“जी ।”

“यद्य स्थानहचा, ऐसा है ।”

“जी ।”

महंत कुछ क्षण मौन रहे, पश्चात् एक दीर्घ उसाँस लेकर उन्होंने कहा—

“आबई ! तुमने हमारी भोली में मुट्ठीभर सुवर्ण दिया और उसके

बदले हम पर बहुत बड़ा भार डाल दिया है। हमने भी भार को स्वीकार नहीं किया तो ?”

आवई ने दाँतों तले ओठ दबाते हुए कहा—

“तब इतना सारा अपने में समाकर बैठे इस सागर में हमारे लिये स्थान नहीं होगा ?”

“समझ गये। इतने दूर तक सोचने की आवश्यकता नहीं। यह भार हल्का करते हुए धूमने के लिये ही माँ साहिबा ने आदि-जननी से हमें माँगा है। मात्र इतना ध्यान में लो कि इस कार्य का शुभारम्भ भी हम बावल शास्त्री के हाथों ही करने वाले हैं।”

बावल भट्ट ने मन में उठने वाले आनन्द को सेंभालते हुए कहा—

“इससे बढ़कर भी सुदैव होता है, मैं नहीं जानता।”

महंत ने कहा—

“पर आवई ने तो कुछ भी नहीं कहा।”

आवई ने सेंभलकर कहा—

“मेरे भाई ! इस अनचाहे, अनदेखे सोने के कारण बावल ने एक पैर खोया। ईश्वर के मन में यदि ऐसा ही है कि इस महान कार्य की मुहूर्त-पूजा उसी के हाथों हो, तब मैं कहूँगी कि दामोदर भट्ट ने यह सुवर्ण अपने पास रखा तो वह ठीक ही हुआ। मैं इसकी वहिन हूँ, पर मैं इसे आपको सेंप रही हूँ। उसका जो चाहो, सो करो। मैंने यह अपना भाई आपको दे दिया।”

—

धारापुरी टापू पर वस्ती थी ही नहीं। वहाँ के प्रस्तर-शिल्प को देखने के लिये आसपास के लोग वहाँ कभी-कभी आ जाते थे। आसपास के मछुए अवश्य मछली पकड़ने आते, पर वे सभी उसके तट पर ठहरते थे और काम हो जाने पर लौट जाते। टापू के भीतर चारों ओर भाड़ी कैली थी। उसी में छिपा या वह प्रस्तर-शिल्प। वह सारा भाग प्रायः निजंन ही रहता। सभी और सन्देश समय पर पहुँचे थे। दादाजी रांझेकर और सखो लोहोकर, इन दोनों के सम्बन्ध और नाते रिश्ते इस भाग में थे। इसी निमित्त से वे दोनों सात-आठ दिन का समय निकालकर कल्याण-

भिंवंडी की ओर अपने समधी के घर पहुँचे थे। घाटमाथे पर अपने बागों में नारियलों के पेड़ लगाने तथा नारियल के छाटे पौधे खरीदने के मिस्र उन्होंने कल्याण के सारे वगीचे धूम-फिरकर देख लिये। इसी बहाने से प्रसिद्ध वगीचों के नाम ले-लेकर खाड़ी के इधर-उधर धुसे प्रवाह में नावों में बैठकर धूम आये; सभी बागों का और आसपास का निरीक्षण भी किया।

कल्याण व्यापार का बड़ा केन्द्र था। हाजी मूसा, हाजी याकूब, हाजी सेदुल्ला, ऐसे बड़े-बड़े नामी व्यापारी। इन सभी की दुकानों पर जाकर इधर-उधर की बड़ी-बड़ी बातें कीं। कहने लगे आजकल ये लमाण बहुत चोर हो गये हैं, माल सुरक्षित घाटमाथे तक पहुँचाते नहीं। ऐसा कहकर आगे कहा कि हमने लमाणों के पूरे काफिले को ही नौकरी पर रख लिया है, अब उसी के द्वारा माल की ढुलाई करेंगे। व्यापारियों से इसी बात पर बादे लिये, उनके साहबजादों के साथ जाकर उनके गोदाम देखे। सूचनाएँ भी दीं कि इन गोदामों के दरवाजे और सुदृढ़ चाहिए। पहरेदार बढ़ाना भी आवश्यक है। कब कोई दौड़कर घात करे, भरोसा नहीं, ऐसी चिन्ता भी प्रकट की। अब यहाँ तक आये हैं तो आपके भाग में पर्वत काटकर बनायी गयी महादेव की त्रिमूर्ति बहुत सुन्दर है, पाण्डवों के युग की, ऐसा सुना है, इस बहाने से सभी धारापुरी की ओर निकले।

पूर्व-संकेत के अनुसार मायनाक गलवत और महागिरि लेकर रेवस बन्दरगाह पर तैयार था। यात्रियों को धारापुरी ले जाने का कारण ही पर्याप्त था। ढीली-ढाली आदिलशाही में इससे आगे बढ़कर पूछताछ करने की पद्धति नहीं थी।

महंत और उनका काफिला जैसे ही गलवत और महागिरि में बैठा, पाल बाँधकर वे सारी ही नौकाएँ धारापुरी की ओर रवाना हो गयीं। महंत जिस नौका में बैठे थे, उस नौका को मायनाक चला रहा था। दरिया का तट छोड़ते ही वह बड़े ही अधिकार और दायित्व के भाव से पतवार के समीप धुटने की दाव देकर खड़ा था और सभी को आदेश दे रहा था। “वह पाल का दौर शक्तिपूर्वक खींचो, उसे उधर बीच में बाँध दो, कुछ और खींचो, वह दूसरा भी खींचो, उसे इधर नौका की नाली के

समीप आने दो, पतंगे ऊपर उठा लो...” ऐसा ही उसका मुँह चल रहा था। बड़े ही उत्तरदायित्व की भावना से पूर्ण उसका व्यवहार था। वह जानता था कि एक धरतीमोल का धन वह ले जा रहा है।

महंत के लिये यह अनुभव एकदम अनोखा था। इतने गहरे और असीम फैले पानी में से उन्होंने कभी यात्रा नहीं की थी। कभी-कभी नदियों को छोटी नावों से पार किया था, कभी-कवचित् कोई छोटी खाड़ी पार की थी, पर इस यात्रा का स्वरूप ही कुछ दूसरा था।

नदियों का प्रवाह मन में भय और आशंका उत्पन्न नहीं करता, उनके रूप में आश्वासन होता है, पानी में भी इतनी हलचल नहीं होती, उसका प्रवाह एक ही गति से वहता रहता है। यही स्थिति थोड़ी-बहुत छोटी खाड़ी की भी होती है,—वहाँ पानी की हलचल कुछ अधिक, पर उसकी मर्यादा दिखती है।

किन्तु सागर की लहरें एक ही दिशा में उठेंगी, इसका भरोसा नहीं होता। किनारा छोड़ने के पश्चात् कुछ अन्तर आगे बढ़ने पर सभी को अनुभव होने लगा कि कितना असीम है सागर और हम कितने क्षुद्र; मन में आने पर यह सागर लहर के एक ही झटके में नौका उलटा देगा।

प्रथम कुछ क्षण महंत को थोड़ी विचित्रता सी लगी। क्षण में जल-पोत आकाश में उठता सा लगता तो दूसरे ही क्षण वह पाताल में धंसता सा प्रतीत होता। सारा आसमन्त मथा जा रहा है और हमें कहीं फौंका जा रहा है, ऐसा आभास सा उन्हें होने लगा। महंत के लिये पतवार के समीप ही गाढ़ा बिछाया था। उस पर वे परनाले के पटल से टिक्कर बैठे थे। पहले कुछ क्षण बीत गये, जलपोत का डोलना और ऊपर-नीचे होना, इसकी थोड़ी जानकारी हो गयी, महंत फिर सचेत हो गये और उन्होंने उस यात्रा के उस विकट स्वरूप पर नियन्त्रण पा लिया। एक-दो गुसाइयों को दरिया लगने लगा। उनका सारा खाया अन्न बाहर आ गया। महंत ने कहा—

“अरे, इनको इधर ले आओ हमारे समीप।”

मायनाक ने कहा—

“पड़े रहने दीजिए उनको, महाराज ! अभी ठीक हो जायेगे।”

“यहाँ हमारे पास बहुत स्थान है।”

उन दोनों को अपने पास लेकर महंत ने उनको करवट लेकर लेटने को कहा। गुसाईं को संकोच हो रहा था। महंत ने कहा—

“अरे, इतना संकोच क्यों करते हो? ऐसी यात्रा का हम लोगों को अभ्यास कहाँ है, सारा ही तो नवीन है, योड़ी अस्वस्थता तो होती ही है। हमें भी पहले कुछ क्षण बेचैनी हुई। तुम सभी जब घोड़ों की पीठ पर होते हो तब बाघ बन जाते हो, यह क्या हमें पता नहीं?”

महंत बड़े ही कौतूहल से एक-एक बात मायनाक से पूछ रहे थे और मायनाक उनको सारी बातें समझा कर बता रहा था।

“वह आगे एक छोटी डोंगी जा रही है। उसमें आड़ी लकड़ियाँ क्यों बांध रखी हैं?”

“जी, उनको उलांड़ी कहते हैं। वह ठीक से बँधी होने पर वड़ी डफली से भी डोंगी उलटती नहीं है।”

“डफली किसे कहते हैं?”

“डफली के माने, दरिया की उठती लहर। और यह डांडा, इसे दाल्दी लोग…।”

“दाल्दी का क्या अर्थ?”

“दाल्दी याने मुसलमान खलासी। वे इसे हैलेसी कहते हैं। इसका दूसरा मुसलमानी नाम है—ताऊज।”

“क्या यह लंगर है?”

“जी। बन्दरगाह पर जहाज लगने पर इसे पानी में छोड़ते हैं। इससे जहाज एक ही स्थान पर टिका रहता है, हिलता नहीं है।”

“नीचे की रेत में लंगर धौसता होगा?”

“जी।”

“बहुत दिनों तक पानी में रहने पर इस पर रेत की परतें चढ़ती होंगी?”

“जी। फिर इसे खींचकर निकालना पड़ता है, दो-दो, तीन-तीन लोगों को।”

“सभी प्रकार के जहाजों के लंगर एक से ही होते हैं?”

“नहीं जी। छोटी डोंगियों के लंगरों को कोयली कहते हैं...।”

अब तक महंत का जलपोत खाड़ी के बीचोंबीच आ गया था। एक विशाल, भयानक मत्स्य जबड़ा खोलकर ऊपर आया। क्षण-दो क्षण के पश्चात् पानी में डूब गया। महंत बड़े ही आश्चर्य से उस दृश्य को देखते रहे, उन्होंने पूछा—

“इस मत्स्य को क्या कहते हैं ?”

“इसका नाम बाघबीर। ऐसा ही एक और होता है, पर वह इससे बड़ा होता है। उसका नाम है हुसैनी।”

“ये नौका को परेशान करते होंगे ?”

“कभी-कभी। जहाज का पीछा छोड़ते ही नहीं। छोटी डोंगी हो तो उसे उलट देंगे, ऐसी इनकी बुरी आदत है।”

समीप बैठे मोरगिर से महंत ने पूछा—

“उसकी दाढ़े देखीं ?”

“जी। लगता है बड़े से आरे के दाँते हैं। उनके बीच में कभी मनुष्य आ गया तो उसके दो टुकड़े हो जायेंगे।”

मायनाक ने कहा—“हम खलासियों और मल्लाहों को इनका डर नहीं लगता, पर भूमि पर सियार और कुत्ते से भी हम डरते हैं।”

ऐसी ही इधर-उधर की वातें चल रही थीं, तभी धारापुरी की ओर से अत्यन्त तीव्र गति से आती तीन पालों की नौका इनकी दृष्टि में आयी। उसके सभी पाल एकदम नये-नये लग रहे थे। उसका आकार कुछ बड़ा सा, पर भव्य था। नौका कुछ संकरी और लम्बोतरी थी। उसे देखते ही महंत ने पूछा—

“मायनाक ! यह जलपोत अपने देश का नहीं लगता।”

“जी।”

“हमने रेवदण्डा के बन्दरगाह में इसी प्रकार की तरनी देखी थी।”

“सही है। यह जहाज फिरंगियों का है।”

“देखो, कितने वेग से आ रहा है।”

“वह संकरा है न ? हमारा यह जहाज चौड़ा है, इसमें मनुष्य और भरवान भी होता है, वह नौका केवल विहार करने के लिये होती है।”

महंत अत्यन्त जिज्ञासा से और परखते हुए उस आते जलपोत को देख रहे थे। आश्चर्य यह था कि वह नौका भी सीधी इस नौका का मोहरा पकड़कर अत्यन्त बेग से आगे बढ़ रही थी।

महंत की नौका के साथ धारापुरी की ओर जाने वाली अन्य नौकाएँ एक पंक्ति सी बनाकर इसके पीछे-पीछे चल रही थीं और इस टुकड़ी के आगे-आगे महंत की नौका को देखकर उसी को लक्ष्य बनाते हुए फिरंगियों की नौका इस पर टूटना चाहती थी।

मोरगिर ने चिन्तित होकर कहा—

“मायनाक ! कम से कम तुम ही अपनी नौका एक ओर कर लो।”

छाती निकालकर मायनाक ने कहा—

“आप कुछ भी चिन्ता मत करो, मैं भी देखता हूँ कि इसका बल कितना है। मैं नौकाओं को एक दूसरे पर गिरने नहीं दूँगा। आप तो केवल देखो, इसे भी आज की स्मृति रहनी चाहिए।”

“तुम पर विश्वास नहीं है, ऐसा नहीं; पर यहाँ पानी गहरा है, थोड़ा एक ओर हो जायें तो……”

अपने ही स्थान पर घुटनों पर खड़े रहकर महंत ने कहा—

“हम तुम पर भरोसा करते हैं, मायनाक ! तुम्हारी नौका की विद्या का हम चमत्कार देखना चाहते हैं, चलने दो।”

अत्यन्त उत्साह से मायनाक ने पतवार पर अपनी मूठ कस ली, हवा ठीक थी, तीनों पाल फूल गये थे, छोटे पाल का दौर जहाँ था वहाँ से खोल-कर मायनाक ने थोड़ा निकट बैंधवा लिया। सारे ही खलासियों को सतर्क कर दिया, हाथों में पर्तिगों को लेकर सावधान रहने को कहा और फिर आक्रामक चाल लेकर उसने भी अपने जलपोत का रुख सीधे उसी फिरंगी के जलपोत पर साध लिया। इस जलपोत के सभी गुसाईं सँभलकर बैठ गये। महंत ने एक गुसाईं से पूछा—

“क्यों भैवरगिर ? तैरना आता है क्या ?”

“जी। हमारे गाँव के पास नाले में कई बार हम सभी बच्चे तैरा करते थे।”

“पानी कितना होता था।”

“होगा घुटनों तक ।”

महंत ने कहा—

“तब तो तुम्हें तैरना आता है, महापण्डित ही हो तुम उस विद्या के ।”

पिछली महागिरि के माँभी ने आवाज दी—

“हुशार रे, मायनाक ॥”

मायनाक ने भी बलवती आवाज में कहा—

“हाँ जी, हुशार हूँ। तुम अपने मोहरे मत बदलो। ठीक मेरे पीछे आओ ।”

दोनों जलपोतों का अन्तर अत्यन्त वेग से कम हो रहा था। ऐसा लगने लगा कि एक गरुड़ और दूसरा वाज एक दूसरे पर टूटने वाले हैं। मायनाक ने एक बार फिर से अपने यात्रियों को सावधान किया—

“संभलकर। कसकर पकड़ना, अब धक्का लगने वाला है ।”

देखते-देखते दोनों जलपोत एक रेखा में भागने लगे। पीछे उठने वाली खल-खल करती पानी की धारा मानो डोरी वाँधकर खींची सी लग रही थी। मायनाक ने एक बार महंत की ओर देखा, उनके मुख पर कंतूहल था, उत्कण्ठा थी, और उस जूँझ को देखने की तीव्रता थी, पर भय किंचित् भी नहीं था।

मायनाक ने पतवार पर कसे अपने बाजू की फूली-फूली नसों पर हलके-हलके हाथ फेरा, और पतवार की मूठ और अधिक कऱ्स ली। चील जैसे अपनी शिकार पर आँख रखकर झपटती है, उसी प्रकार मायनाक का सारा ध्यान अपने जलपोत की नाल पर था, मानो उसे उस नाल से परे दूसरा कुछ दिखता ही नहीं था। उन दोनों जलपोतों को देखकर लगता था कि वह सँकरी नाल ठीक सामने के जलपोत में घुसेगी, सामने से आ रहे जलपोत के टुकड़े होंगे और दरिया में चारों ओर बिखरेंगे।

सामने के जलपोत पर एक फिरंगी पतवार पकड़कर खड़ा था। वह अत्यन्त कोतुक से इस जलपोत की चाल निरख रहा था, पतवार पर उसकी पकड़ भी पक्की थी।

दोनों जलपोत दस-बीस हाथ पर आये, अब टक्कर होगी ही, उससे अब कोई भी बच नहीं सकता, ऐसा समझकर सभी यात्रियों ने पानी में

गिरने की मन से तयारी कर ली। फिरंगी चिल्ला रहा था और 'हेड हेड' की आवाजें दे रहा था, फिर भी अपना मोहरा बदल नहीं रहा था। दोनों जलपोतों की नालें एक दूसरे में घुसती हैं, ऐसा क्षणभर भास हुआ और तभी दोनों ही माँझियों ने अपने-अपने जलपोत के पतवार पर सारा बल लगाकर अपनी सारी शक्ति भोंक दी और कुछ ही अंगुलियों का अन्तर रखकर दोनों जहाज एक दूसरे के अति समीप से विद्युत् गति से निकल गये।

फिरंगी ने अपने सिर की टोपी निकाली और वह बार-बार झुकने लगा।

कितना आश्चर्य !

पिछली महागिरियों में से एक बाहर निकली और मायनाक के गलबत के पाश्व में चलने लगी। उसका माँझी मायनाक को बार-बार नमन् करते हुए कहने लगा—

“मायनाक ! अल्ला तुम्हें सलामत रखें। यह तुम्हारा कसब हम मानते हैं। मैं क्या करने वाला था, जानते हो ?”

“क्या, दौलतखान ?”

“अपना गलबत सामने के जहाज में डालकर उसके टुकड़े करने वाला था।”

“तुम्हारे गलबत को थोड़ा भी धक्का लगता तो वह जहाज मुझसे छूट नहीं पाता।”

“दौलतखान कहकर जिसकी प्रशंसा की थी, यह वही व्यक्ति है क्या मायनाक ?”

“जी ! ए, खान ! महाराज को मुजरा करो।”—मायनाक ने चिल्ला-कर कहा।

बार-बार झुककर दौलतखान ने महंत को मुजरा किया। महंत ने उसकी ओर देखा। भरे-पूरे शरीर का, बड़े मुखड़े का वह व्यक्ति एकदम भरोसे का और स्वाभिमानी दिख रहा था। मायनाक ने बताया—

“मेरा पुराना मित्र है, सरल और नेक मनुष्य है। किसी के भगड़े-झमेले में नहीं। यह भी इस अन्धाधुन्धी से परेशान हो गया है।”

महंत ने पूछा—

“वह किरंगी निकट से जाते हुए क्या कह रहा था ?”

“वह कह रहा था—शाव्वास ।”

किनारा निकट आ गया । सारे जलपोतों ने शीघ्रता से पाल उतार लिये । एक मोड़ पर दरिया का पानी टापु में घुसा था, वहाँ योड़ी सी नाम लेने योग्य आड़ धी । वहाँ पहुँचकर इस काफिले ने बाँस की लग्गियाँ पेलते हुए जलपोत किनारे तक लाकर खड़े किये ।

सामने अब केवल पाँच-सात हाथ दूर तक पानी था । महंत कफनी संभालकर पानी में उतरना चाहते थे । तब तक मायनाक ने पानी में कूदकर हठात् महंत को अपने कन्धे पर उठा लिया । वे मना करते रहे, पर उसने उनकी बात नहीं मानी, बोला—

“किनारपट्टी का यही रिवाज है, संकोच करने की कोई बात ही नहीं है ।”

तट पर उतरते हुए महंत ने पूछा—

“सभी को इसी पद्धति से उतारते हो ?”

“जी ।”

“वूढ़ों, बच्चों और स्त्रियों को भी ?”

“जी । सारे खलासी और मल्लाह यात्रियों को ऐसे ही किनारे पर उतारते हैं ।”

मायनाक महंत की बात समझ गया था । गर्दन झुकाकर उसने आगे कहा—

“यह दरिया का पानी भरोसे का नहीं । उसका क्या विश्वास ! तब सभी स्वयं को मल्लाहों और खलासियों को सोंप देते हैं, महाराज !”

महंत सागर की लीला को देखते हुए खड़े थे, अपलक, गम्भीर, और प्रसन्न ।



दरिया के तट पर एक वृक्ष के नीचे महंत विश्राम कर रहे थे । वहाँ से सारा आसमन्त दिख रहा था । सभी ओर से एक-एक जलपोत धारापुरी आ रहा था । ठाणे से निकले दादाजी रांझेकर और सखो लोहोकर आ

पहुँचे । दोनों उतरते ही वृक्ष के नीचे पहुँचे । महंत का भेष देखकर उनको थोड़ा आश्चर्य हुआ, कुछ हँसी भी आयी, किन्तु उसे दबाते हुए भुक्कर दादाजी ने कहा—

“दण्डवत् करता हूँ, स्वामी !”

“उहौं, महंत महाराज !”

“ठीक । महंत महाराज, प्रणाम् ।” लोहोकर ने धीरे से कहा ।

महंत ने भी मुखमुद्रा गम्भीर रखते हुए कहा—

“कल्याण हो ।”

रांझेकर ने कहा—

“कल्याण का कल्याण हो, ऐसी यदि महाराज की इच्छा है तो सारा ही क्षेम-कुशल है ।” “महंत महाराज मन में आते ही उसका मंगल कर सकते हैं ।”

“उत्तम है । पर, दादाजी ! यह तो बताओ कि यह भेष हमें कैसा लगता है ? यही व्यवसाय स्वीकार कर लिया तो ?”

“क्षमा हो । सज्जा से कटी दाढ़ी वाला रूप जैसा मन को प्रसन्न करता है, उतना यह रूप नहीं । यह रूप भी सुन्दर है, पर हम सेवकों के मन में वही रूप बसा हुआ है ।”

तब तक एक नीका में पूजा-साहित्य और साथ में एक बढ़ी को पकड़-कर बाबल झट्ट भी आ गया । नीचे से प्रस्तरों और शिलाखण्डों पर बैसाखी फटक-फटक फटकारता वह भी उसी वृक्ष के नीचे आ पहुँचा । आते ही बन्दन कर बोला—

“पूजा-साहित्य जुटाते-जुटाते थोड़ी देर हो गयी । फिर कोई बढ़ी मिल नहीं रहा था, सारे के सारे पकड़कर सिद्धी के कारखाने में पहुँचा दिये गये । आखिर यह एक मिला, उसे ही बुलाकर लाया हूँ ।”

महंत ने पूछा—

“इसको बरमा और रंधे का अन्तर भी पता है ?”

“ईश्वर जाने ।”

“क्या करता है ?”

“हलबाई की दुकान पर लड्डू बनाता है । जैसे-तैसे मनाकर लाया हूँ ।”

उसे महंत के सामने खड़ा किया । उन्होंने उससे पूछा—

“क्यों जी विश्वकर्मा ! रंधा किसे कहते हैं ?”

वह पगला इधर-उधर देखता खड़ा था । समीप खड़े गुसाई ने उसकी चाँह पकड़कर कहा—

“ए, पुतले ! तुझसे महाराज क्या पूछ रहे हैं ? रंधा किसे कहते हैं ?”

वह घबरा गया, उसने जनेऊ में बँधा दाँत कोरने का तांचे का टुकड़ा

उठाकर बताया । हँसी दबाते हुए मोरगिरि ने कहा—

“न होने पर, सुपारी ही सही । रहने दे । बढ़ई के हथियार तो लाया है न ? बस, बहुत है फिर । महाराज जानते हैं कि आरी चलानी हमें भी आती है ।”

महंत ने कहा—“रणगिरि ! तुम्हें तो स्मरण होगा, बालकपन में लाल महल का काम चल रहा था तब अपनी एक अंगुली हमने भी काट ली थी ।”

“स्मरण है धनी ! फिर उस बढ़ई ने अपने ही मुँह में बार-बार थप्पड़ मार लिये थे ।”

“तुम निश्चन्त रहो, ये विश्वकर्मा महाराज वैसा अद्भुत कुछ नहीं करेगे ।”

महंत की इस बात पर सभी ठाकर हँसने लगे । एकाएक महंत ने आश्चर्य से बन्दरगाह की ओर देखा—

“यह क्या ?”

सभी की आँखें उस ओर मुड़ीं । कोई बाज सरसराते हुए एकदम भूमि पर उतरे, वैसे ही वही फिरंगी अपना जलपोत बन्दरगाह के घाट पर लगा रहा था । महंत के साथ रेवदंडा का बल्लभ भाई आया था, वह पुतंगाली भाषा का जानकार था । उसकी ओर देखकर महंत ने कहा—

“भाई, एक बार जाकर उसकी जानकारी लाओगे ?”

बल्लभ भाई बन्दरगाह के घाट तक गया, तब तक वाकी खलासियों को जहाज पर ठहरने को बताकर इसी देश के एक ईसाई को साथ लेकर वह फिरंगी पहाड़ी की ओर चल पड़ा था । उसे मार्ग में रोककर बल्लभ भाई ने पूछा—

“सिन्धोर ! पैसु दि शकुल्प, कामु सि श्याम !” (श्रीमान ! क्षमा करें, पर आपका नाम जान सकता हूँ ?)

“नामी, मानुएल द काव्हर्हाल्यु, प्रोफिसाँव, मिल्योर क् येव अदिग, सोब ऊं आगिय ली व्हरि अ पायरार सोन्नि उ मार ।”

(नाम, मन्युअल डी कारव्हेलो । धंधा, मैं ही बता दूँ तो अच्छा होगा । दरिया पर स्वच्छन्द धूमनेवाला मैं एक बाज हूँ ।)

ऐसी ही कुछ जानकारी लेकर उसे वहाँ थोड़ा रुकने के लिये कहकर बल्लभ भाई लौट आया । महंत को उसने बताया—

“उसका नाम मन्युअल कारव्हेलो है । वह बता रहा है कि वह दरिया में स्वच्छन्द धूमने वाला पंछी है । मैंने इसका नाम चौल में सुना है । वहाँ के विजरई के साथ…”

“विजरई ?”

“विजरई के माने है, बड़ा साहब । उससे झगड़कर यह वहाँ से निकल पड़ा । एक सरदार का पुत्र है । वाप से भी लड़कर इस देश में आया है, यहाँ भी झगड़ा हो जाने के कारण अब स्वच्छन्द धूम रहा है ।”

“यहाँ किसलिये आया है ?”

“कह रहा था—ऐसा प्रस्तर-शिल्प अनेक देशों में नहीं है, उसे ऐसे शिल्प देखने का शौक है, यहाँ वह बार-बार आता रहा है ।”

“और अब इस समय यहाँ क्यों ?”

“कह रहा है कि जिस गरुड़ से अभी-अभी जूझ दुई थी, उसे एक बार प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ ।”

“तुमने क्या कहा ?”

“अब तक तो कुछ नहीं बताया, आज्ञा हो तो आप कोन हैं, यह उसे बताता हूँ ।”

क्षण भर सोचकर महंत ने कहा—

“बता दो ।”

बल्लभ भाई फिर से उस फिरंगी के पास गये । महंत का परिचय सुनते ही फिरंगी बहुत प्रसन्न हुआ । टोपी हाथ में निकालकर वह शीघ्रता से जहाँ महंत बैठे थे, वहाँ आया । आते ही नीचे भूककर पुर्तगाली भाषा

में ही बोला—

“नमस्कार, शिवाजी राजा भौंसले ! आपके विषय में बहुत सुना है। आपको मिल सकने वाला मैं प्रथम पोर्टुगीज हूँ, इस एक बात में मैंने अपने देश-वांधवों से कुछ अधिक कर दिखाया है।”

बल्लभ भाई ने उसका आशय बताया। उसे सुनकर शिवाजी राजा ने कहा—

“उसे बताओ कि उससे मिलकर हमें भी बहुत प्रसन्नता हुई और यह भी पूछो कि अभी-अभी तुम हमारे जलपोत से टक्कर क्यों लेना चाहते थे ?”

बल्लभ भाई ने यह सब पूछा तो वह खूब हँसा, क्षणभर पश्चात् रुक्कर उसने बताया—

“मैं मजाक चर रहा था। इस देश के माँझी और मल्लाह घवराकर जहाज कहीं भी भटका देते हैं। आपके जहाज ने हमारे जहाज के साथ टक्कर लेना चाहा, उसी कारण मैं आप पर मुख्य हूँ।”

“अब क्या विचार है, यह भी पूछो।”

फिरंगी ने पूछा—

“महाराज ने त्रिमूर्ति का शिल्प देख लिया है क्या ?”

“नहीं।”

यह जात होते ही उसने कहा—

“मैं यह देखना चाहता हूँ कि यह पुरुष उस पाषाण-प्रतिमा का दर्शन लेने उसके मामने किस प्रकार जाता है।”

□

त्रिमूर्ति-शिल्प के मामने राजा शिवाजी खड़े थे। उनका मन उसमें ऐसा खो गया कि पूछो नहीं। एकदम निश्चल हो गये। उनकी पलकें स्थिर हो गयीं, निश्वास भी क्षणभर रुक गया, मानो वे भी एक शिल्प बन गये। कोई दैवी मंत्र फूँक दे, ऐसी उनकी स्थिति हो गयी।

बन्दरगाह से वे द्वीप की ओर चलने लगे, तभी से उनकी स्थिति कुछ ऐसी हो गयी थी। मायनाक उनको प्रचण्ड, फूटे हुए पत्थर के एक हाथी के समीप ले गया। वह हाथी खुले आकाश में वर्षों से खड़ा

या। उसका निर्माण किसने किया, ज्ञात नहीं; किस हेतु से, यह भी ज्ञात नहीं।

उस हाथी के आसपास अत्यन्त प्राचीन किसी नगरी के घ्वंसावशेष खिलाये थे। कहीं केवल चबूतरे, कहीं किसी भीत के अवशेष। वे सारे भवन जब निर्मित किये गये होंगे, तब उन्हें इस हाथी ने देखा होगा। कभी वहाँ अपने पूर्ण बैभव से राजकुलों ने जीवन भोगा होगा; वह भी इस हाथी के साक्ष्य से। किसी अशुभ घड़ी में शत्रु ने इस द्वीप पर आक्रमण किया होगा। बड़ी-बड़ी विशाल नौकाओं में सहस्रों सशस्त्र सैनिक आये होंगे। उन्होंने अपने अग्निवाणों से इन भवनों को राख-राख कर दिया होगा। वह एक दूसरा ही लंकाग्निकाण्ड हुआ होगा और इस प्रकार एक प्रियदर्शिनी नगरी के प्रासादों, भवनों और अट्टालिकाओं का घ्वंस होकर इस युग में दिखते ये कंकाल शेष रह गये होंगे। पता नहीं, कल्पना भी करना भयंकर लगता है, कि उस आक्रमण के पश्चात् यहाँ के ढरे हुए नागरिक सागर के ज्वार-भाटे की परवाह न करते हुए छोटी-छोटी नौकाओं में बैठकर कैसे सुरक्षित निकले होंगे। लगता है यह सारा युद्धकाण्ड भी इस हाथी ने देखा होगा। यह सारा रौद्रकाण्ड घटते समय इस हाथी ने अपनी सूँड भी उठायी नहीं होगी, अपनी मुद्रा बदली नहीं होगी। यह उस समय भी ऐसा ही जड़ सा खड़ा होगा, और ठीक भी है, वह थी मात्र पापाण-प्रतिमा।

उस एक मात्र साक्षी हाथी की प्रतिमा के सामने खड़े होकर, उस उद्घवस्त शिल्प को देखते समय राजा के मन में क्षणभर आया कि सारी-सारी आपत्तियों को चुपचाप सहन करने वाली महाराष्ट्र की प्रजा का यह एक जीता-जागता प्रतीक है।

मंत्रमुग्ध से शिवाजी राजा उन घ्वंसावशेषों को देखते आगे बढ़ रहे थे। एक-एक टूटी-खिलारी भीत के समीप वे क्षणभर खड़े रहते, और खिल्लन दृष्टि से उसका आज का रूप निरखते। उनके पीछे उनके साथी, सेवक, मित्र सभी चल रहे थे। राजा उन खण्डहरों की भाषा से जो भी समझ रहे थे, वह सभी उनके मित्र भी समझ रहे थे ऐसा विलकुल नहीं; परन्तु वे यह अवश्य समझ रहे थे कि उनका राजा उन घ्वंसावशेषों में खो गया है, वह

इनके दर्शन से मंत्रमुग्ध है, इस क्षण कुछ बोलकर राजा की मावसमाधि में विक्षेप नहीं करना चाहिए।

मैन्युथल इन लोगों में सम्मिलित नहीं हुआ था। उसने इस द्वीप को अनेक बार देखा था। ग्रीस में जाकर उसने वहाँ के अवशेष भी देखे थे। ऐसे खण्डहरों और ध्वंसावशेषों की भाषा वह समझता था, उनके मर्म तक पहुँचने की उसमें क्षमता थी। आज और इस क्षण तो उसे परखनी थी इस देश के राजा की प्रतिक्रिया। इसीलिये वह एक ओर ठहरकर राजा शिवाजी की मुखमुद्रा पर प्रतिविम्बित होने वाले भावों को पढ़ रहा था।

वह समझ रहा था कि संसार के जन-जन की बोली और भाषा भिन्न-भिन्न होती है, परन्तु भाव और भावनाओं की भाषा इस संसार में सदा ही एक सी रही है। ग्रीस के अवशेषों को देखकर मुझे जो और जैसा अनुभव हुआ; उससे कुछ अनोखी ही और उससे भी शतगुणित अधिक मर्मान्तक वेदना इस पुरुष को हो रही है। वह अत्यन्त आश्वर्य से राजा की मुद्रा पर व्यक्त होते उस भाव-नाट्य को देख रहा था, परन्तु स्वयं राजा को उस साक्षी का भी भान नहीं था।

द्वीप की दो पहाड़ियों में से जिसमें गुफाएँ थीं, उस ओर ये सभी लोग मुड़े। इस मौन और शान्ति का सभी पर विलक्षण परिणाम हुआ था। वहाँ वीस-पच्चीस लोग जा रहे थे, पर किसी के मुख से कोई भी शब्द नहीं निकल रहा था। बाबल भट्ट को अपनी बैसाखियों की खट-खट का ही स्नेद हो रहा था। इसीलिये यथासंभव वह सभी के पीछे-पीछे ही चल रहा था।

राजा ने मोरोपन्त को धीरे से कहा—

“सर्वप्रथम महादेव के सामने चलना है।”

यह सुनकर मायनाक आगे बढ़ा। उसने राजा को विशाल शिल्प के सामने ले जाकर खड़ा किया। उस शिल्प में छांटे-छोटे चमगादड़ों ने बस्ती वसा ली थी, वे इन लोगों को देखकर ‘किचकिच’ करके उड़ गये। उनकी बस्ती से उस शिल्प में तीखी गंध फैली थी। राजा ने अपनी जूतियाँ बाहर ही उतार दीं और अत्यन्त गम्भीर पदन्यास के साथ उन्होंने शिल्प में प्रवेश किया। गर्भगृह के दोनों ओर दो प्रचण्ड द्वारपाल खड़े दिख रहे थे। मूर्ति-

मंजकों ने उनके नाक-कान तोड़ दिये थे, फिर भी उन शिल्पों की सुन्दरता, सुघड़ता, नम्रता और अलंकारों का सौष्ठव, सभी कुछ दर्शनीय था। राजा ने भी माँ साहिबा से वेरूल की मूर्तिकला के विषय में सुना था। काली के चैत्य उन्होंने स्वयं देखे थे। केवल द्वारपालों की मूर्तिरचना में भी शिल्पकार इतने प्राण फूंक सकता है, यह देखकर वे विस्मित थे। वाहर के उजले प्रकाश में से एकाएक भीतर आने के कारण कुछ क्षण उनको स्पष्ट दिख नहीं सका, पर क्षण भर बाद उनकी दृष्टि त्रिमूर्ति के शिल्प पर स्थिर हुई, तो वे स्तम्भित रह गये। उनके मुख से आश्चर्यातिरेक के कारण शब्द भी नहीं फूट रहा था।

कितना विराट था वह शिल्प ! तल से घट तक केवल उस महास्वरूप की छाती और मस्तक। छाती वृषभ सी पुष्ट थी, पौरुष के सारे लक्षण उस पर पूर्णतः अंकित थे, गले में नौक्तिक मालाएँ थीं, नाना प्रकार के रत्नहार इतनी कुशलता से कुरेदे थे कि उन रत्नों का स्पर्श करने का मोह होता। मध्य में था विष्णु का मस्तक—सृष्टि के पालनकर्ता का। मुद्रा में स्नेहभाव था, कैसी तो सुन्दर उनकी पलकें थीं ! अलौकिक रचे गये थे उनके कमल-नेत्र ! सब कुछ इतना जीवन्त और मुखर कि लगता था इसी क्षण वे अपने मुख से आशीर्वचन बोलने लगेंगे।

मस्तक के मुकुट की शोभा तो और भी अवर्णनीय थी। था तो वह पाषाण का ही, पर यहाँ शिल्पकार ने अपनी सारी कला प्राण-पण से लगा दी थी। ऊपरी स्वर्ण पट्टिकाएँ मुकुट के कलश में समा रही थीं और उनमें नीचे लगी रत्नपंक्ति श्रीविष्णु के कपाल तक लटक रही थी।

ऐसा वह विष्णु का रूप था, तो दाहिनी ओर था सृष्टिकर्ता ब्रह्मदेव का स्त्ररूप। उस मुद्रा पर भासता गाम्भीर्य सृष्टि-रचना के दायित्व को व्यक्त कर रहा था। उस मुख पर किंचित् सी थकान व्यक्त हो रही थी, लगता था चौरासी लाख योनियों के जीवों का निर्माण कर अभी-अभी पितामह यहाँ आकर विथाम कर रहे हैं।

उन दो रूपों को निरखने के पश्चात् राजा वायीं और के रुद्र-मुख के सामने जाकर खड़े हो गये। तब विस्मय से उनका मन भर भर गया।

मस्तक पर जटाओं का जाल था, भूकुटियाँ ऊपर चढ़ी थीं, ओठ कुछ

मुड़े थे, दृष्टि से तो मानो चिगारियाँ बरस रही थीं, मुद्रा पर सन्ताप उभरा था, नस-नस फूल रही थी, लगता था क्षण-दो क्षणों में महादेव अपने प्रलय-कर ताण्डव के लिये उठने वाले हैं।

उस शिवमूर्ति की दृष्टि से दृष्टि मिलाते हुए राजा ने उस शिल्प को देखा। फिर वे घुटनों पर बैठे, उन्होंने भुजाएँ फैला दीं और उस शिल्प को आलिंगन देने के लिये वे धरा पर दण्डवत् स्थिर हो गये। मैन्युअल पीछे खड़ा था। उसने धीरे से कहा—“अद्भुत का दर्शन भी अद्भुत।”

राजा वाहर के शिवताण्डव-शिल्प के सामने खड़े थे। मूर्ति के आवेश से लगता था कि ये नृत्यमरण शिव किसी भी क्षण नृत्य के पदन्यास करना प्रारम्भ करेंगे। शिव की उस नृत्यमुद्रा के चरण ही मूर्तिमंजकों ने खंडित कर दिये थे। अपनी भूकुटि चढ़ाते हुए राजा ने पीछे मुड़कर पूछा—

“यह अधोर कृत्य किस पापी ने किया होगा ?”

पन्त ने उत्तर दिया—

“वही ज्ञात होता तो…।”

इसी क्षण राजा ने मैन्युअल की ओर क्षणभर देखा। उनके मुख पर ऊंध मानो उफन रहा था; नहीं, उनकी मुद्रा मानो शिवमूर्ति की प्रतिकृति थी। मैन्युअल ने बल्लभ भाई के कान में अपनी यह प्रतिक्रिया व्यक्त भी की। वहाँ से राजा फिर से लौटकर पश्चिम की ओर गये। वहाँ शिव-पार्वती के परिणय का शिल्प था। राजा उस शिल्प के सामने खड़े थे।

कितनी सलज्ज थी भवानी की मुद्रा! कितना संकोच समाया था उस पर! भगवान शंकर का कर-स्पर्श होने के कारण उमा का सारा शरीर रोमांचित था। भगवान शंकर विरक्तता से उस मुद्रा को निहार रहे थे।

पर वह शिल्प भी भग्न था।

कुछ समय पश्चात् राजा ने धीरे से कहा—

“मित्र ! क्या कहें? सब कुछ तो ये मूर्तियाँ ही कह रही हैं। कब की कथा ! कब की व्यथा !! किसी समय की गाया !!! लगता है मानो रात में आनन्द-विहार करते-करते सूर्योदय होते ही वे सारी देवता पापाण रूप हो गयी हैं, ऐसा यह सजीव और सप्राण शिल्प है।

“परन्तु कभी किसी अशुभ क्षण में कोई दुष्ट मूर्तिभंजक यहाँ आया और वह इस सारी सुन्दरता के टुकड़े कर चला गया। एक मन कहता है कि वह पापी कभी हाथ आता, तो उसका क्या किया होता न जाने!, पर मन में यह भी आता है कि एक को मारने पर भी दूसरा उठने ही वाला है।

“जब तक कला का विध्वंस करने की वृत्ति नष्ट नहीं होती, तब तक किसी एक को मारने-काटने का क्या उपयोग ?

“हमारे मन में आता है कि इस वृत्ति पर ही आघात करना चाहिए। ऐसा सामर्थ्य खड़ा करना चाहिए कि मूर्तिभंजकों की वृत्ति उस सामर्थ्य के दर्शन मात्र से जड़ हो जाये, उसका हाथ उठ ही न पाये। घटमाथे पर शिवशंकर के आशीर्वाद से लेशमात्र प्रारम्भ किया ही है, यह तो तुम्हें ज्ञात ही है।

“उस प्रारम्भ का श्रीगणेश तुम सभी के कारण ही हो सका। इस त्रिमूर्ति के साक्ष्य से यहाँ थोड़ा सा कार्य और प्रारम्भ करने की इच्छा है।

“सामने मुख है पालनकर्ता श्रीविष्णु का, वह आदेश दे रहा है कि सृष्टिकर्ता के समान कुछ करो, रचो, कुछ नवीन गढ़ते रहो। इसमें भी कोई बाधा डालना चाहेगा, तो शंकर की भूकृष्टियाँ वक्र हुई ही हैं। यही इस त्रिमूर्ति का आदेश है, यही उसका उपदेश है।”



सागर-जल में स्नान कर राजा शिवाजी पीताम्बर पहनकर पूजा करने वैठे थे। पूजा त्रिमूर्ति महादेव की ओर वरमा, रूखानी और वसूला जैसे औजारों की होनी थी। स्नान कर ऊन की मोटी धोती पहनकर भस्म लगाकर बाबल भट्ठ अत्यन्त उत्साह से पूजा करवाने वैठा था। प्रारम्भ से प्राणायामादि समाप्त कर उसने संकल्प वताना प्रारम्भ किया—

“कहिए, ‘मम’।”

राजा ने भी कहा—‘मम’

“आत्मनः”

“आत्मनः”

और इसके बाद बाबल भट्ठ, श्रुतिस्मृतिपुराणोक्त ‘फल प्राप्त्यर्थ’ तक की

दोड़ करने लगा, उसे राजा ने रोककर कहा—

“शास्त्री जी ! हमसे यह सारा सावकाश कहलवा लीजिए।”

आनन्दित होकर बाबल भट्ट ने कहा—

“इससे बढ़कर हर्ष की बात क्या होगी ? कहिए—

श्रुति…।”

बाबल भट्ट तबक में गणेश के लिये सुपारी रखने लगा तो राजा ने कहा—

“शास्त्री जी ! वाहर गजानन की मूर्ति है तो, उसी की पूजा क्यों न करें ?”

बाबल भट्ट ने उठकर अपनी वैसाखी संभालते हुए कहा—

“यह तो और भी उत्तम । चलिए।”

राजा, और उनके पीछे पूजा-सामग्री लेकर दो-चार परिचर, ये सभी ताण्डवमूर्ति के सामने जा खड़े हुए । वहाँ गजानन की मूर्ति देखकर बाबल भट्ट ने कहा—

“यहाँ इतनी सुन्दर मूर्ति होगी, यह मेरे ध्यान में आया ही नहीं था ।”

“हम रात्र्यंध हैं, वस्तु सामने होने पर भी दिखेगी नहीं ।”

“आपका ऐसा नहीं है । आपकी दृष्टि चतुर्मुख है, उसे सारा दिखता है । कहते हैं, कवि को सामने का दिखता है, और जहाँ से वह दृश्य उद्भूत हुआ, वहाँ का भी आपकी दृष्टि भी ऐसी ही है, राजे !”

राजा ने केवल स्मित किया, और कहा—

“कैसा अद्भुत शिल्प है ! ताण्डव देखने के लिये सारी देवसृष्टि जुड़ी है । कृषिगण भी पीछे नहीं । नीचे श्रीविष्णु खड़े हैं । ऊपर कमलासन पर श्रीब्रह्माजी हैं, और उस भीड़ में से निकलते हुए ब्रह्मदेव के दायीं और से छोटे से बालक गणेश लंगोटी लगाये अत्यन्त कोतुक से अपने पिता की नृत्यक्रीड़ा निरख रहे हैं । दायें हाथ के परशु को ठीक से पेलने का भी उन्हें ध्यान नहीं है । कैसा सुन्दर रूप, मानो वटपत्र पर सोये छोटे से विश्वरूप ! अंगूठा मुँह में देकर सोये से ।”

उस मूर्ति के उस रसग्रहण को सुनते हुए बाबल भट्ट हाथ में दूर्वा लेकर वैसे ही चकित खड़े थे । मोरोपंत ने कहा—

“शास्त्रीजी ! श्रोता नहीं हो आप, पुरोहित हो । पूजा प्रारम्भ करो ।”

निःश्वास लेकर बाबल भट्ट ने कहा—

“कभी कोई दिन ऐसी अपूर्वता लेकर ही उदित होता है ।”

इतना कहकर बाबल भट्ट ने राजा से कहा—

“राजे ! श्री गजानन पर दूर्वालियों से जलप्रोक्षण करिए ।

ॐ गणानां त्वा गणपति हवामहे ।……”

□

त्रिमूर्ति का वह पापाण-मण्डप बाबल भट्ट के गणेशार्थवर्षीर्ष के घोष से गूँजने लगा । मोरोपन्त, लोहोकर, ऐसे दो-चार लोग बाबल भट्ट के साथ अथवंशीर्ष का पाठ करने लगे । जहाँ जब स्मरण नहीं आता था, वहाँ वे अपना स्वर कम करते । राजा आँख बन्दकर उस वेद-घोष को सुन रहे थे । अन्त में मन्त्र-पुष्पांजलि समाप्त होने पर राजा बसूला हाथ में लेकर बाहर आये । वहाँ एक सागवानी ढूँढ रखता था । उसके सामने नारियल फोड़कर राजा ने उस ढूँढ पर आधात किया । मैन्युअल अत्यन्त निष्ठा से यह सब देख रहा था और बल्लभ भाई से एक-एक कृति का अर्थ समझ रहा था । कुछ वह समझ रहा था, कुछ उसकी दुद्धि के परे की बातें भी थीं । औजारों की पूजा का अर्थ उसने समझ लिया । बल्लभ भाई का हाथ पकड़कर वह राजा के समीप आया और उसने उनका हाथ पकड़कर दबाया ।

राजा पीताम्बर पहनकर बैठे थे । उनको इस प्रकार स्पर्श करना ठीक नहीं था । उनको इस प्रकार फिरंगी का स्पर्श हुआ देखकर सभी के साथ बाबल भट्ट भी चौंका । वह कुछ बोलने ही बाला था कि तभी राजा ने आँखों से ही उसे चुप किया । उन्होंने बल्लभ भाई से पूछा—

“मनोल साहब का क्या कहना है ?”

“इनकी इच्छा है कि आपसे कुछ कहें ।”

“इनसे कहो, बताओ ।”

बल्लभ भाई की मध्यस्थता से बातें हुईं—

“आपका यह सब देखकर मैं अत्यन्त प्रभावित हो रहा हूँ ।”

“हमें यह सुनकर बहुत संतोष है ।”

“मैं स्वतन्त्र हूँ, स्वयं अपना स्वामी हूँ । यह आप क्या करने जा रहे

हैं ? मैं इसमें आपकी कुछ सहायता कर सकूँगा ? ”

राजा ने कहा—

“यहाँ गणपति का और महादेव का पूजन हुआ । अब कल्याण में दुर्गा देवी के समक्ष हिन्दवी राज्य के आरमार (युद्धपोतों) का शुभारम्भ होगा । हिन्दवी स्वराज्य का आरमार खड़ा किया जायेगा । वह पश्चिमी समुद्र पर घूमेगा । जो भी दादागीरी करना चाहेंगे, उनके हाथ जड़मूल से तोड़ना इस आरमार का उद्देश्य होगा । इस देश का व्यापार बढ़े, देश-विदेश के जलपोत निश्चन्त होकर यहाँ के बन्दरगाहों पर आते रहें, वे प्रामाणिकता से यहाँ की प्रजा के साथ व्यापार कर सकें, अपने-अपने देश की अलीकिक वस्तुएँ वे यहाँ लायें, यहाँ का जो भी वे चाहें उसे उचित मूल्य चुकाकर ले जायें, ऐसी निर्भयता और निश्चन्तता इस देश के बन्दरगाहों में निर्मित हो, इसीलिये इस आरमार का निर्माण होना है । ”

अपनी छाती पर हाथ रखकर मन्युअल ने उत्तर दिया—

“मेरे पिता का जहाज बनाने का ही कारखाना है । बालकपन से ही इन औजारों से मैं खेलता आया हूँ । यह जो जलदगति का जहाज आपने देखा, उसे मैंने ही बनवाया है । आपको कोई आपत्ति न हो, तो इस आरमार को खड़ा करने के कार्य में सहायता करने की मेरी इच्छा है । ”

राजा ने पन्त की ओर देखा । उनके स्वीकृति के लिये गर्दन डुलाते ही राजा ने कहा—

“हमें भी बहुत प्रसन्नता होगी । ”

मन्युअल ने अपनी तुमान की जेब में हाथ डालकर दिशा पहचानने का यन्त्र वाहर निकाला, और उसे राजा के सामने बढ़ाते हुए कहा—

“तब यह भेंट करता हूँ । इसका स्वीकार हो । ”

इस विलक्षण यन्त्र को देखकर, समझकर उसे प्रसन्नता से स्वीकार करते हुए राजा ने उसका हाथ एक बार दबाकर अपना सन्तोष व्यक्त किया । हाथ मिलाते हुए राजा ने उसकी ऊँगुली में पहनी ऊँगूठी देखी और कहा—

“मनोल साहब से पूछो कि उन्हें हीरा अधिक प्रिय है ? ”

प्रसन्नता से पुलकित होते हुए मन्युअल ने कहा—

“यह रत्न तो मुझे बहुत प्रिय है ही, साथ ही जिस तरुणी से मेरा विवाह होने वाला है उसने यह अँगूठी स्मृति के रूप में अपने हाथ से मुझे पहनायी है।”

यह सुनकर अत्यन्त प्रसन्नता के साथ राजा ने अपने दायें हाथ की अँगुली में पहनी मटर के मोटे दाने जैसे हीरे की अँगूठी उतारी और उसे मँन्युअल की अँगुली में पहनाते हुए कहा—

“मनोल साहब को कहो, पुर्तगाल में अपनी भावी पत्नी को मैंट स्वरूप यह अँगूठी भेजें।”

उस अत्यन्त तेजस्वी हीरे को देखकर मँन्युअल चकित हो गया। उसने पूछा—

“वया शिवाजी राजे सच ही यह अँगूठी मुझे दे रहे हैं?”

राजा ने कहा—

“यह एक मित्र की दूसरे उदार-हृदय मित्र के लिये मैंट है।”

मँन्युअल ने अपनी टोपी उतारी और बार-बार झुककर उसने राजा का अभिवादन किया।



चारों ओर अचानक होहला होने लगा, भाग-दौड़ हो रही थी। गरीब लोग अपने-अपने छप्परों पर चढ़कर पेड़ों की छाया में छिपकर क्या हो रहा है, उसे देख रहे थे। एक दूसरे को सकेतों से बता रहे थे, कोई ऊँचा बोलने लगता तो उसे चुप करते थे।

कल्याण के सूवेदार से लेकर सारे लोग निश्चन्तता से ईद मना रहे थे। असमय उठे आँधी-तूफान और वर्षा के समान आकर कोई एकाएक इस प्रकार वाणों की मार करेगा, इसकी किसी ने कल्पना तक नहीं की थी। धूमकेतु के समान एकाएक मराठे आसपास के धान के खेतों को रौंदसे हुए आ धमके थे। उनके साथ पैदल सेना तो थी ही, घुड़सवार सेना भी थी। देखते-देखते उन्होंने सारी चौकियों पर अधिकार कर लिया और अब घुड़-सवारों का एक पथक नंगी तलवारें पेलते सूवेदार के बाड़े की ओर दौड़ रहा था। आगे थे दादाजी रांझेकर—घोड़े पर बैठे, श्यामलवर्ण, भरा-भरा शरीर, भरी-भरी मूँछें। उनकी डरावनी विस्फारित आँखें सूवेदार का बाड़ा

खोज रही थीं।

उनके कहने पर दूसरी अश्वारोही टुकड़ी घोड़े पर ढोल रखकर बजा रही थी। बीच-बीच में ढोल रोककर भरी-पूरी आवाज में एक सवार चिल्ला रहा था—

“सुनो रे, बाजार वालो ! सेठ-साहूकारो, व्यापारियो, बनियो ! आज से कल्याण पर शिवाजी राजे का शासन आरम्भ हो गया है, अब डरने की और भय खाने की आवश्यकता नहीं है।

“आतंक फैलाने वाले सूबेदार का बन्दोबस्त हो गया है। अब सभी व्यापारी प्रामाणिकता से व्यापार करें। सब प्रकार के अत्याचार अब आज से बन्द। बाजार के मुनीम भी अब लेखा-जोखा ठीक रखें। हम्माल भी बन्दरगाह से माल उतारने का काम परम्परा के अनुसार करते रहें। किसी पर भी किसी प्रकार का अन्याय नहीं होगा। बड़ी-बड़ी पेटियों से हुण्डियाँ चलायी जा सकती हैं। उनको किसी भी प्रकार की हानि नहीं उठानी पड़ेगी। कोई हेराफेरी करने की सोचेगा, तो उसके हाथ-पैर भरे चौक में छाँट दिये जायेंगे। सुनो रे ५५५”

यह टुकड़ी इसी प्रकार की घोषणा करते बाजार से होकर जा रही थी, फिर भी वडे साहूकारों के मन का भय कम नहीं हो रहा था।

कल्याण के बीचोंबीच एक तालाब था। जोने के सिक्कों से भरी कितनी ही थैलियाँ उसके पानी में छिपायी गयीं, हीरे और माणिकों से भरे कितने ही थैले इधर-उधर गड़दे कर उनमें छिपाये गये। दो-चार वडे व्यापारियों के बाड़ों के सामने अरबों ने कुछ प्रतिकार करने का प्रयत्न किया, वहीं अनिच्छा से मराठा सेना को तलवार चलानी पड़ी। उन सैनिकों की सहायता के लिये सेनिक मशालें लेकर दौड़ने लगे। उनकी मशालों के प्रकाश से ही बाजारों के पथ प्रकाशित हो रहे थे।

मराठे आ रहे हैं, ऐसा सुना, और सूबेदार एकदम चौंका। उसने ‘परम पुरुषार्थ’ किया। अपने बाड़े के पिछवाड़े के बड़े द्वार में लगी खिड़की खोलकर वह जनाने के साथ भागा और बन्दरगाह पर लंगर डाले खड़े जलपोत पर चढ़कर उसने दरिया की ओर जाने की आज्ञा दी। जहाज में चैठने के बाद उसने काजी से कहा—

“खुद जनाव पैगम्बर मुहम्मद साहब को भी एक बार जंग का मैदान छोड़कर जाना पड़ा था न।”

काजी ने गर्दन हिलाकर कहा—

“हुजूर विलकुल दुरुस्त फर्मा रहे हैं। उसी को हिज्ज कहते हैं।”

“तब कोई बात नहीं, हमारा भी हिज्ज जाहिर हो।”

“आमीन ! आमीन !!”

स्वयं सूवेदार ‘हिज्ज’ कर भाग गया। फिर भी कुछ ईमानदार योद्धा थे ही, उनमें से कुछ कट गये, वाकी ने मराठों की सेना का ठीक अनुभान न होने के कारण चुपचाप शस्त्र रखकर हाथ बाँध लिये।

सूर्योदय होने तक सारा स्थिर हो गया था। सूर्योदेव की प्रथम किरण उंदित होते ही कल्याण के लोगों ने देखा कि सूवेदार के बाड़े पर फड़कता हरा निशान नीचे आ चुका है और उसके स्थान पर भगवा ध्वज फड़क रहा है।

साथ ही समाचार आया कि भिवंडी भी जीत लिया गया है। दादाजी रांझेकर खाड़ी पार कर घोड़ों को दौड़ाते हुए भिवंडी की ओर निकले।

सामने से घोड़े पर बैठे सखों लोहोकर मस्तक पर कपड़ा बाँधकर आते हुए दिखे। मैंट होते ही दोनों ने ही घोड़ों पर से कूदकर एक दूसरे की कुशल-क्षेम पूछी। रांझेकर ने कपाल के घाव के विषय में पूछा तो लोहोकर ने उत्तर दिया—

“उँह, योड़ी सी खरोंच लगी है।”



राजा ने स्वयं देख-परखकर कारखाने के लिये स्थान निश्चित किया, खाड़ी के तट के समीप। उल्लास नदी खण्डाले गाँव के समीप सह्याद्रि के बीच पञ्चीस पुरुष गहरी खोह में कूदती है, दाहिनी ओर राजमाची दुर्ग उसको देखता हुआ किसी सिंह सा खड़ा है, उसी के आश्रय से खण्डाला के प्रसिद्ध पाषाण-शिल्प हैं, उन्हीं के समीप से उल्लास नदी बहती जाती है। अम्बरनाथ अपने उत्तुंग मन्दिर में प्राचीन समय से खड़े हैं। दूर से ही उनके चरणों को धोती उल्लास नदी आगे बढ़ती है तो कल्याण के पूर्व ही बालधुनी

नदी उसके गले में आकर मिलती है।

उल्लास नदी पावसकाल में भीठे और लाल-लाल पानी के ओघ के ओघ सागर में डालती है यह सत्य है, पर पावसकाल का वह आवेश घटने पर, किर सागर का खारा पानी ही उसमें आ घुसता है जो ठीक कल्याण के भी परे दो कोस तक चला जाता है। खुला सागर यहाँ से बहुत दूर है। खाड़ी की गहराई अधिक न होने पर भी अष्टमी की भरती के समय बड़े-बड़े जलपोत भीतर तक आते-जाते थे। सागर के मुहाने के समीप श्रीस्थान था। वह प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध वन्दरगाह था। कल्याण के समीप यह खाड़ी गाँव को छूती हुई ठाणे की ओर आगे बढ़ जाती है। उधर से वह मुंवरी पहाड़ी की ओर मुड़ती है। उसी मोड़ के निकट कल्याण गाँव को छूती हुई एक छोटी सी पहाड़ी है। उस पहाड़ी के आसपास प्राचीन तटबन्दी के खण्डहर थे। उसमें दुगदिवी का एक मन्दिर था। मन्दिर साधारण ही था, पर वहाँ की मूर्ति अत्यन्त सुन्दर, गण्डकी शिला की थी। उसके पदतल के नीचे था प्राणांतिक अन्तिम तड़फ करता महिषासुर, जीभ बाहर निकालकर दया की भीख माँगता। दुर्गा के हाथों के आठों ही शस्त्र अत्यन्त आवेश से उस पर तने हुए, लगता कि वस इसी क्षण वे सारे शस्त्र उस निशाचर के शरीर पर गिरे। माता के नेत्रों से चिंगारियाँ बरसती हुईं, मृकुटी तनी हुई, मूर्ति प्राचीन—यादवों से भी पूर्वकाल की।

खण्डहरों से प्रतीत होता या कि देवालय कभी विस्तीर्ण रहा होगा। कभी किसी मूर्तिभंजक ने घनों के आघातों से उसको छिन्न-भिन्न किया होगा। पुनः कभी किसी भक्त ने उसी स्थान पर छोटा सा मन्दिर खड़ा किया होगा। दुर्ग के सामने ही थी महादेव की शालुंका।

राजा शिवाजी की आज्ञा से तटबन्दी का काम प्रारम्भ हुआ। चारों ओर के श्रमिक अच्छी आजीविका की आशा मे कल्याण के आसपास आ जुटे थे।

कल्याण के प्रदेश में राजा ने आवाजी सोनदेव को सूबेदार नियुक्त किया और उनकी सहायता के लिये देशमुख बाजीराव ननावरे को दिया था।

देशमुख ननावरे को तटबन्दी के पीछे खुले स्थान पर आरमार के

कारखाने का काम प्रारम्भ करने का आज्ञापत्र मिला था।

सैकड़ों श्रमिक तटबन्दी के उन खण्डहरों को उतारने के काम में जुटे थे। वहाँ का कुछ भाग खाड़ी के पानी से नीचे धसक गया था, वहाँ तटबन्दी को नींव तक खोदकर उसमें भराव डाला जा रहा था।

आवाजी और बाजीराव, दोनों ही घोड़ों पर बैठकर तटबन्दी के पीछे खुले स्थान को देख-परख रहे थे। वहाँ की भूमि ऊसर ही थी। कुछ उपजाऊ भूमि भी थी, पर वह अधिक नहीं थी। वहाँ कारखाने का सारा विस्तार करने की योजना हो रही थी। बाजीराव और आवाजी वहाँ से लौटने ही चाले थे कि तभी पसीने से भीगे हुए भागते-दीड़ते कुछ श्रमिकों को उन्होंने अपनी ओर आते देखा। आवाजी ने घोड़े की बत्ता खींचते हुए कहा—

“क्या हुआ, समझ में नहीं आता।”

बाजीराव ने शंका की—“नींव खोदते हुए नीचे कुछ मिला तो नहीं ?”

निकट पहुँचते ही उन चारों ने अपनी भाषा में इतना हल्ला सा मचा दिया कि कुछ समझना ही सम्भव नहीं हो रहा था। सूवेदार ने रुष्ट होते हुए सभी को कहा—

“पहले सभी चुप हो जाओ, एकदम चुप ! हाँ, अब एक-एक करके बताओ।”

तब एक बूढ़े ने बताया—

“हम सभी खोद रहे थे, ये बड़े-बड़े पत्थर, जी।”

“ठीक है, यह हम जानते हैं। आगे बताओ।”

“खोद रहे थे तो……।”

तभी दूसरे ने आगे बढ़ते हुए कहा—

“तू चुप हो जा, मैं बताता हूँ। मैं सारा कुछ बताता हूँ, स्वामी ! हाथों में फोड़ हो उठे।”

“अरे, यह सब सही है, पर क्या मिला वहाँ ? क्या निकला ?”

चारों ने एक साथ बताया—

“क्या है वहाँ, यह तो पता नहीं, पर एक तलधर निकला है। तब हमने काम बन्द किया और इधर भागे……।”

आबाजी और बाजीराव घोड़ों को दौड़ाते हुए तटबन्दी के समीप पहुँचे। वहाँ तलघर के आसपास सारे श्रमिक पुरुष और स्त्रियाँ इकट्ठे होकर कल-कल कर रहे थे। कामदार उनको गालियाँ देकर रोक रहा था। इन दोनों को देखते ही सभी को एक और कर उसने आगे बढ़ते हुए बन्दन किया और कहा—

“तलघर मिला जी।”

दोनों ने ही घोड़ों से उतरकर सारा स्थान देखा। अभी तलघर का मार्ग पूरा खुला नहीं था। उसे और अधिक साफ करने की आवश्यकता थी। तभी दो-चार समझदार श्रमिक खन्तियाँ लेकर दौड़े और कुछ ही क्षणों में उन्होंने तलघर के ऊपर का मलबा साफ कर दिया। भीतर चार सीढ़ियाँ थीं और बाद में वह छोटी सी सुरंग पहाड़ी की ओर मुड़ गयी थी।

बाजीराव ने एक बार सूबेदार की ओर देखा और नीचे उतरने के लिये सीढ़ी पर पैर रखा। सूबेदार ने कहा—

“एकदम आगे पैर न बढ़ाओ।”

बाजीराव ने दूसरा पैर आगे बढ़ाकर कुछ झुककर नीचे देखते हुए कहा—

“देखता हूँ, यह सुरंग भीतर कितनी दूर तक गयी है।”

घोड़ी देर तक झुककर देखने के बाद दृष्टि कुछ सघने पर बाजीराव को लगा कि भीतर मोड़ पर सुरंग दो-तीन हाथ तक ही गयी है। एक सीढ़ी और नीचे उतरकर बाजीराव ने कहा—

“सुरंग छोटी सी ही है जी।”

बाजीराव नीचे की दोनों सीढ़ियाँ उतरकर भीतर गया और आनन्द से भरकर झट से बाहर आया।

सूबेदार ने पूछा—

“क्योंजी ! क्या है भीतर ?”

सूबेदार का हाथ दबाते हुए उसने कहा—

“आप स्वयं देखिए, तभी ठीक होगा।”

वे दोनों ही भीतर गये। वहाँ मुँह लाख से बन्द किया चीनी माटी का एक बड़ा सा कुठीला कोने में रखा था। दोनों ही कुछ क्षण स्तम्भित

होकर वैसे ही खड़े रहे। एकाएक बाजीराव ने कहा—

“जय दुर्गा देवी !”

फिर उसने उस कुठीले को हिलाने का प्रयत्न किया, वह भारी था। कुठीला योड़ा सा हिला, भीतर से खनखन की आवाज आयी। बाजीराव ने पीछे मुड़कर सूबेदार का दण्ड पकड़कर कहा—

“यह है, आरमार के काम का सगुन !”

—

स्वर्णमुद्रा से भरे उस कुठीले की अगवानी करने राजा आगे बढ़े।

राजगढ़ के पाली दरवाजे में वे आकर खड़े थे। उनके पीछे बाजीराव था। आठ भोई उस कुठीले को पालकी में डालकर दुर्ग पर चढ़ा रहे थे। राजा ने बाजीराव से कहा—

“उन्हें बताओ, कोई शीघ्रता नहीं है, आराम से आगे बढ़ो !”

बाजीराव ने भोइयों को आवाज दी, कहा—

“धीरे-धीरे आने दो जी, भागा-दौड़ी करने की आवश्यकता नहीं है !”

राजा ने प्रसन्नता से बाजीराव की ओर देखकर कहा—

“ननावरे, तुम्हारे हाथों में यश है !”

संकोच से बाजीराव ने कहा—

“आपका स्पर्श ही पारस जैसा है राजे ! नहीं तो हम लोहे के गोले से वहाँ व्यर्थ से पड़े ही थे !”

“यह किसकी माया है, जानते हो ?”

“किसकी ?”

“हमारी वहिन जानकी की तपस्या का ही यह फल है !”

अब तक सारी शक्ति लगाकर और ‘हाँ-हूँ’ करते हुए भोइयों ने वह कुठीला ऊपर तक ला पहुँचाया। एक दासी ने आगे बढ़कर कुठीले के ऊपर से रोटी का टुकड़ा उतारकर दुर्ग के तट के पीछे केंक दिया और हाथ के लोटे का पानी उसने द्वार पर मार्ग में छिड़का। उस पर से चलते हुए भोइयों ने वह कुठीला भीतर लाकर बाजीराव के बताये चबूतरे पर रख दिया। राजा उसके समीप गये। तब तक अण्णाजी दत्तो आ उपस्थित हुए। आते ही उन्होंने देरी का कारण बताया—

“हाथ में लिया काम पूरा कर रहा था……”

राजा ने उस कुठीले को निरखते हुए पूछा—

“कितना पुराना होगा ? यह इस देश का वना तो निश्चित ही नहीं है ।”

“जी, स्वामी का अनुमान एकदम सही है । यह गढ़ाई पश्चिम की है ।

“इस पर के चिह्न ही बता रहे हैं—यह रंग, यह दमक और यह रचना, सब देखकर लगता है यह कुठीला ईरानी होना चाहिए ।”

“स्वामी ने मेरे ही मन की बात कह दी ।” कुठीले के ऊपर लगी लाख परखते हुए अण्णाजी ने कहा—

“यह तो ऊपर चपड़ी की लाख दिखती है……”

“पीपल की ?”

“जी ! इस पर उठी मुद्रा अस्पष्ट सी है । उस पर से कोई बोध नहीं हो रहा ।”

अण्णाजी को संकेत से रोककर राजा ने भोइयों से कहा—

“भोई, हो ! बहुत बड़ा काम किया है तुमने । थक गये हो । जाओ और कोठी वाले को कहो कि चावल, धी और गुड़ का सीधा, सभी को ढाई-ढाई सेर देने को कहा है । या, ऐसा करते हो ?—आज मुदपाक में ही थाली पर आओ ।”

हर्षित होकर भोइयों ने कहा—

“तब तो गंगा-लाभ ही हुआ ।”

राजा ने फिर से अण्णाजी की ओर मुड़कर कहा—

“अण्णाजी, हम समझते हैं……”

“कहिए स्वामी !”

“इस पर जो अक्षर दिख रहे हैं, वे अरबी, फारसी जैसी उल्टी लिपि के नहीं हैं ।”

“सही अनुमान है, मुद्रा इसी देश की लिपि में है, बहुधा देवनागरी लिपि में ही है ।”

“हो सकता है ।”

कुठीले को चारों ओर से देखते हुए राजा ने कहा—

“चलो, सदर पर ही ले चलो।”

भोइयों ने कुठीला उठाया और उसे सदर पर पहुँचा दिया। राजा स्वयं के ही विचारों में खोये से धीरे-धीरे जा रहे थे। मार्ग में अनेकानेक लोगों के बन्दन को स्वीकार करते हुए वे सदर की ओर गये। सदर के सामने एक चबूतरा था, राजा उस पर बैठ गये। उस चबूतरे पर पीछे टिकने के लिये एक सुन्दर, घुटा हुआ पत्थर था, उस पर रेलकर राजा विचारों में खो गये।

ढलती धाम पहाड़ी की तलहटी में धीरे-धीरे उत्तरकर खो रही थी। दुर्ग की छाया आसपास की झाड़ी पर फैल रही थी। राजा का इस ओर ध्यान नहीं था। वे अपने में ही खोये-खोये से बैठे थे। परिचर ने बन्दन करते हुए कहा—

“जी, माँ साहिवा।”

यह सुनते ही राजा झट से खड़े हुए। दुर्ग के अन्तर्भाग से माँ साहिवा धीरे-धीरे सदर की ओर आ रही थीं। उनके पीछे दो दासियाँ थीं, एक के हाथ में जरी का शेला था, दूसरी के पास बैठने का ऊन का आसन और एक रोली का करंडक था। हाथ की काठी टेक-टेककर माँ साहिवा सदर के पीछे की ढजान उत्तर रही थीं। अकाल वार्द्धक्य माँ साहिवा के मुख पर उत्तर आया था। उनके भाल का कुंकुम तिलक आदिलशाही की तश्तरी में किसी भी क्षण गिरने वाला था। इसी चिन्ता से माँ साहिवा का अन्न-जल छूट गया था। वे एकदम यक्षी गयी थीं। शाहजी राजा को आदिल शाह ने कारागार से मुक्त किया था, फिर भी माँ साहिवा के मन का हेतु पूरा नहीं हुआ। एक बार स्वामी को आँखों भर देखने की उनकी इच्छा थी। उनके चरणों को आँसुओं से धोने की मन में आस थी। वह कुछ भी अब तक घटित नहीं हुआ था। असमय में ही केशों पर सफेदी उत्तरने लगी थी। मुख का तेज क्षीण नहीं हुआ था, फिर भी उसमें किंचित् पाण्डुरता दिखने लगी थी।

राजा ने आगे बढ़कर माँ साहिवा को प्रणाम किया। उनके मुख का स्पर्श करके अपनी अंगुलियों को चूमकर माँ साहिवा ने कहा—

“क्या मिला है, शिववा? कहाँ मिला?”

“कल्याण में एक कुठीला मिला है।”

“कल्याण ही है वह। उसने तुम्हारा कल्याण किया, इसमें आश्चर्य नहीं। खोला उसे?”

“आपका स्पर्श हो, फिर खोलें, इसीलिये तो आपको बुलावा भेजा था।”

“वह के पास बैठी थी, इसलिये कुछ देर हो गयी। कोई प्रसिद्ध वैद्य-हकीम ढूँढ़ो उसके लिये। सई का मुख अब देखने का साहस नहीं होता। बालक इतना बड़ा कि नजर लगे ऐसा। उसके निकट पहुँचूँ तो मेरे गले में हाथ डालकर कहती है ‘माँ ! यह पूत तो अब आपका’।”

राजा ने उसांस ली। दोनों ही जानते थे कि उपचार में किसी भी प्रकार की कमी नहीं थी। जहाँ अदृष्ट में लिखा आयुष्य ही क्षीण हो रहा हो, वहाँ “वैद्यो नारायणोहरिः”। माँ साहिवा ने आगे बढ़ते हुए पूछा—

“यह कुठीला किसे मिला ?”

“आपके दामाद बाजीराव देशमुख को।”

बाजीराव ने आगे बढ़कर प्रणाम किया। उसको आशीष देते हुए कीरुक से देखकर माँ साहिवा ने कहा—

“हमारी लड़की है ही शगुन की। पर थोड़ा ध्यान उसकी ओर भी देते रहो देशमुख ! बिटिया छिपकली सी सफेद हो रही है। क्या हो रहा है, पूछने पर क्षीण सी हँसी हँस देती है। व्रत-उपवास इतने ले रखे हैं। हमारी इतनी आयु हो गयी, हमें भी उसकी ओर देखकर संकोच होने लगता है।”

बाजीराव का मन भीतर से डर गया। फिर भी ऊपर से हँसते हुए उसने कहा—

“कोई-कोई इसी प्रकार हठी होते हैं, माँ साहिवा। अब जो आपकी बात नहीं मानती, वह मेरी सुनेगी ?”

माँ साहिवा के मुख पर चिन्ता के मेघ घिर आये। अत्यन्त निग्रह से चिन्ता के उन बादलों को एक ओर सारकर माँ साहिवा ने कहा—

“कहाँ है वह कुठीला ? देखूँ।”

राजा आगे बढ़े और माँ साहिवा को सदर की सीढ़ियाँ चढ़ने में

सहारा देते हुए उन्होंने कहा—

“मन में विचार आता है कि जिसने गढ़ी बनवायी, उस सामन्त ने...”

माँ साहिबा ने उस कुठीले को निरखते हुए कहा—“शिववा, हमें भी यही लगता है कि तुम्हारा अनुमान सही है। इसे अभी खोला नहीं है?”

“आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा है। आप प्रत्यक्ष लक्ष्मी हैं।”

माँ साहिबा ने उदास हँसी हँसकर कहा—

“राजलक्ष्मी ऐसी कि वरसों स्वामी का दर्शन न हो। दूसरी तुम्हारी लक्ष्मी, वह किले के अन्दर राजमहल के हमारे बाड़े में शरपंजर पर पड़ी है। ठीक ही है, जगत्कर्ता जैसे रखते वैसे ही रहना पड़ता है।”

माँ साहिबा ने दासी के हाथ से कुंकुम का करंडक लिया। उसमें से कुठीले पर कुंकुम चढ़ाया। उसे बंदन कर उन्होंने कहा—

“खोलो इसे। देखो, भीतर क्या है।”

कारीगर ने अपने उपस्कर से उस कुठीले का ऊपरी लाख का आवरण हलके से निकाला। उसके नीचे जमाया ढक्कन इसी देश की गढ़ाई का था। उसे उचटाकर निकाल वह राजा की ओर देखने लगा। राजा ने आगे बढ़कर क्षणभर भीतर झाँककर देखा, फिर दोनों हाथ भीतर ढालकर अँजुरी भरकर बाहर निकाली। उनकी अँजुरी में सोने की मुद्राएँ दमक रही थीं। उनको निरखकर राजा ने कहा—

“माँ साहिबा ! यह विवराज का सुवर्ण है। ये मुद्राएँ बोल रही हैं। पश्चिम-तट-चक्रवर्ती श्रीविवदेवराय का रखा हुआ यह कुठीला है।”

माँ साहिबा क्षीण हँस दीं। राजा ने पूछा—

“क्या हुआ ?”

“हुआ कुछ भी नहीं। पुराणिक वावा कल-परसों ज्ञानेश्वर महाराज का अनुभवामृत-ग्रंथ पढ़ रहे थे। उसकी एक ओवी मन में आयी।”

“हमें भी बताइए।”

“ज्ञानेश्वर माउली कहती है—नाग, मूद, कंकण, ऐसे सुवर्ण के अलंकार गढ़कर उनको नाना नाम दिये, फिर भी अन्त में वह है सुवर्ण का सुवर्ण ही। ये सुवर्ण-मुद्राएँ किसी भी राजकुल की क्यों न हों, अरवी-फारसी हों या गुजरादेशी, इससे सोने में कुछ न्यूनता नहीं आती।”

□

दुर्ग पर रात उत्तर आयी। दो घड़ी बाद दुशाला ओढ़कर राजा बाड़े में से सदर की ओर निकले। साथ में वाजीराव को लिया था।

सचिव ने कहा—

“पत्र लिखकर तैयार है...”

“रहने दें! अब आप भी घर जा सकते हैं। कल प्रातः पत्र देखेंगे।”

परिचर मशाल लेकर आगे बढ़ा, उससे राजा ने कहा—

“इसकी आवश्यकता नहीं है।”

अंगरक्षक भालाईत पीछे-पीछे आ रहा था। उसे भी राजा ने कहा—

“देशमुख हमारे साथ हैं, अब तुम भी घर जाओ तो चल सकता है।...”

व्यों, तुम्हारे पुत्र का क्या हाल है?”

“जी, अब कुछ ठीक है।”

“ठीक है? तब अब जाओ।”

वह भी अपने घर लौट गया।

दस-बीस पग चलने पर राजा ने वाजीराव का हाथ अपने हाथ में लिया। उसे स्नेह से दबाया और उसे वैसे ही पकड़कर वे चलते रहे। शुक्ल पक्ष की अष्टमी की चाँदनी थी, राजा को देखकर राजसभागार के प्रहरी ने झुक्कर बन्दन किया। उसको स्वीकार कर राजा सामने के चबूतरे की ओर आगे बढ़ गये।

अब तक राजा के हाथ में वाजीराव का हाथ था। राजा के हाथ का स्नेहिल स्पर्श पाकर वाजीराव की आँखों में पानी भर आया। उसे उसने अत्यन्त प्रयत्न से दबाया। राजा की वह अंतरंग आत्मीयता बहुत-कुछ अनकहा कह गयी, कि, ‘हम दोनों ही समदुःखी हैं। मृत्यु से खेल चल रहा है। उसमें हम दोनों ही पराभूत होने वाले हैं। यह स्थापन किया जाने वाला हिन्दवी स्वराज्य, ये सारे दुर्ग, ये सारे कोष, यहाँ-वहाँ मिलने वाले मुद्राओं से भरे कुटीले और ये प्राणपण से साथ देने वाले सारे मित्र, इनमें से कोई भी सई रानी साहिवा के प्राण बचा नहीं सकता। और, जानकी का भविष्य?’

राजा चबूतरे पर चढ़कर बैठ गये। पीछे टिकने के लिये मृदु, शीतल

प्रस्तर था। उस पर कुछ टिककर राजा आसमन्त निरखने लगे। चबूतरे के पीछे दस-बीस पगों पर कगार की ढलान प्रारम्भ होती है। दीवाली के समीप की ऋतु थी, फिर भी कगार की वह सारी तलहटी जुगनुओं से भरी थी। समीप ही कचनार का वृक्ष खड़ा था, उस पर जुगनुओं का मेला सा लगा था, सारा वृक्ष जगमगा रहा था।

उसाँस लेकर राजा ने बाजीराव का हाथ छोड़ दिया और उसे भी चबूतरे पर बैठने का सकेत किया। कुछ समय मौन में ही बीत गया। दुर्ग के तटों पर धूमते पहरेदारों की पुकार के स्वर आ रहे थे। कुछ क्षणों पश्चात् अपने विचारों में से जैसे-तैसे बाहर निकलकर राजा ने बाजीराव से पूछा—

“हाँ, बाजीराव ! अब बताओ, तुम्हारे कारखाने का काम कैसा चल रहा है ?”

“आपने जो दिखाया था, वही स्थान निश्चित किया।”

“तट के उस ओर की ऊसर भूमि ?”

“जी।”

“उस भूमि को निश्चित करते हुए यह विचार था कि उसे लेने से किसी किसान को अन्न के लिये दूसरे का मुख नहीं ताकना पड़ेगा।”

“वहाँ एक-दो धान के भी खेत हैं।”

“उनमें धान कितना होता है ?”

“थोड़ा सा, उस किसान से वह खेत खरीद ही लिया।”

“आसपास बाड़ बनानी पड़ेगी।”

“जी।”

“कोंकण में घाटमाथे जैसी बबूल की बहुतायत नहीं है, यह एक कमी खलती है।”

“जी। खंटे गाड़कर काटे हुए वाँस ठोककर बाड़ बन सकती है।”

“आज मुख्य आवश्यकता उत्तम कारीगरों की है।”

“जी।”

“आराकस भी तो चाहिए।”

“जी। आराकस घाटों के भी चल सकते हैं।”

“पर कारखाने के काम के लिये घाट पर काम करने वाले बढ़ियों से काम चलेगा नहीं।”

“ओजारों को चलाने की भी एक कला होती है। उसमें एक बार हाथ के जम जाने के बाद जो चाहें वह बन सकता है।”

“इसमें कुछ दिन और लगेंगे, पर एक बार वह विद्या ध्यान में आ गयी तो फिर अपनी घाटियों के बढ़ई भी जैसे हमें चाहिए वैसे जलपोत बना सकेंगे।...आप क्या सोचते हैं?”

“जी।”

“लकड़ी लाने के लिये कौन-कौन रवाना हुए हैं?”

“एक मायनाक है, महाराज ! वह व्यक्ति बहुत दुर्धर्ष है।”

“अच्छा।”

“सारे मल्लाह, माँझी और मछुए उसके आसपास जुड़ गये थे, उसकी मित्रमण्डली भी दूर तक पहुँची हुई है।”

“कुछ विशेष ?”

“वह एक मुसलमान को लेकर आया था, उसका नाम इमरानखान बताया और कहा कि वह भी उसी के समान जानकार है, पर दौलतखान के समान कुलवन्त। दोनों के बापदादों को बलात् भ्रष्ट किया गया था। उनके घरों में आज भी कोंकण की देवताओं की पूजा होती है। उनका कोई हिन्दू भाई मरा तो वे आज भी सूतक मानते हैं। वह भी भला मानुष लगा हमें।”

“आयु से कितना बड़ा है ?”

“मायनाक से दस-पन्द्रह वर्ष बड़ा है। मायनाक का कहना है कि वे दोनों दरिया के मच्छों जैसे; सारा दरिया साफ रहता है, कहीं भी बादल का नामोनिशान नहीं रहता, तूफान का भी कुछ चिह्न नहीं दिखता, पर इन दोनों को भी क्या गंध आती है न जाने। वे ठीक-ठीक बता देते हैं कि आज सन्ध्या को तूफान आयेगा। ये दोनों ही, जहाज बन्दरगाह पर लाकर लगा देते हैं और कुछ ही क्षणों में दरिया में तूफान उठ जाता है।”

“तब मायनाक, इमरानखान और दौलतखान तीनों ही गये हैं ?”

“जी।”

“मालवाही जलपोत किस-किसके हैं ?”

“दो मायनाक के थे, एक दौलतखान का और इमरानखान के भी दो। और दरियासारंग नाम का कोई खानदानी और सच्चे व्यवहार का व्यक्ति है, उससे भी मायनाक की बातें हो गयी हैं। वह रहने वाला जयगढ़ की ओर का है, उसे भी वे साथ लेने वाले हैं। ऐसा पूरा एक काफिला हो गया है। उनके साथ दौलतवंकी पैसे लेकर गये हैं।”

“कार्तिक समाप्त होकर अगहन प्रारम्भ हो गया है। इसका अर्थ हुआ, अभी छः-सात मास अपने पास हैं।”

“आप चिन्ता न करें, लकड़ी आ पहुँची कि काम प्रारम्भ हो जायेगा। तब तक नावों और डोंगियों का काम चला रहा है।”

“उसके लिये लकड़ी कहाँ की है ?”

“इस क्षेत्र में आम पर्याप्त है, कटहल भी बहुत है, ये लकड़ियाँ बड़े जलपोतों के काम की नहीं, पर छोटी-छोटी नौकाएँ बन सकती हैं।”

क्षणभर रुककर राजा ने स्नेह भरे शब्दों में कहा—

“देशमुख, उन वृक्षों को हाथ मत लगाओ।”

“पर……”

“ऐसा सोचो, लोगों ने ये वृक्ष लगाये, वच्चों का सा इन पर स्नेह कर इनको पाला, बढ़ाया। इन वृक्षों को तोड़ने से उनको बहुत दुःख होगा।”

“खरीदने पर भी ?”

“सुनो। किसी को दुःख देकर कोई कार्य करने जाओगे, तो वह काम किस लाभ का ? इससे प्रजापीड़न का दोष भी हम पर आता है। इसलिये यह काम तो विलकुल मत करो।”

“पर, देर होगी।”

“होने दो। ये वृक्ष भी आरमार के काम के हैं, यह सही है, पर एक बार वृक्ष तोड़ने पर ये वृक्ष वर्ष-दो वर्षों में खड़े नहीं होते, साथ ही जंगल उधाड़ा हो जाता है, सारा प्रदेश वीरान सा हो जाता है और प्रदेश की रक्षा करने की बात अधूरी ही रह जाती है।”

“जैसी आज्ञा, नहीं तोड़ेंगे।”

“आपको तो पटल, डांडे, पतंगे, ऐसी वस्तुएँ बनाने के लिये ही लकड़ी की आवश्यकता है। या नहीं? वह काम आम और कठहल से होता है?”

“जी, उसके लिये तो सागवान चाहिए।”

“हाँ, तो सागवान भी दूसरे प्रदेश से खरीदकर लाना चाहिए।”

“जी।”

“और आवश्यक ही हो गया तो किसी सूवेदार की अनुमति लेकर वृक्ष तोड़ना चाहिए। सागवान तो अपने भी पहाड़ों के जंगल में होंगे?”

“जी, बहुत।”

“पर यह भी ध्यान रहे कि एक बार जंगल की कटाई होने पर दुबारा सागोन की पौध लगनी ही चाहिए, उसके बिना जंगल खाली नहीं पड़ने देना है।”

फिर राजा ने सामने खड़े जुगनुओं से जगमगाते कचनार की ओर देखकर कहा—

“देशमुख! यह वृक्ष देखो, चारों ओर से भरा-भरा सा दिख रहा है।”

“जी।”

“इसकी कोई भी शाखा जुगनुओं के बिना होती तो इसकी सुन्दरता घट जाती।”

“जी।”

“उसी प्रकार आरमार भी एक राज्यांग ही है। वह किसी भी ओर से रीता नहीं रहना चाहिए। समझे देशमुख?”

आश्चर्यचकित होकर देशमुख यह सब सुन रहे थे, उन्होंने कुछ संकोच से कहा—

“जी……”

“कुछ पूछना है? पूछो भी।”

“कुछ नहीं, पर मैं सोच रहा था……”

“क्या?”

“घर में रानी साहिवा की रुणता, और यह सब सोचाजा सकता है? उसमें भी इतनी बारीकी!”

ठण्डी हवा चल रही थी, राजा ने शाल ठीक कर ली और हँसकर बाजीराव से कहा—

“क्यों, रावजी, ठण्ड नहीं लगती ?”

“जी, नहीं ! अंगे के भीतर बंडी पहन ली है।”

“देशमुख ! अत्यन्त सावधान रहना है। हमारा कारखाना नवीन है, चारों ओर से बाधाएँ आयेंगी, उन सभी को साहसपूर्वक दूर करना है।... और, कीलों के लिये भी तो लोहा लगेगा।”

“जी !”

“उसका क्या करोगे ? टोपकर सूरत में हैं ही, उनसे मँगाओगे या मनोल साहब को बताकर...?”

“जी, मनोल साहब भी एक एकांडा शिलेदार ही है। कल-परसों अपनी तरनी लेकर कल्याण पर उत्तरा, बोला कि तुम्हारा यह सारा काम जब प्रारम्भ हो, तब मुझे बताना। अब उसे कहाँ ढूँढ़ा जाये ?”

“उसे ढूँढ़ने की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी देशमुख, वह स्वयं ही उपस्थित होगा। ठीक है, चौल के फिरंगियों के गोदामों में देखो, जहाँ से दाम कम पड़ेंगे, माल अच्छा मिलेगा और तत्काल मिलेगा, वहाँ से खरीदो।”

“जी !”

“और लुहार ? गाड़िया लोहकारों का एक नाईक छः-आठ दिन पहले यहाँ आया था। काम माँग रहा था। वे सभी वीरा नदी के तट पर पाल ठोक रह रहे हैं। चाहो तो उनको भेजूँ ?”

“जी !”

“और यह भी देखो, व्यर्थ में बड़े-बड़े दस और बीस पालों के जलपोत बनाने की आवश्यकता नहीं है। एक-दो ऐसे जलपोत केवल कौतुक के लिये ही ठीक हैं। आरमार कैसा होना चाहिए ? अपने घोड़ों की सेना सा। न बहुत बड़े न बहुत छोटे, ऐसे ही गुरावे बनाइए। जैसे काम सधे, वैसा करो। लकीर के फकीर मत बनो। मायनाक और दौलतखान, ये लोग इसके जानकार हैं। उनके कहने के अनुसार तरांडी, सिवाड़, पगार, मचवे, संग-मिरी, फरगाटी, फत्तेमारी, तिरकटी, बड़ी मालवाही नौकाएँ और महा-

गिरि, ऐसा सारा आरमार सजना चाहिए, आपने सब ध्यान में लिया ही होगा।”

“जी।”

“आरमार की नौकाएँ चपल होनी चाहिए, जब चाहें तब पाल फैलाकर शत्रु पर टूट पड़ें और पीछे हटने की आवश्यकता पड़ने पर पालों के पंख समेटकर देखते-देखते ओझल हो सकें, ऐसी।”

“जी।”

“एक ओर जलपोत बनाते रहें और दूसरी ओर उस पर उपयोग के लिये सैनिक जंबूरे, वन्दूकें, कडाविनी, होके इन सबकी भी व्यवस्था करें। अन्यथा होगा क्या कि नौकाएँ तो तैयार हो जायेंगी और इस सारे साज-सामान के बिना हाथ पर हाथ घरे बैठना पड़ेगा।”

“जी।”

देर तक राजा चुप रहे, फिर उन्होंने एकाएक पूछा—

“दौलतखान और इमरानखान, दोनों ही मुसलमान विश्वास के और भरोसे के तो हैं? या कहीं दूसरों जैसे ही उद्धण्ड और उन्मत्त तो नहीं?”

“नहीं धनी। दौलतबंकी कह रहे थे कि दोनों ही साफ और नेक भनुष्य हैं। कुरान हाथ में लेकर सौगन्ध खायी है उन्होंने।”

“ये सारे ही लकड़ी लाने गये हैं?”

“जी।”

“सिंही के जंजीरे के पास से लौटना पड़ेगा।”

“जी।”

“देखेंगे, लौटने पर मिलने के लिये उनको दो-चार दिन के लिये इधर भेज दो, हाथों-हाथ परीक्षा हो जायेगी।”

थोड़ी देर बाद राजा ने पूछा—

“माहुली किला कल्याण से निकट ही है, या नहीं?”

“जी, होगा लगभग आठ-दस कोस दूर।”

“उस किले पर मुगल सेना है। उस ओर से आपदा आ पड़ने का डर है।”

“यह तो सही है।”

“सोचो, बाजीराव! माहुली के बाद उस ओर के प्रदेश पर आदिल-

शाही की सत्ता उतनी सुदृढ़ नहीं है। उत्तर में जब्हार की ओर कोली राजा राज्य कर रहा है। इसलिये माहुली किला जीत लेने पर अपना कारखाना निष्कंटक होगा।”

“ठीक है।”

फिर से राजा किसी विचार में डूब गये। क्षणभर पश्चात् उठकर बाजीराव का हाथ अपने हाथ में लेकर राजा ने कहा—

“राव ! बहुत सावधान रहो, ध्यान रखो कि तुम एक नये राज्यांग को खड़ा कर रहे हो। ठीक है, अब तुम किले में जाओ। माँ साहिबा के बाड़े में जानकाई तुम्हारी राह देख रही है।”

इतना कहकर राजा ने सदर पर खड़े एक प्रहरी को बुलाया और कहा—

“राव को माँ साहिबा के महल तक पहुँचा आओ।”

—

बाजीराव अपने ही विचारों में माँ साहिबा के बाड़े तक पहुँचा। एक दासी ने आगे बढ़कर बाजीराव को जानकी की कोठरी तक पहुँचाया। बाजीराव के भीतर आते ही जानकी द्वार उढ़काकर लौटी। जानकी कभी से बाजीराव की प्रतीक्षा कर रही थी। बाजीराव के पास लौटकर जानकी बाजीराव के कुड़ते के बन्द खोलने लगी। अब तक बाजीराव ने सिर की पगड़ी उतार ली थी, उसे हाथ में लेकर जानकी ने उसे खूंटी पर रख दिया, जानकी के मुँह की ओर देखकर बाजीराव ने कहा—

“मैं रख दूँ ?”

जानकी, विना कुछ बोले, बाहर गयी, दूध से भरा छोटा गड़वा लेकर लौटी और उसने द्वार भीतर से बन्द कर लिया। बाजीराव कपाल पर हाथ आड़ा रखकर विछावन पर लेटा पड़ा था। जानकी के लौटते ही वह झट से उठ बैठा। जानकी उसे दूध का गड़वा देने लगी। बाजीराव ने जानकी के मुँह की ओर देखते हुए गड़वा लिया, उसे एक ओर रखकर जानकी का हाथ अपने हाथ में लेकर उसे अपने पास बिठाया और उसका मुँह ऊपर उठाते हुए ममतापूर्वक पूछा—

“एक बात बताओगी मेरे माथे पर हाथ रखकर ?”

जानकी ने चुप होकर गरदन झुका ली ।

बाजीराव ने फिर से उसका मुँह ऊपर उठाया और उसे ठीक से निरखने लगा ।

माँ साहिबा ने जो बताया, वह सही ही था । जानकी वास्तव में सफेद सी पड़ गयी थी । उसे बाँहों में लेते हुए बाजीराव ने कहा—

“मैं क्या पूछ रहा हूँ ?”

जानकी ने जैसे-तैसे कहा—“जी ।”

“बताओ भी, तुम्हें क्या हो गया है ?”

बाजीराव के कन्धों पर अपने दोनों हाथ रखकर जानकी ने कहा—

“अब कुछ नहीं हो रहा है, अब एकदम अच्छी हूँ मैं ।”

“मैं इस क्षण की बात नहीं कर रहा ।... तुम इतने ब्रत और उपवास क्यों करती हो ?”

“प्राणपति के हाथ की तलवार म्यान से निकलकर शत्रुओं के द्वारा खटखटाने निकली हो तो घर की लक्ष्मी और क्या करेगी ?”

जानकी का उत्तर एकदम सही था । इस पर बोलने के लिये बाजीराव को अवसर ही नहीं था । जानकी का मस्तक अपनी छाती पर टिकाकर उसे थपथपाते हुए बाजीराव ने कहा—

“और क्या करना चाहिए ? राजा को देखती हो तुम ? इतना पृथ्वी-मोल का मनुष्य शत्रुओं के पीछे खड़ग की धार पर दीड़ रहा हो, तब मैं क्या घर बैठूँ ?”

“ऐसा कौन कहता है ?”

“तो तुम्हें हमारे काम के विषय में कुछ भी शिकायत नहीं है ?”

जानकी ने गरदन हिलाकर मना किया ।

“पर, तुम ऐसे सूखती जा रही हो, तब हम क्या समझें ?”

क्षीण सी हँसी हँसकर जानकी ने कहा—

“ब्रत और उपवासों से कोई सूखता है, ऐसा किसने बताया ?”

चकित होकर उसकी ओर देखते हुए बाजीराव ने कहा—

“याने तुम जो ऐसी पीली पड़ती जा रही हो, वह सब ब्रतों और उपवासों से नहीं हुआ है ?”

जानकी ने फिर से एक बार गर्दन हिलाकर मना किया। बाजीराव ने उसके केशों में हाथ फेरते हुए अत्यन्त स्नेह से पूछा—

“तब, कौनसा रोग है? माँ साहिबा पूछती हैं, उनको भी कुछ बताती नहीं।”

जानकी ने बाजीराव की चौड़ी छाती में मुँह छिपा लिया, बोली कुछ भी नहीं।

बाजीराव ने उसे फिर से सामने करके पूछा—

“ऐसे मुँह छिपाने से चलेगा नहीं, सब कुछ स्पष्ट शब्दों में बता दो।”

आँचल ठीक करते हुए जानकी ने कहा—

“वैसा बताने योग्य कुछ है ही नहीं। क्या बताऊँ?”

“पर फिर भी कहीं कुछ दुःखता हो, कहीं कुछ बाहर की हवा…?”

उसे टोककर जानकी ने कहा—

“ऐसा कुछ मन में नहीं लाना चाहिए। माँ साहिबा साक्षात् माँ जगदम्बा हैं, उनके स्नेह की छाया में मैं यहाँ रहती हूँ, मुझ तक बाहर की हवा आ ही कैसे सकती है।”

“तब? विना कुछ बताये हम कैसे समझें कि क्या हुआ है?”

कुछ क्षण रुककर जानकी ने छाती पर बायीं ओर हाथ रुककर कहा—

“यहाँ दुःखता है कभी-कभी, पर मेरी सौगन्ध है, माँ साहिबा को यह कुछ भी मत बताइए। उनके आसपास पहले ही चिन्ता का दावानल जल रहा है। उन पर इस रोग का और बोझ न डालिए।”

डरकर बाजीराव ने पूछा—

“यह कब से दुःख रहा है?”

“हम सभी उस दिन वह कगार चढ़कर आये थे न, उस समय पहली बार दुःखा था।”

क्षणभर रुककर निश्वास डालकर बाजीराव ने कहा—

“हमें उस मार्ग से नहीं आना चाहिए था।”

“ऐसा नहीं। अजी न जाने कब का दुःख देह में रहा होगा, बाहर निकलने के लिये यह कारण मिला, बस।”

“और कोई ज्वर आदि ?”

“वैसा कुछ नहीं।”

“फिर भी शरीर कभी कुछ तपता होगा ?”

“रात को कभी-कभी मुँह कड़वा होता है।”

कुछ समय तक वाजीराव चुप रहा। जानकी ने शान्त होकर कुछ निश्चय सा करते हुए कहा—

“देखिए, आप मेरी कुछ भी चिन्ता न करें। माँ साहिवा मेरे लिये इतना करती हैं। इतना तो कोई अपनी बेटी के लिये भी नहीं करता।”

“तुम मेरे साथ कल्याण चलोगी ?”

“वहाँ भी आपके पीछे-पीछे मेरी चिन्ता किसलिये ? एक ही चिन्ता बहुत है।...हाँ, मेरा एक काम अवश्य कर दें।”

“क्या ?”

“मेरा भाई है वहाँ, मायनाक।”

“हाँ है। फिर ?”

“मैं राखी देती हूँ, उसके हाथ में देना और कहना...।”

“क्या ?”

“मेरा सौभाग्य-कुकुंम तुम्हारे हवाले है।”

कुछ हँसकर वाजीराव ने कहा—

“तुम स्त्रियों का यह काम बहुत सरल होता है, किसी को भी भाई की सौगन्ध देकर कोई भी बोझ उसके सिर पर डाल देती हो।”

“ऐसा क्यों ? उस दिन उस क्षण नीचे और ऊपर केवल आकाश था। और हाथ में भी उस वृक्ष की अंगुली जितनी एक जड़मात्र। वहाँ उस समय हमारा यह नाता जुड़ा था।”

वाजीराव जानकी का मस्तक अपनी छाती पर रखकर पड़ा रहा। उसे जानकी के उष्ण श्वास मात्र अनुभव हो रहे थे। कुछ क्षणों बाद उसने कहा—

“अभी-अभी कुछ देर पहले एक वात मेरे ध्यान में नहीं आयी।”

जानकी ने बुद्धुदाते हुए पूछा—

“कौन सी ?”

“सायंकाल स्वयं राजा ने मेरा हाथ पकड़कर दबाया था कसकर, जैसे वे कुछ कहना चाहते थे, पर बोले कुछ भी नहीं। इस समय अब मुझे उसका सारा अर्थ समझ में आ गया।”

“क्यों?”

“दोनों की ही नौकाएँ डूबने को हैं। उनकी भी और...”

जानकी ने अपना मुँह कुछ ऊपर उठाते हुए कहा—“और मेरी भी।”

और उसी क्षण जानकी की आँखों से भर-भर आँसू भरने लगे, बाजीराव की चौड़ी छाती उन भरते उष्ण विन्दुओं से आर्द्ध हो गयी।

□

सागर शान्त था। हवाएँ मानो थीं ही नहीं। केवल डांडों पर और पतिंगों पर प्राणों की सारी शक्ति लगाकर सागीन की लकड़ी के भरवानों से भरी वे दस-पन्द्रह मालवाही नौकाएँ मल्लाहों ने कल्याण बन्दरगाह पर कुछ ऊपर की ओर कारखाने के निकट लगायीं। कारखाने पर और बन्दरगाह पर खड़े सभी माँझी और मल्लाह इन नाविकों को साधुवाद दे रहे थे, उनकी प्रशंसा कर रहे थे। वह काम था भी जोखिम का और कठोर परिश्रम का। दाढ़ेली के जंगल के सागीन के वे बड़े-बड़े लट्ठे थे। साधारण सा दिखने वाला एक मराठा नगद दाम चुकाकर इतना मूल्यवान सागीन खरीदता है, इस पर पहले उस व्यापारी को विश्वास ही नहीं हुआ था। व्यापारी के कानों में हीरों के नग दमक रहे थे। उनका स्पर्श कर और जीभ बाहर निकालकर उसने कहा भी था—

“अय्यो यो, एक छोटा सा आसामी इतना सागीन खरीदता है, इस पर विश्वास ही नहीं होता। पर क्या समझे? इसने खरीदा है। इसके माँझी और मल्लाह भी हट्टे-कट्टे हैं। फिर भी हम बताये देते हैं, यह सारा माल अपने ठिकाने पहुँचेगा नहीं रे वेंकटरमण! वह सिंही बैठा है वहाँ, दरिया का दरिन्दा है वह। वह यह सारा सागीन घात लगाकर देखते-देखते लूट लेगा।”

राणोजी को इसकी कल्पना थी ही। मायनाक ने, दरिया के मार्ग में घात लगाकर आक्रमण हो सकता है, इसकी सूचना राणोजी को देकर उसे सावधान किया था। वे सारे माँझी, खलासी और मल्लाह तैयार थे,

साहसी थे। मायनाक, दौलतखान, इमरानखान और दरियासारंग, सभी ने मन्त्रणा की। सारा भरवान लादकर बन्दरगाह से वे सारी नौकाएँ खुले। दरिया में पहुँचीं और सीधे पश्चिम की ओर अत्यन्त वेग से जाने लगीं। राणोजी ने कुछ असमंजस में पड़कर पूछा, तब मायनाक ने उसे भरोसा देकर कहा—

“अजी, दौलतवंकी ! सारा जनम गया हमारा दरिया पर। आपको जैसा आँगन, वैसा हमें दरिया। काफिले के मोहरे पर नौका बढ़ रही है दरियासारंग की। वह दरिया का सूरमा है, सूरमा। आप थोड़ा धैर्य रखें और मजा देखो। वह सिंही मुख में आया पानी चाटते बैठा रहेगा और हम यह सारा माल लेकर उसकी पहुँच से परे रहकर ठीक और सुरक्षित कल्याण बन्दरगाह पर लगते हैं, देखोगे ही आप।”

मायनाक की वे वातें उन सभी माँझियों और मत्लाहों ने खरी की थीं।

ये सारी नौकाएँ पश्चिम की ओर सीधी लगभग पन्द्रह-बीस मील तक खुले सागर में घुस गयीं।

खुले समुद्र में पहुँचने पर राणोजी ने देखा कि वहाँ सागर-तट की अपेक्षा अधिक स्थिरता थी। तट के समीप मछुओं की ओर यात्री-नौकाओं की आवाजाही थी। वह सब बहुत पीछे छूट गया था। वे जैसे-जैसे समुद्र में घुसते जा रहे थे, दूर से दिखती मस्तूलों के सिरों की निशानियाँ भी ओझल हो गयीं। अब वचे थे सागर के पछ्ली। वे वार-वार इन नौकाओं की ओर झुण्डों में उड़कर आते, ऊपर मण्डल सा बनाते और उड़-उड़कर दूर चले जाते। यही एकमात्र सागर के बाहर के संसार का चिह्न था, अन्यथा नीचे चारों ओर पानी ही पानी, असीम और अथाह।

सारी नौकाएँ एक पंक्ति में मिलकर चल रही थीं। दरिया में चलते एक दूसरे को कठिनाई न हो, केवल इतनी दूरी रखकर सारे चल रहे थे। हर नौका के मस्तूल के सिरे पर चतुर टोही बैठे थे। वे अत्यन्त तीखी और सावधान दृष्टियों से दूर तक दरिया निरख रहे थे।

लगभग पन्द्रह मील भीतर पहुँचने का अनुमान होने पर दरिया सारंग ने अपनी नौका का मोहरा उत्तर की ओर घुमाया। तुरत-फुरत

सभी ने अपने पालों के तनाव भी ठीक-ठाक कर लिये। दरिया के भीतर हवाएँ भी अत्यन्त बेग से चल रही थीं। टट की हवाओं सी यहाँ सुस्ती नहीं थी, हवाएँ एक दिशा में सीधी वह रही थीं। दिन भी आँधी-तूफानों के नहीं थे। उत्तर की ओर मुड़ते ही सारी नौकाएँ तीव्र गति से पानी काटते आगे बढ़ रही थीं।

चाँदनी रातें थीं। अंधेरे में एक दूसरे से टकराने का भय नहीं था। कभी-क्वचित् हवाएँ धीमी होने पर पतिगे चलाने पड़ते थे। वाकी सारे समय पालों के तनाव खिचे-खिचे और भरे-भरे रहते थे। दूसरे दिन साय-काल टोहियों ने बताया कि चार-चार पालों की तीन नौकाएँ इन नौकाओं की टोह लेते आ रही हैं। यह सुनते ही हाँके दे-देकर सारी नौकाओं का फैलाव समेट लिया गया। सभी नौकाओं पर कुछ दिखाऊ बन्दूकें थीं। इन मल्लाहों ने उन बन्दूकों से हवा में ही धमाके किये। जूझने का यह दिखावा काम कर गया। टोह लेती वे नौकाएँ दूर से ही एकाएक ओझल हो गयीं।

किनारे के चिह्न गहरे और खुले दरिया से भी पहचानने में वे सभी माँझी अत्यन्त कुशल थे। धारापुरी के बन्दरगाह के अनुमान से इन माँझियों ने अपनी नौकाओं के मोहरे किनारे की ओर मोड़ दिये और देखते-देखते सारी नौकाएँ खाड़ी में लाकर लगा दी गयीं।

कल्याण के तट के निकट पहुँचते ही नौकाओं के पाल उंतारे गये, और इनके स्वागत में किनारे के सभी वरकंदाजों ने अपनी कडाविनियों के मोहरे आकाश की ओर उठाकर उनको बत्तियाँ लगा दीं। आरमार के लिये इतनी दूर से लाये गये उस सागौन का वाजीराव ने आकाश गुँजा देने वाले गर्जनों से स्वागत किया।

॥

श्रमकर्ता आलसी न हो,
काम लेते, कातर न हो,
परिश्रमी से कटु बचन, नहीं बोलो, घड़ी-घड़ी।
दिन चढ़े आये कभी, ऐसा श्रमिक न लेना कभी,
निर्वल और बालक, वृद्ध कर्मचारी भी न भला कभी।

वल, काम परखना सदा । ऐसा काहूं सदा भला ।
 एक बार मोल करना । यही चतुराई सदा ।
 थाली का आराम भला । कार्य-तत्पर सदा भला ।
 दिन भर सावधान भला । हर क्षण, हर घड़ी ॥
 खोटा दाम, तुरन्त बदले ।
 समय व्यर्थ जाने न दे ।
 पारिश्रमिक न रोके कभी । क्रोध यहाँ व्यर्थ सदा ।
 गणना सत्य, व्यवस्थित रहे,
 लेखन सदा निरालस रहे,
 मूल्यशोधन तत्काल करें । क्रीत वस्तु सन्निध सदा ।
 निरीक्षक, सावधान ।
 सोत्साह । कुशलपूर्ण ।
 श्रमिक, अधिकारी एकचित् । कार्य वहाँ सिद्ध सदा ।

शिवाजी राजा के कारखाने की वार्ता कानों में आते ही समर्थ रामदास ने एक पत्र कल्याण की ओर भेजा । अक्षर अत्यन्त स्वच्छ, सहज बोधगम्य, सुघड़ और स्पष्ट थे । वाजीराव पत्र पढ़ने लगा । उसमें क्या नहीं था ?

श्री समर्थ रामदास की वह चिन्ता और तत्परता देखकर वाजीराव का मन भर आया । समर्थ ने यह सुना कि आरम्भ का कारखाना प्रारम्भ हुआ, तो तत्काल अपने प्रिय नायक का कारखाना कैसा हो, इस सम्बन्ध में आवश्यक सम्मतियाँ उन्होंने लिखकर भेजी थीं । सारे परामर्श मार्मिक थे, लगता था कि मानो समर्थ ने वर्षों किसी कारखाने के मुख्य अधिकारी का काम किया हो ।

समर्थ ने जिस गुसाईं के हाथों पत्र भेजा था, वह वाजीराव के उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा था । वाजीराव ने पत्र को गोल कर उसे थंगी में व्यवस्थित रखा और उस सुन्दर थंगी को सिरमाथे लगाकर, गुसाईं से निवेदन किया—

“आप मेरे साथ आयेगे ? एक बार सारा देखें, और जाकर समर्थ को मेरी ओर से निवेदन करें कि सारा काम आपके ही आदेश के अनुसार

होगा, कहीं भी और कभी भी इधर से उधर आनाकानी नहीं होगी।”

गुसाई ने वाजीराव का निवेदन स्वीकार किया और वे दोनों कारखाने की उस व्यस्त भीड़ में जा पहुँचे।

टट के पास चारों ओर से भीत बनांकर एक बड़ा सा परिसर तैयार किया था। उसमें सैकड़ों लोग अक्षरशः काम के पीछे हाथ धोकर पड़े थे।

एक कोने में सागौन के बड़े-बड़े लट्ठों का प्रचण्ड ढेर था। उसी के पास कुछ लट्ठे आम के और कुछ फरहद के भी पड़े थे। उत्तम, सुदृढ़ और लम्बे वाँसों के ढेर भी एक ओर रखे थे। बहुत से जलपोत नित्य आकर खाड़ी के घाट पर लग रहे थे। अनेक बन्दरगाहों से आया सामान और उपकरण उत्तरवाकर एक ओर लगाये जा रहे थे।

मोम, राल, तेल, कपास जैसी विविध सामग्री नौकाओं के पट्टों को जोड़ने के लिये आवश्यक थी। इस सामान को भी कारखाने के एक अलग दालान में व्यवस्थित रखा जा रहा था। लोहे की मोटी और लम्बी छड़ों और अनेक आकार-प्रकार की कीलों के रूप में लोहे का आवश्यक सामान जुटाया जा रहा था। पतली सूत की डोरियाँ और नारियल रेशों के ढेर एक कोने में रखे थे। कपड़ों के थान फाड़कर छोटे-बड़े पाल बनाने में दस-वीस दर्जी जुटे थे। पालों के किनारे पक्के करने के लिये उनके सिरों पर कपड़े की ढुहरी तह लगाकर उसमें सूती डोरियाँ धिरोकर वे उसे पक्के टाँकों से सी रहे थे। पालों के बीच में भी कुछ अन्तर पर सूती डोरियाँ सीकर उन पर कपड़ों की पट्टियों को व्यवस्थित जोड़कर टाँका जा रहा था, हेतु यह था कि प्रचण्ड हवाओं और तूफानों में भी ये पाल बिना फटे नौका को सुरक्षित बन्दरगाह तक पहुँचा सकें। लोहे के गोदाम के निकट लुहारों की भट्टियाँ धग-धग कर जल रही थीं। लोहे की छड़ काट-काटकर उनमें से आवश्यकतानुसार छोटी, बड़ी और सीधी कीलें बनायी जा रही थीं। उनकी ठोक-ठोक से कान फटने को हो रहे थे।

एक गोदाम के समीप तरल मसाला तैयार किया जा रहा था। बड़ी-बड़ी भट्टियाँ जल रही थीं। उन पर लोहे की कढ़ाइयाँ चढ़ी थीं। उनमें तेल, राल और मोम इकट्ठा उवाला जा रहा था। उस तरल मसाले की

तीखी गन्ध से आपपास का सारा परिसर भर गया था ।

सबसे बड़ा विभाग आरेकसों का था । बड़े-बड़े प्रचण्ड लट्ठे लकड़ी के टेके लगाकर टेके खड़े किये गये थे । गेहू में डोरियाँ डुवो-डुवो कर, उन्हें एक सिरे से दूसरे सिरे तक तानकर उन लट्ठों पर लाल चिह्न लगाये जा रहे थे और उन चिह्नों के अनुसार ही उन लट्ठों को काटने का काम सपाटे से चल रहा था । आराकस देखते-देखते उन लट्ठों को काट-काटकर एक ओर कर देते । एक आराकस नीचे और एक ऊपर, इस प्रकार बड़े-बड़े आरे एक ताल और लय में चल रहे थे । नीचे की ओर बुरादा झर-झर झर रहा था । नीचे खड़े आराकस पर उसकी वर्षा सी हो रही थी । उससे उसका सारा शरीर सन रहा था । उस मलावारी सागौन में एक मधुर सुगन्ध थी । ज्यों-ज्यों आरा उस लट्ठे के भीतर घुसता, वैसे-वैसे उसकी गन्ध निखर कर बाहर पसर रही थी । उस गन्ध-मद में आरेकस मदमत्त होकर काम कर रहे थे । आरों के नीचे आते ही, कुछ ही समय में लट्ठे से एक से नाप के पटले कटकर तैयार होते, उन पटलों को कारखाने के एक दालान में व्यवस्थित रखा जा रहा था ।

एक ओर यह सारा कच्चा माल तैयार हो रहा था तो दूसरी ओर एक बड़े से परिसर में मालवाही नौकाओं की छोटी डोंगियाँ और अन्य विविध प्रकार की नौकाओं का काम चल रहा था । वहाँ अनेक बड़ई काम में जुटे थे ।



मेन्युअल साहब ताव खा-खाकर हाथ में मानचित्रों (नक्शों) के कागज फड़फड़ाते हुए अपनी पोर्टुगाली भाषा में बोल रहा था । उतने ही तार स्वर से बाबल भट्ट उसके साथ झगड़ रहा था और अपनी पोथी में से कागज उठा-उठाकर 'मनोल' फिरंगी को दिखा रहा था । बाबल भट्ट को फिरंगी की बातें समझ में नहीं आ रही थीं और फिरंगी भी बाबल भट्ट की पोथी की भाषा को समझ नहीं पा रहा था । दोनों ही लाल-पीले होकर हाथ उठा-उठाकर बोल रहे थे । फिरंगी अपना टोप नक्शों पर पटक रहा था, तो बाबल भट्ट अपने पोथी के कागज उठाकर प्रतिज्ञा कर रहा था । बाबल भट्ट कह रहा था—

“क्या समझता है तू फिरंगी ? यहाँ यह जानकारों ने जो लिख रखा है, वे क्या मूल्य थे ? या वे भाँग पीकर बैठे थे, या कि गांजा पिये थे ?”

तब तक एक रक्षक वल्लभ भाई को पकड़ लाया। उस समय बाबल भट्ट वाजीराव को बता रहा था—

“अजी, देशमुख ! कारखाने की सुपारी राजा ने फोड़ी, तब पूजा मैंने करवायी थी। इस आरमार का कुछ कम-अधिक हुआ तो राजा मुझ पर हँसेगे कि इस बीच-बचाव करते सिपाही पर ? मैं बताये देता हूँ, जो भी काम करना है—जहाज या नौका बनानी है—सभी कुछ शास्त्रोक्त होना चाहिए। व्यर्थ में कुछ तसले जैसे बनाओगे तो मैं वहाँ आड़े आऊंगा, प्रायोपवेशन करूँगा, क्या समझे ?”

वल्लभ भाई आया, उसके पास जाकर मँन्युअल फिरंगी ने कहा—

“मैं केवल शिवाजी राजा के लिये इस अक्षर-पण्डित को क्षमा कर रहा हूँ, नहीं तो इसके मुँह में पावरोटी देकर इस भट्ट को अभी ईसाई बना दिया होता ।”

दोनों को शान्त करते हुए वाजीराव ने वल्लभ भाई से कहलवाकर गोदाम के बरामदे में रखे लकड़ी के मेज पर मनोल साहब को अपने नक्शे फैलाने को कहा, फिर उसने बाबल भट्ट से कहा—

“शास्त्रीजी, अब बताओ, आपकी पोथी में क्या लिखा है ?”

पालथी लगाकर बाबल भट्ट कीड़े की खायी अपनी पोथी के पृष्ठ ठीक करने लगा। उसे देखकर मनोल साहब ने कहा—

“यह केवल समय व्यर्थ गँवाना है। मैं इन फटे कागजों को कुछ भी महत्व नहीं देता ।”

उसकी ओर आँखें उठाकर बाबल भट्ट ने कहा—“यह टोपू क्या कह रहा है ?”

वल्लभ भाई ने बताया—“साहब कह रहा है कि यह कागज बहुत पुराना दिख रहा है ।”

बाबल भट्ट ने अपनी पोथी का एक पृष्ठ उठाया और कहा—

“बताओ अपने साहेब को कि हमारे ऋषियों ने कितनी सूक्ष्मता से विचार किया है, लकड़ी कौनसी ली जानी चाहिए, यहाँ से इस शास्त्र की

चर्चा प्रारम्भ है ।

“लघु यत् कोमलं काष्ठं सुघटं ब्रह्मजाति तत् ।

दृढ़ंगं लघुयत्काष्ठं सुघटं क्षत्रजाति तत् ।”

जो लकड़ी हल्की, मृदु और सरल हो, उसे ब्रह्मजाति कहते हैं । जो सरल, पर सुदृढ़ होती है, वह क्षत्रजाति की कही जाती है । ऐसी दोनों प्रकार की लकड़ी आरमार के काम में लेनी चाहिए ।

“पूछो उसे, इतनी सूक्ष्म वातें तुम्हारी पोतड़ी में हैं क्या ?”

वल्लभ भाई ने इस वात का अनुवाद कर जब मनोल साहब को बताया तब उसने कहा—

“इस प्रकार का प्राथमिक ज्ञान तो अफीका के जंगली नीओ को भी या ।”

वल्लभ भाई ने बावल भट्ट को फिरंगी की वात संक्षेप में बतायी—

“साहब कह रहा है, यह प्राथमिक जानकारी ठीक है । आगे पढ़ो ।”

कीड़े की खायी उस पोथी में से एक पृष्ठ उठाकर गौरव के साथ बावल भट्ट ने कहा—“उससे कहो, सुने ।” और पढ़ने लगा—

“लघुता दृढ़ता चैव गामिताऽच्छिद्रता तथा

समतेति गुणोदेशो नौकायां संप्रकाशितः ।”

नाव कौसी हो ? हल्की फूल जैसी, पर सुदृढ़ हो वज्र के समान । पतली हो सारस की चोंच सी, कहीं भी छिद्र न हो; उसकी समता-सन्तुलितता ऐसी हो कि वह किसी भी ओर न झुके ।”

वल्लभ भाई ने ये वातें फिरंगी को बतायीं, तब उसने गर्दन हिलाते हुए कहा—“हाँ, ये वातें अवश्य अनुभव की कही गयी हैं ।”

बावल भट्ट पोथी के पृष्ठ उलट ही रहा था । एक पृष्ठ देखकर उसे उठाते हुए उसने कहा—

“बताओ उस टोप वाले को, सुने ये नौकाओं के नाम, अर्थात् उनके प्रकारों के नाम । ये उनके गुणों से ही दिये गये हैं :

‘क्षुद्राऽथ मध्यमा भीमा चपला पटलाऽभया

दीर्घापत्रपुटा चैव गर्भरा मंथरा तथा ।’

सबसे छोटी नौका को क्षुद्रा कहते हैं, उससे बड़ी को मध्यमा । सैकरी और

चपलता से चलने वाली को चपला, भरपूर लम्बी और उत्तम आकार वाली को दीर्घी तथा चौड़ी नौका को गर्भंरा कहते हैं। जो नौका बड़ी गहरी हो, उसे मंथरा नाम दिया गया है।”

यह सारा मनोल फिरंगी को समझाते-समझाते बल्लभ भाई थका जा रहा था, पर जैसे-जैसे ये बातें वह फिरंगी समझ रहा था, वैसे-वैसे उसे आश्चर्य हो रहा था। वह जैसे-तैसे अपनी पतलून सेंभालते हुए बाबल भट्ट के समीप जा वैठा।

मनोल फिरंगी को निकट आते देखकर बाबल भट्ट ने दूर सरकते हुए कहा—

“इसे बताओ, मुझे छुए नहीं। यह छू लेगा तो मुझे फिर से स्नान करना पड़ेगा। मस्तूलों पर से दिये नौकाओं के नाम भी सुन लो।

‘चतुःशृङ्गा, त्रिशृङ्गा वा द्विशृङ्गा चैक शृङ्गणी’,
कुछ चार पाल की, कुछ तीन की, कुछ में दो तो किसी में एक ही पाल होता है। मस्तूलों के खम्भे भी कैसे हों—सीधे, सरल, एक रेखा से। उनमें कहीं गाँठ न हो, वस्तुतः वह तने के गर्भ का भाग हो, ठीक गोल। ऊपर के छोर पर धातु की शाम ढुकी हो। देखो उसका वर्णन—

‘अवक्रं निर्वणं स्निग्धं महासारं च सुवृतं,
सितपट्टेन सद्वंशं शृङ्गं स्यात् सर्वदा शुभम्।’

बड़ी नौका पर रहने के लिये बनाये जाने वाले कक्ष कैसे हों, वे दो प्रकार के होते हैं—एक केवल लकड़ी का, दूसरा धातु-मिश्रित।

“काष्ठजं धातुजं चैव मन्दिरं द्विविधं भवेत्।”

यह सारा समझ में आने पर आनन्द से मनोल फिरंगी ने झट से आगे बढ़कर बाबल भट्ट को बाँह पकड़कर उठाया और उसके चिल्लाने की ओर ध्यान न देते हुए उसे खींचकर उस मेज के समीप खड़ा कर दिया।

उस मेज पर पसरे मानचित्रों पर अपनी अंगुलियाँ धुमाते हुए उसने बाबल भट्ट से कहा—

“देखो, देखो, तुम जो भी उन कागजों में पढ़कर बता रहे हो, वही सब इन मानचित्रों में भी है, वे ही प्रकार, वे ही पतवार, उसी प्रकार की नावें, वे ही मस्तूल, सारा वही है। वहाँ शब्दों में लिखा है, यहाँ रेखाओं

से बनाया है, इतना ही अन्तर है।”

वल्लभ भाई ने ये सारी वातें बाबल भट्ट को बतायीं, तब बाबल भट्ट ने प्रसन्न होते हुए कहा—

“तो उसे कहो कि अरे भले मानुष, ये ही सारी वातें हमें पहले ही बता देता।”



मयासुर ने जैसे एकाएक शून्य में स्वप्ननगरी का निर्माण किया था, उसी प्रकार विश्वकर्मा के वंशजों ने खाड़ी का वह तट सुन्दर नौकाओं से भर दिया। नौकाओं के कितने ही प्रकार थे। दो अत्यन्त विशाल तिरकटी थीं, आठ-दस शिवाड थे, बीस-पच्चीस कोट्ये थे, फत्तेमारी और महागिरि तो बहुत सी थीं। मचवे भी बहुत से थे, अनेक होड़ियाँ और डोंगियाँ थीं। तिरकटियों पर आठ मस्तूल थे; शिवाडों पर छः मस्तूलों के खम्भे खड़े थे; कोट्यों पर चार-चार मस्तूल सजे थे; फत्तेमारियों पर और महागिरियों पर तीन-तीन पाल थे। फत्तेमारी और महागिरि नौकाएं तिरकटी की अपेक्षा अधिक चपल और शीघ्रगति की होती हैं। वास्तव में चपलता, सुन्दरता एवं व्यवस्थितता में महागिरि तथा फत्तेमारी किसी भी नौका से उत्तम होती हैं। तिरकटी और शिवाड नौकाएं मानो दिखाऊ हाथी जैसी तो महागिरि और फत्तेमारी मानो मावलों के पहाड़ी टट्टू जिनको जहाँ चाहो लगा दो और जैसे चाहो घुमा लो या मोड़ लो।

खुला समुद्र हो या खाड़ी हो, अथवा स्थल में भीतर तक धुसे खाड़ी के छोटे-छोटे प्रवाह हों, फत्तेमारियों का और महागिरियों का संचार सर्वत्र एकसा होता है। तिरकटी और शिवाड गहरे पानी की नौकाएं हैं, उथले पानी में ये रेत में फैस गयीं तो वहाँ से उन्हें निकालना दूभर होता है। महागिरि नौका उथली होती है, घुटनों या जांघों तक पानी में भी इस नौका को धाट तक लाकर लगाना सम्भव होता है। कहीं रेत में चिपकी भी तो पानी में उतरकर दो-चार लोगों के पीठ से ठेलते ही छूटकर वे तैरने लगती हैं। सागौन और आम की लकड़ी को चीरकर ये सारी नौकाएं खड़ी की गयी थीं।

किश्तियाँ और डोंगियाँ फरहद के लट्ठों को तराशकर बनायी गयी

थीं। एक-एक नौका पर दो-दो, चार-चार ऐसी डोंगियाँ रखी जानी थीं। जहाँ पर ये डोंगियाँ तेल देकर क्रम से लगाकर रखी गयी थीं, वह भाग ऐसा दिख रहा था, मानो चारों ओर श्याम कपिलाओं का काफिला जुगाली करता आराम से बैठा हो।

प्रायः सभी नौकाओं की परनाली पर चित्र बनाये गये थे। तिरकटी और शिवाड़ों की नालियों पर गण्ड भेरुण्ड सजाये गये थे। सिंह का मस्तक और दो ओर बड़े पंख, पंजों के नखों में फँसा हाथी, देखते ही प्रथम क्षण भय लगता। फत्तेमारियों की नालियों पर अश्वमस्तक बनाये गये थे। चित्र इतने सुन्दर और सजीव थे कि लगता मानो संकेत की धपकी मिलते ही ये अश्व अयाल फरफराते आवाज देंगे।

अश्वों के इन मुखबीटों से उस दृश्य की सजीवता बढ़ गयी थी। नीचे आड़े ढूँड रखकर और दोनों ओर खम्भे ठोककर उन पर नौकाएँ खड़ी की गयी थीं। इन सभी नौकाओं को तेल देने का काम बड़े वेग से चल रहा था। मचान पर खड़े श्रमिक सागर में उतारने से पहले एक बार सभी नौकाओं पर तेल का हाथ फेर रहे थे।

परनाली के बाहर पतवार चढ़ायी गयी थी। नौका के आकार के अनुसार ये पतवारें भी छोटी-बड़ी थीं। नारियल की डोरियों से कसकर सभी पतवारों को नौकाओं में जोड़ दिया गया था। मस्तूलों के सिर पर बने अँखुओं में डोरियाँ डाली जा चुकी थीं। बाँस और परमानों पर पाल बाँधे गये थे। बाँसों के बीचोंबीच गाँठें बाँधी गयी थीं। मस्तूलों के सिरे पर डाली गयी डोरी से पाल एक बार चढ़ाकर देख लिये गये थे।

इन सभी नौकाओं पर मुख्य माँझियों की नियुक्तियाँ की गयी थीं। ये सभी साहसी, स्पष्टवक्ता, गवित दृष्टि वाले और तीखी एवं प्रभावी वाणी वाले थे। सभी को दरिया की हर बात की जानकारी थी। आकाश के नक्शों का उन्हें पूरा-पूरा ज्ञान था। नौका में कोई दोष आने पर प्राणों की बाजी लगाकर उसे किनारे तक लाने का उनमें साहस था और वह असम्भव होने पर सर्वप्रथम वे सारे खलासियों के प्राणों की चिन्ता करते थे, अपना विचार बाद में। ऐसे माँझियों के साथ ऐसे ही गुणी और परिश्रमी खलासी दिये गये थे। ये सभी दो कामों में कुशल थे, तलवार चलाने में

और डांडे-पतिंगे चलाने में। हर नीका पर बाज जैसी दृष्टि वाले टोही थे। और, इन सभी 'जलचरों' को प्रेम से और चिन्ता से भोजन खिलाने वाले रसोइये भी नियुक्त किये गये थे।

हर फत्तेमारी पर दस-बीस कडाविनी (वन्दूक), एक-दो तोप और जेजालों की व्यवस्था की गयी थी। इस प्रकार सभी नीकाएं तैयार होकर संकेत की प्रतीक्षा में खड़ी थीं। उसी समय स्थल भाग की ओर से राजा की झंझावाती सेना कोंकण में उतर रही थी।

केवल आरमार सजाकर काम होने वाला नहीं था। आसपास के सारे आसमन्त को मुगलों के अत्याचारी आतंक से मुक्त करने की भी आवश्यकता थी।

कल्याण के निकट माहुली का बेलाग किला था। उसने कितनी ही राजसत्ताओं के उत्थान-पतन देखे थे। इन दिनों वह मुगलों के अधिकार में था। एक दिन शिवाजी ने गरुड़ की चपलता से घात लगाकर वह किला जीत लिया और इस प्रकार आरमार के कारखाने पर आने वाले सम्भावित संकट को समाप्त कर दिया गया।

ऐसे ही एक दिन बारहों घाटियों और बारहों मार्गों से, रात-बेरात, चिरपरिचित जंगलों की पगड़ण्डियों से चलकर जाने-पहचाने वृक्षों और वृक्षों की राइयों से चढ़ते-उतरते एक सेना श्रीवर्धन की ओर से कोंकण में उतरी। उद्देश्य दो थे—यावनी सत्ता से हरेश्वर को मुक्त करना और उधर ही दरिया में जंजीरा दुर्ग में घात लगाकर वैठे सिंही की शक्ति को तोलना। श्रीवर्धन की वस्तियाँ उस अंधेरी रात में शान्त सोयी थीं। उनमें से होकर सागर तक जाने वाले मार्ग तो और भी सुप्त और अचेत थे। दोनों ओर के नारियलों और सुपारियों के वृक्षों के पत्ते किंचित् भी हिल नहीं रहे थे। जिस प्रकार सारा गाँव शान्त था, उसी प्रकार तहसीलदार के बाड़े पर भी एक-दो पहरेदारों को छोड़कर किसी भी प्रकार की चहल-पहल या जागने की आहट नहीं थी। वे पहरेदार भी अलसाये थे, और मुट्ठी-मुट्ठी इंधन बटोरकर अलाव में डालते, तापते बैठे थे।

तभी चारों ओर से पुकार आयी, धुड़सवारों की टप-टप से सारा आकाश भर गया, हरहर महादेव की गर्जनाएं आसमन्त में गरजने लगीं;

और सभी मार्गों से शिवाजी की सेना ने श्रीवर्धन में प्रवेश किया। सेना ने पहले चौकी पर धावा बोला। वहाँ के सैनिक शस्त्र ढूँढ़ते, तब तक उन सभी को पकड़कर उनकी मुस्कियाँ वाँध ली गयी थीं। हाथ में मशालें लेकर घुड़सवार घोड़ों को दौड़ाते हुए तहसीलदार के बाड़े की ओर बढ़ गये। मोरोपन्त पिंगले दोनों हाथों में पट्टे पहनकर उनके आगे चल रहे थे।

तहसीलदार जनानखाने में पलंग पर सोया पड़ा था, उसके गले में बीबी का हाथ पड़ा था, दोनों ही इस कोलाहल से चौंककर जाग उठे। तहसीलदार उठने लगा, तो उसकी बीबी ने उसके गले में अपने हाथ डालकर कहा—

“मेरी कसम है, बाहर न जाओ।”

उसके हाथों को एक ओर करते हुए तहसीलदार ने कहा—

“पागल हो गयी हो क्या? शोर क्या है, यह देखना हमारा फर्ज है।”

इतना कहकर सिरहाने रखी तलवार उठाते हुए वह खुले शरीर ही जनानखाने से बाहर आया। उसने देखा कि सारे बाड़े में हाथों में मशाल लिये मराठे घुस रहे हैं। यह देखते ही तहसीलदार तलवार पेलते हुए उन मराठों पर टूट पड़ा। मालिक का वह साहस देखकर उसके हशम भी साहस कर तेंगे चलाने लगे। कुछ ही देर में तहसीलदार ने देखा कि उसके हाथ की तलवार दो-चार मावलों ने छीन ली है और उन्होंने उसको कसकर दोनों बाजुओं से पकड़ लिया है। क्रोध से तहसीलदार के मुँह से शब्द नहीं निकल रहे थे, कपाल पर हुए धाव में से वहता रुधिर भौंहों पर उतर रहा था।

बाहर आँगन में मोरोपन्त घोड़ा रोककर खड़े थे। मावलों ने उनके सामने तहसीलदार को ले जाकर खड़ा कर दिया। मोरोपन्त ने कहा—

“इनको खोल दो। आदाव अर्ज तहसीलदार साहब! हुक्म हो कि क्या चाहते हैं आप?”

दाँतों तले होंठों को दबाते हुए तहसीलदार ने कहा—

“चाहता हूँ अपनी तेग, जिसे तुम लुटेरों ने छीन लिया है। फिर जो अल्ला मियाँ का हुक्म हो।”

मोरोपन्त के संकेत पर एक सैनिक ने तहसीलदार के हाथ में उसकी तेग दे दी। मोरोपन्त ने फिर से पूछा—

“कहिए, अब क्या मन्दा है ?”

चकित होकर तहसीलदार ने कहा—

“अजब हो तुम लोग। खैर, हो कौन ?”

“नहीं पहचाना ? अच्छा, खैर ! चन्द दिनों पहले की बात है, आपने एक बैरागी महन्त को फलसफे पर बातें करने के लिये अपने घर आने का न्यौता दिया था, याद है ?”

“हाँ, तब ? अपने घर पर किसी को भी मैं सौ बार बुलाऊंगा, तुम होते कौन हो मुझसे जवाब तलब करने वाले ?”

“उन महन्त जी का सन्देशा है आपके लिये ।”

“क्या ?”

“सन्देशा है कि हमारे ओहदेदार के नाते आप इस सूबे का प्रशासन चलायें ।”

आश्चर्य से तहसीलदार ने पूछा—

“ऐ ? महन्त या कौन वह ?”

“नहीं पहचाना अब भी ? वह ये राजा शिवाजी भोसले ।”

तहसीलदार आश्चर्य में पड़ गया। उसके मुँह से अनायास शब्द निकले—

“गजब ! गजब !!”

□

दण्डाराजापुरी के पास उतरी मराठों की सेना को देखते ही सिद्धी ने अपना सारा आरमार जंजीरा के आसपास समेट लिया। वह सावधान होकर मराठों की आगे की चाल की प्रतीक्षा कर रहा था। उसने जंजीरा की हर दुर्जी पर आग फेंकने वाली तोप में बालू भरकर उनके पास हाथों में जलते तोड़े लिये गोलंदाज खड़े किये थे, संकेत मिलते ही तोपें आग बरसाने लगतीं।

मराठों की सेना ने दिघी गाँव की ओर से सिद्धी को कसना प्रारम्भ किया था। मुरुण्ड की सारी चौकियाँ मारकर गिरा ली थीं। इसके बाद मराठा सेना घात लगाये बैठी थी। सिद्धी की ओर से आगे किसी भी प्रकार की पहल नहीं हो रही थी। वह सारी सेना शान्त क्यों बैठी है, यह सिद्धी

भी समझ नहीं पा रहा था। दोनों ओर से मोर्चे लगकर चार दिन हो गये थे, छुटपुट गोलाबारी छोड़कर कुछ विशेष नहीं हुआ था। अब तक सिंही के लिये दरिया निष्कंटक था। उसको विश्वास था कि इस ओर से तेग उठाकर जंजीरा पर चढ़कर आने वाला इस क्षण तक जन्मा ही नहीं है। फिर भी उसकी टोही नौकाएं दरिया पर दृष्टि रखे हुए थीं। उनकी कल्पना के अनुसार दरिया में सभी कुछ ठीक था। सिंही कुछ समय प्रतीक्षा करने के बाद, एक दिन जंजीरा के दरवाजे खोलकर, जंजीरा के सैनिक नौकाओं में भरकर, दण्डाराजापुरी में धात लगाकर बैठे मराठों पर आक्रमण करके उन्हें वहाँ से खदेड़ने की योजना बना रहा था। तभी वाज के समान अत्यन्त वेग से पानी काटती कुछ टोही नौकाएं दरिया से जंजीरा की ओर आ रही थीं। जैसे-तैसे वे नौकाएं बन्दरगाह के घाट पर लगीं। उनमें से कूदकर सिंही के टोही जंजीरा के दरवाजे की खिड़की से भीतर भागे। हाँफते-हाँफते वे सभी सदर कचहरी में बैठे सिंही के सामने झुककर बार-बार आदाब अर्ज कर कहने लगे—

“गुनाह माफ हो, लेकिन जो देखा है उसका व्यान नाचीज की ताकत के बाहर है।”

चौंककर सिंही ने पूछा—

“क्या देखा है ?”

“अजीव नजारा ! दरियाभर में फैलकर एक जहाजी बेड़ा बड़ी फुर्ती से इधर की ओर बढ़ रहा है, गेरुए निशान फहराकर।”

उछलकर उठते हुए सिंही ने कहा—

“हुक्म हो गोलंदाजों को कि वे किनारे पर आग के शोले बरसायें।”

पास ही सिंही का सलाहकार बैठा था, खुबे बदन, उसने आँखें बन्द रखते हुए ही पूछा—

“नतीजा क्या होगा ?”

“यही कि उन नापाकों को शिकस्त पहुँचेगी।”

“सलाह ये है कि जिन नापाकों को शिकस्त पहुँचनी चाहिए, वे किनारे पर थोड़े ही हैं। वे तो आ रहे हैं वेअंदाज दरिया चीरकर।”

“फिर क्या किया जाये ?”

क्षणभर रुककर सलाहकार ने कहा—

“हर बार तेग चलाना ही मुनासिव नहीं होता। कभी-कभी हाथ-पैर समेट लेने से ही फतह का रास्ता नजर आता है। जो वेड़ा आ रहा है, उस पर नजर रखती जाय। अगर कमज़ोर हो तो पूरी ताकत लगाकर उसे ढुबो दिया जाय।”

“और, ताकतवर हो तो ?”

“तो चुपचाप अपने गरीबखाने में वापस आकर दाँव लगाकर यहीं बैठा जाय। जंजीरा फतह कर पाना कोई आसान काम थोड़े ही है।”

□

पंख पसारे गरुड़ का सा व्यूह बनाकर वह आरमार अत्यन्त आवेश और वेग से बढ़ा आ रहा था। गरुड़ के मस्तक स्थान पर फतेमारी पर बैठा स्वयं मायनाक था। मराठों के इस आरमार का वह सागर-संचलन केवल एक प्रयोग था। यह प्रयोग और अभ्यास जहाँ किया जा रहा था, वह स्थान था सिंही का जंजीरा। वेलाग जलदुर्ग जंजीरा। दरिया की चील का घोंसला था वह, जिस पर से बहती हवा भी विषेली और तीखी होती थी। किसी विषधर नाग के समान फुफकारता सिंही उस जंजीरे में बैठा था। उसी के संकेत पर चाचे भी वेकावू होकर दरिया में चारों ओर ऊंधम मचा रहे थे। कोंकण का घर-आँगन सा दरिया उन्होंने भूतों और प्रेतों के ताण्डव से गरजता इमशान बना दिया था। इसीलिये उस सिंही को ठीक मार्ग पर लाने की आवश्यकता थी, वह भी केवल आँखें दिखाकर, एक भी नौका या जलपोत बिना खोये। सारी ही महागिरि नौकाएँ नवीन थीं। अत्यन्त सहजता से जैसी चाहे मुड़ रही थीं, केवल पालों के दौर कम अधिक कर उनका वेग कम अधिक करना सम्भव हो रहा था। मनोल के परामर्श के अनुसार ये महागिरि नौकाएँ संकरी बनायी गयी थीं। इसी कारण ये नौकाएँ अत्यन्त तीव्र गति से पानी काटती आगे बढ़ रही थीं।

गरुड़ सपाटे से सर्व-सर्व ध्वनि करते हुए धात लगातां है, उसी प्रकार ये चालीस महागिरि नौकाएँ एक गरुड़ के व्यूह में ही खाड़ी के मुहाने तक आ पहुँचीं। मायनाक का संकेत मिलते ही सभी नौकाओं ने अपनी गति धीमी कर ली। दो ओर के छोर तिकट लेते हुए सारा आरमार तीर के

फल सा आकार लेकर धीमी गति से और सावधानी के साथ खाड़ी के नस्त के समीप रुक सा गया और फिर मायनाक की महागिरि पर दृष्टि रखकर अपना व्यूह एक सा रखते हुए वह सारा आरमार खाड़ी में घुसने लगा।

कुछ ही क्षणों बाद मायनाक के टोही ने आवाज देकर बताया—

“सामने से नौकाएं आ रही हैं।”

यह सुनते ही दो छोटी झण्डियाँ मुँह में पकड़कर मायनाक सरसर करता मस्तूल पर चढ़ गया और वहाँ से उसने देखा कि जंजीरा के वार्यों और खाड़ी में से लगभग बीस नौकाओं का काफिला अत्यन्त मन्द गति से अपनी ओर आगे बढ़ रहा है। उसे देखते ही मुँह में रखी झण्डियाँ हाथ में लेकर उनको धुमाते हुए मायनाक ने अपने आरमार को और अधिक संकरा होने का आदेश देकर बरकन्दाजों को संकेत किया। चालीस नौकाओं के बरकन्दाजों ने एक साथ एक शिस्त में आकाश में प्रहार उड़ा दिये, और उन सभी के बारूद के धुएँ के कारण थोड़े समय तक आसपास धुंध सी छा गयी, उसमें से कुछ भी दिख नहीं रहा था।

मायनाक अब भी मस्तूल पर ही था, धुआं कुछ कम होते ही उसने देखा कि अपनी ओर आता नौकाओं का वह काफिला अपना मोहरा बदल-कर पीछे हट रहा है, यह देखते ही उसने बरकन्दाजों को एक बार फिर संकेत किया। उनकी कड़ाविनियों से फूटे प्रहारों से एक बार फिर से धुएँ का एक पर्दा सा बन गया। उसी की आड़ लेकर वह सारा आरमार खाड़ी में घुस गया। उसी क्षण तट पर खड़ी मराठा सेना ने भी जंजीरा की ओर तोपें दागकर आग बरसाना प्रारम्भ किया। तोपों की मार जंजीरा तक हो रही थी। एक दो गोले जंजीरा के भीतर भी जा गिरे। मायनाक ने देखा कि जैसे कछुआ अपने हाथ-पैर खींच लेता है, उसी प्रकार सिंही का सारा आरमार जंजीरा के आसपास बचाव के मोहरे में सिमट गया है।

चारों ओर फैले-पसरे सिंही को दबाने में मराठों को इस प्रथम क्षण में ही यश मिल गया था। मराठों के आरमार के भावी कार्य का यह शुभारम्भ ही था।

मायनाक ने एक बार फिर से बरकन्दाजों को धुएँ का पर्दा खड़ा करने के आदेश दिये और उसकी आड़ में मोहरे बदलकर जितनी तीव्र गति

से वह सारा आरमार खाड़ी में घुसा था, उससे चौगुनी गति से वह आरमार पीछे मुड़ा और कुछ ही समय में खाड़ी के आरपार कहीं भी उसका कोई चिह्न तक नहीं बचा था।



पावस काल के मेघों से आकाश कभी का मुक्त हो गया था, परन्तु महाराष्ट्र में उगते स्वराज्य की कोमल कोपलों से खिले छोटे से पौधे को भयंकर मेघों ने धेर लिया था।

इस ओर महाराष्ट्र में सभी कुछ मंगल घटित हो रहा था, तभी उधर सारे ही जगतीतल के दुश्चिह्नों ने एकजुट होकर महाराष्ट्र पर चढ़ जाने की योजना बना ली थी।

बीजापुर की वेगम ताज-उलमुखद्विरात, उलिया जनावा, राजा पर अत्यन्त क्रुद्ध हो गयी थी। उसने मन में जितना भी राजा के लिये अशुभ चिन्तन करना था, वह सब किया था, उन्हें बार-बार दोजख में भेजा था, मन में कोसा था कि राजा शिवा प्रचण्ड रेमिस्तान में भरे दिन में कड़कती धूप में पानी की बूँद के बिना प्यास से तड़प-तड़प कर मर जाये। बड़े-बड़े विषेले सर्पों से शिवा को कल्पना से अनेक बार डसवाया था। मन में उसने शिवा को बार-बार भूमि में छाती तक गाढ़कर बाद में उस पर भूम्त से पागल हुए भेड़ियों को छोड़ा था।

पर यह सारा ही मन का खेल था। प्रकट रूप में उसने एक ही काम किया। शाही दरवार में बीड़ी रखा। उस बीड़े को उठाया कूरता के विषय में असुरों में अग्रण्य महिपासुर-सदृश अफजलखान बुतशिकन कुफशिकनखान ने, और उस वेगम ने उसे महाराष्ट्र के उस कोमल उभरते शुभंकरों से भरे कदलीवन को रौंदने भेज दिया।

वह अकेला नहीं था। उसके साथ बारह हजार घुड़सवार थे, दस हजार सशस्त्र पैदल सेना थी, प्रचण्ड तोपखाना था, असंख्य जेजाला था, गरनाला, पीलनाल, पटेकरी, विटेकरी, इन सभी से भरी-पूरी सेना थी। इसके अतिरिक्त कितने ही अहीमही थे, मुसेखान, हसनखान, सिद्धीअम्बर, सिद्धीयाद्वृत, रणदुल्लाखान, अंकुशखान, सिद्धी हिलाल। केवल सिद्धी पठान ही नहीं, अपितु अफजलखान के साथ यशवन्त, कीर्तिवन्त, कुलवन्त, जाति-ही नहीं, अपितु अफजलखान के साथ यशवन्त, कीर्तिवन्त, कुलवन्त, जाति-

बन्त मराठे भी थे ।

प्रतापराव जावलीकर बदला लेने के लिये राजा पर धात लगाने के लिये निकला । यह उसके प्रसंगानुसार स्वाभाविक था, पर घोरपड़े, पांढरे, खराटे, झुंझारराव धाटगे, काटे, देवकाते जैसे मराठा सरदार भी, जिनके अफजलखान के साथ हाथ मिलाने का कोई बोधगम्य कारण नहीं था, सभी अफजलखान के साथ हो गये थे ।

यादवबंश के नाती शिवा के रचे हुए इस चौसर के पट के सुनहरे दाँव को उठाकर फेंकने के लिये कल्याण जी यादव ने भी शिवा पर अपनी सेना चढ़ा दी । और तो और, दुर्देव की पराकाष्ठा तो यह थी कि राजा का सगा चचेरा भाई था मम्बाजी भोसला, उसने भी अपनी म्यान की कटार निकाल ली थी । वह भी शिवा पर कूच करने निकला था । इससे चढ़कर दुर्देव क्या हो सकता था ?



सारा धाटमाथा एक आतंक के तनाव में था, और उसी की छाया सारे कोंकण में फैली थी । धाटमाथा और कोंकण दोनों ही सह्याद्रि पुरुष के दायें-बायें हाथ थे । उन पर तत्त्वयों के दंश करते ही वे उनको मारने उठ पड़े, यह नितान्त स्वाभाविक था ।

संकट बड़ा था । अत्यन्त कठिन था । सारे ही मन में डर गये थे । कान्होजी जेधे, हैबतराव शिलीमकर, पासलकर, झुंझारराव मरल, धुमाल, वांदल शितोले, कोंडे जैसे सारे कीर्तिवन्तों, नामवन्तों के मनों में भी मय उपजा था । फिर भी वे राजा के ही पास थे । पर जो दूर कोंकण में थे, वे क्या करते ?

आवाजी सोनदेव के पास कोंकण का सूवा था । दादाजी रांझेकर और सखोजी लोहोकर सारे कोंकण में व्यवस्था स्थापित करते धूम रहे थे । राणोजी देशमुख और वाजीराव ननावरे, ये दोनों आरमार के अधिकारी थे । दरियासारंग और मायनाक जैसे चतुर और बुद्धिमान माँझी आरमार की पतवार हाथों में थामकर उसे चला रहे थे ।

सभी के मन में उठ रहा था कि इस क्षण उन्हें राजा के पास होना चाहिए । उनके आसपास काम करने का अवसर मिले । उनके साथ भीरु

भी शूर होता था, कच्चे हृदय के व्यक्ति के मन में भी साहस जुट जाता था। इस विकराल संकट से जूझते समय राजा के पास रहें, जीवें तो राजा के साथ, कटमरें तो भी राजा के साथ और स्वर्ग की देहली लाँघने को मिली तो भी राजा के ही साथ। कम से कम इस जूझ में उतरते समय इस बीर नेता का हाथ एक बार तो पीठ पर किरेगा।

उधर सिंही हिलाल, सिंही यादूत, सिंही अम्बर, ये सभी अफजलखाँ के साथ शिवाजी पर चढ़े आ रहे थे। इसी कारण कोंकण के सारे आदिल-शाही ठिकानों ने भी उठाव किया था। दामोल के महमूद शरीफ ने अपना शासन और कस लिया था। जंजीरा का सिंही भी अपने पैरे नख और तीस्रे कर इधर-उधर के क्षेत्रों में उतरकर उनको कुरेदने और खुरचने लगा था। उसकी नौकाएं दरिया में सभी ओर धूमने लगीं। खाड़ी पारकर वह दिघी के आसपास रात-बेरात उतरता, गाँव जलाता, लोगों की हत्या करता, सिर काटकर उनके तोरण गाँव की सीमा पर लटकाता, ऐसा सब करके देखते-देखते वह ओझल हो जाता।

नौका पर चढ़ने पर सिंही शेर बन जाता था। फिर उसका पीछा करने का कोई भी साहस नहीं जुटा पाता था। उसका साहस इतना बढ़ गया था कि वह ठीक रेवस खाड़ी में उतर आया और धारापुरी के श्रीशंकर मन्दिर तक पहुँचकर वहाँ भी उसने गाँव जला दिये। ठाना की खाड़ी में भीतर राजा का आरमार सजा तैयार खड़ा था, वहाँ तक उसकी नौकाएं एक बार झाँककर लौट गयी थीं। यह सब देख-सुनकर राजा के फत्तेमारी और महागिरि के मांझी और वरकन्दाज आदेश से भर उठे थे। उन्होंने अपनी-अपनी तटी में कूदकर लंगर उठाने के लिये डोरों को हाथ लगाये थे। दरियासारंग और मायनाक भी भयंकर कुद्द हो उठे थे।

कोई और समय होता तो बात ही और थी, पर इस आफत के समय की बात भिन्न थी। वे सारे प्रतीक्षा कर रहे थे, राजा के आदेश की। वह आते ही मस्दगणों के समान वे सभी अपने-अपने हथियार पेलकर असुरदल पर टूट पड़ने वाले थे। पर इसके पूर्व राजा से मैंट हो, उनका आश्वासन मिले, ऐसा सभी के मन में जग रहा था, उठ रहा था।

घोड़ों को अत्यधिक दौड़ाते हुए गुप्तचर कल्याण में घुसे। घोड़े पसीने से सरावोर हो रहे थे। उनके मुखों से भाग टपक रहा था। सूवेदार के बाड़े के सामने घोड़ों की अनीन फेंककर वे कूद पड़े और दौड़ते-भागते ही सीढ़ियाँ चढ़कर कचहरी में जा खड़े हो गये।

राजा के गुप्तचर आये हैं, यह सुनते ही आरमार के कारखानों की ओर से दरियासारंग, मायनाक, बाजीराव, राणोजी, सभी उस ओर दौड़े। चौकी पर खड़े पहरेदारों के अभिवादन और बन्दन की ओर भी उनका ध्यान नहीं था। छाती में भरी साँस को जैसे-तैसे संभालते ये सभी कचहरी में प्रविष्ट हुए।

सूवेदार आवाजी राजा के पत्र की थैली लेने के लिये आ रहे थे। शरीर उघाड़ा था, जैसे-तैसे अंगरखा टाँग लिया था, बन्द उलझे-उलझे ही थे, उन्होंने जैसे-तैसे बाँधने का प्रयत्न करते वे भी कचहरी में आकर खड़े हो गये। गुप्तचर से थैली लेकर उन्होंने सिरमाथे की, इन सभी अधिकारियों का धीरे से, “आइए” कहकर स्वागत किया और थैली के बन्द खोलकर भीतर से पत्र निकाला। सूवेदार ने पत्र को खोला, एक बार उस पत्र पर आँखें ढाल लीं, और कहा—

“राव ! यह खलिता सभी के लिये है, सुनिए। “राजश्री आवाजी सोनदेव सूवेदार, सूवा कल्याण, के प्रति शिवाजीराजे कृतानेक नमस्कार। साम्प्रत स्वराज्य पर अफजलखान सदल चढ़ आया है। यह वार्ता विदित ही होगी। इस पर वहाँ के सभी बड़े-बड़े विशिष्ट अधिकारियों, दीलत-वंकी और बाजीराव देशमुख तथा दरियासारंग और मायनाक भण्डारी इत्यादि के मन में आया होगा कि हमारे साथ रहें। पर किसी को भी अपना ठिकाना छोड़ने की आवश्यकता नहीं है। सभी अपने-अपने स्थान पर सावधान रहें और इधर से सूचना मिलते ही एकजुट होकर शत्रुओं पर टूट पड़ें, अपनी-अपनी युक्ति और मति का उपयोग कर यश प्राप्त करें। माँ जगन्माता ने अब तक आपको यश दिया है, वह भविष्य में भी देगी ही। इसके बाद आरमार के विषय में सावधानी रखें, ऐसी कि गनीम से मुठ-भेड़ होकर जूझ हुई तो भी सभी को परास्त कर गनीम को मार गिरायें।

“हवाओंके कारण गनीम अड्डदब में न आ पा रहा हो, हमारा आरमार संभल रहा हो, या अपनी नौकाएँ हवाओं पर न चलें, तब हम कितने भी बली हों, जूझ तोड़ते हुए पीछे सरें। नौसैनिकों के साथ विश्वासधात न हो, ऐसा नौका-संचालन करें। एक-एक नौसैनिक जुटाने में बहुत परिश्रम करना पड़ता है, इसलिये सभी नौसैनिकों की सुरक्षा रखते हुए शत्रु को परास्त करना है। शत्रु थककर कठिनाई में पड़ गया हो, फिर भी उसके बेड़े पर एकाएक चढ़ जाना ठीक नहीं होता, दूर से ही चारों ओर से उसे घेरकर उस पर तोपों से आग वरसाना सम्भव है। हम थक गये हैं, त्रस्त हैं, ऐसा दिखाकर गनीम एकाएक बढ़कर आक्रमण करता है, इसलिये उसे अपने नौकाओं के बेड़े के समीप न आने दें। वह समीप आकर एकाएक आग वरसाता है। इसलिये उस पर विश्वास न करते हुए दूर से ही अभ्य देकर उसी के बड़े अधिकारी अपनी ओर अमानत के तौर पर चुलाने चाहिए। वे अधिकारी अपनी नौकाओं पर होने पर अपने सैनिक गनीम की नौकाओं पर चढ़ायें, अन्यथा धन-जीवन की चिन्ता न कर नौकाओं पर मार करते हुए उन्हें तोड़ देना चाहिए।

“इस प्रकार मति और युक्ति का उपयोग कर जूझ साधनी है। शीघ्रता में जो भी मन में आया, वह लिखा है, इसलिये सदा सावधान रहें। इति लेखन-सीमा।”

पत्र यहीं समाप्त हुआ। कुछ क्षण कोई भी नहीं बोला, फिर उसाँस कर दरियासारंग ने कहा—

“कैसा जिगर ! आसमान टूट पड़ा हो, ऐसी आफत आ पड़ी है, फिर भी मगज कितना सावधान है !”

छाती भरकर बाजीराव ने कहा—

“इसीलिये तो ऐसे राजा पर प्राण न्योछावर करने के विचार मन में आते हैं।”

सारा आरमार किसी भी क्षण पाल बाँधकर अभियान पर निकलने की तैयारी में खड़ा था। डांडे और पतंगे पानी में उतरे हुए थे, लंगरों के डोर पकड़कर खलासी तैयार थे। पालों पर बँधी केलों के पेड़ों की छाल को काट-काटकर मल्लाह पालों के दूसरे छोर हाथ में लिये संकेत की

प्रतीक्षा में थे ।

जानकी की दशा अत्यन्त क्षीण होने का सन्देश आ पहुँचा था, फिर भी वाजीराव ने उसका विचार मन को छूने नहीं दिया था। समर्थ रामदास ने उससे माँगा था कि वाजीराव का जीवन राष्ट्रकार्य में सार्थक होना चाहिए, इसीलिये वाजीराव के मन में भी अपना जीवन इस महान् राष्ट्रकार्य के लिये समर्पित करने का निश्चय जगा था। इस निश्चय में, प्रत्यक्ष अवसर आने पर, अन्तर पड़ने से समर्थ के सामने की गयी प्रतिज्ञा खोटी ठहरती, इसीलिये वह इस अभियान पर स्वयं आगे बढ़ने वाला था।

सिंही के जंजीरा पर आरमार चढ़ गया था, वह केवल एक परीक्षा थी, एक अभ्यास मात्र था। आरमार की खरी परीक्षा तो इसी अभियान में होने वाली थी। गनीम ने चारों ओर से उठाव किया था। जंजीरा का सिंही, दाभोल का महमूद शरीफ और इधर-उधर के छुटमैय्ये भी इतराने लगे थे। इन सभी के मस्तकों पर पैर देकर कुछ अनोखा कर दिखाना आवश्यक था। तभी तो आरमार की सार्थकता होती, अन्यथा बकरी के गलस्तन के समान यह आरमार स्वराज्य के लिये गलग्रह ही सिद्ध होता।

इसी प्रकार के विचार सभी के मन में आ रहे थे। सभी राजा के आदेश की प्रतीक्षा में तैयार खड़े थे। तभी एकाएक एक सैनिक सांडणी को दौड़ाता आया। एक थैली वाजीराव के लिये और एक मायनाक भण्डारी के लिये थी।

वाजीराव ने खलिता खोला, अत्यन्त आतुरता से, उसमें आदेश था कि तीन आदिलशाही नौकाएँ युद्ध की सामग्री लेकर अफजलखान के लिये कुमुक करने के लिये दाभोल बन्दरगाह की ओर रवाना हुई हैं। पलभर का भी विलम्ब न करते हुए पाल वाँधकर छापा मारकर उनमें से जितने मिलें, पकड़ने हैं। सफूति इतनी कि कल्याण में पानी का घूंट लिया हो तो दरिया में पहुँचकर ही वह गले के नीचे उतरना चाहिए।

उसी क्षण वाजीराव ने आदेश दिया—

“लंगर उठाओ। पाल फरफराने दो।”

मायनाक को असगुन तो भोर से ही हो रहे थे, पर उसने इस व्यस्तता में उस ओर ध्यान नहीं दिया था। उसने भी थैली खोली और चुपचाप पढ़ ली। उसमें लिखा था—

“राजश्री, मायनाक भण्डारी प्रति निलोपन्त हरि। मु॥ राजगड़। कृत अनेक आशीर्वाद। सूचना देते हुए अत्यन्त खेद है कि सौ० जनकाई देशमुख, ननावरे वाजीराव देशमुख की पत्नी का आज प्रातःकाल देहावसान हुआ। अन्तिम घड़ी में उसने तुम्हारा स्मरण कर सन्देश दिया है कि राजश्री का ध्यान रहे।

“सकल सौभाग्यवती सई रानी साहिवा का निधन होने के पश्चात् यह घटना घटी, इसलिये माँ साहिवा अत्यन्त दुःखी हैं।

“यही विज्ञापना...॥”

खलिता पढ़ते ही मायनाक को पैरों तले की धरती खिसकती सी लगी। उधर वाजीराव ने आरमार को निकलने के आदेश दिये थे, उसे यह सब बताये भी तो कैसे? क्या कहेगा वह? क्या साहस खो देगा? या दुगुने आवेश से शत्रु पर चढ़ जायेगा? क्या करेगा? क्या होगा? तभी हरकारा मायनाक को ढूँढ़ते उधर ही आया। उसने बताया—

“देशमुख बुला रहे हैं।”

मायनाक ने क्षणभर स्वयं को सेंभाला, आँखों के आँसू पोंछ लिये और वह वाजीराव के सामने जाकर खड़ा हो गया। महागिरि तक जाने के लिये छोटी डोंगी में पैर रखते वाजीराव ने उससे आश्चर्य के साथ पूछा—

“हो क्या गया है मायनाक?”

एकाएक मायनाक ने आगे बढ़कर दोनों हाथों से वाजीराव को कस लिया, उसे अपने गले लगाते हुए कहा—

“शोक करने की आवश्यकता नहीं है...देशमुख...रानी सरकार सई बाईसाहिबा भी उसी मार्ग से सिधार गयीं...और तुम्हारी चिन्ता मुझपर सोंप दी मेरी बहिन ने।”

“क्या हुआ यह!” तत्काल ही वाजीराव की समझ में सब आ गया। क्षणभर उसे सारा ब्रह्मण्ड चारों ओर धूमता सा लगा, आकाश के नक्षत्र

लुप्त होते से दिखे, पर उसने दूसरे ही क्षण स्वयं को सँभाल लिया। अपनी आवाज साफ कर वह बोला—

“चलो मायनाक, देर होना ठीक नहीं, महाराज का आदेश है।”

मायनाक बाजीराव के उस नवीन स्वरूप को देखकर आवेश से भर गया। उसने भी अपनी नीका की ओर घूमकर आदेश दिया—

“चलोSS, बढ़ चलें।”

मार्गशीर्ष सुदी, सप्तमी की रात, आकाश में चाँद दमक रहा था। दरिया साफ था। हवाएँ अनुकूल वह रही थीं। सारी नौकाएँ तीर सी पानी काटती आगे बढ़ रही थीं। लहरों पर सवार होकर स्वराज्य का आरमार दाभोल की ओर बढ़ रहा था। आगे की फत्तेमारी में मायनाक के साथ बाजीराव था। उस फत्तेमारी का नाम था—दरिया-भवानी। दरिया की लहरों से भी अधिक विचारों के आवर्त बाजीराव के मन में उठ रहे थे। मुरुबदेव की पहाड़ी की गोद में गुंजनमावल के आँचल में सोया छोटा सा खेड़ा, वहाँ की देशमुखी, उसके पीछे उठे मानापमान के झगड़े, भाईबन्दों के झगड़े, जलाये गये घर, विखरे कुनबे और कबीले, सभी अपने ही सगे-सम्बन्धी !! उसी के पीछे भोगना पड़ा था, आदवखाने का नरक-वास। वहाँ जवांमर्दी से राणोजी का प्रवेश, उसके प्रयत्नों से अपनी मुक्ति, केवल सुदैव ही कि राजा का सहवास मिला। उनका मित्रों के साथ का व्यवहार, वह आत्मीयता, वह प्रेम, अपने सखाओं के लिये उनके मन की वह व्याकुलता, और इस सबके लिये कारण—जानकी।

क्षणभर बाजीराव का मन भर आया। उसके मुँह से सिसकी निकलने ही वाली थी। क्षणभर में उसने स्वयं को सँभाला—नहीं, नहीं। वह फूल तो माँ जगदम्बा के चरणों में चढ़ाया था। उस क्षण स्वयं माँ साहिबा की गोद में उसका मस्तक रहा होगा, थरथर काँपते हाथों से माँ साहिबा ने उसके मुख में गंगाजल दिया होगा, अन्तिम क्षण में उसके हौंठों पर मेरा नाम आया होगा..., पूछूँ मायनाक को कि उसे यह वार्ता कैसे मिली? नहीं, नहीं। इस क्षण कुछ भी नहीं। प्राण के पावड़े विछाकर उस पर पैर रखकर केसरिया बाना पहने रण अभियान पर बढ़ चले हैं हम सब। ये सभी विचार कितने भी पवित्र हों, इस क्षण पैरों में पाश बन जायेगे।

बाजीराव ने मन से सारे विचार तत्काल भटक दिये। छाती फुलाकर उसने एक बार पीछे देखा और पुकार कर कहा—

“बहुत अच्छे। शाव्वास बीरो! ऐसी ही चलने दो नौकाएँ। कोई भी पीछे न रहने पाये। तुम सभी को दरिया में उठती लहरों की कसम है, बढ़ो, आगे बढ़ो।”

मायनाक तट की ओर देखकर एक-एक स्थान बता रहा है। नौगाँव प्रातः ही पीछे रह गया, कुंडलिका की खाड़ी तो कभी की पीछे रह गयी। फिरंगियों ने अपने काफिले को रोकने का विचार किया, पर अपना प्रचण्ड बेड़ा देखकर उनकी चाल भी रुक गयी। दोपहर पीछे छोड़कर आगे बढ़े थे, वह थी दण्डाराजपुरी। जंजीरा के आसपास भी सिंही का आरमार तैयार खड़ा था। पर हमारे बेड़े का उत्साह, आवेश और व्यूह तथा हमारी चाल देखकर वह भी साहस छोड़ गया। सायंकाल श्रीवर्धन छोड़ दिया था, उसी समय हरेश्वर की पहाड़ी भी पीछे रह गयी थी। सांझ उत्तरते-उत्तरते हम मुरुङड के निकट थे, आधी रात के समय हमने कोलथर थामा था। अब वह प्रूरब की ओर ललाई उठ रही है। शीतल हवाएँ शरीर को विश्राम दे रही हैं। दरिया की हवाएँ भी ठीक चल रही हैं। हमारी नौकाएँ किसी भी वाधा को न मानते हुए तीर सी आगे बढ़ रही हैं। बीती रात में पैरों तले उछलता दरिया, और उसकी लहरों पर सवार होकर भागता-दौड़ता अपना जहाजी बेड़ा। एकाएक मायनाक की फत्तेमारी का वेग मन्द होते लगा। बाजीराव ने चिल्लाकर पूछा—

“मायनाक, क्या हो गया? गति मन्द क्यों?”

“जी, गन्तव्य समीप आ गया, देशमुख! दाभोल।”

वह क्या, सामने वासिष्ठी की खाड़ी। आँगन के सोजने के पेड़ पर चढ़ने के समान मायनाक सरसर करता मस्तूल पर चढ़ गया है, उसको एक पैर से अड़ी देकर हाथों से निशान घुमा रहा है। सारी फत्तेमारी धीरे-धीरे फैल रही है, व्यूह की नवीन रचना हो रही है।

खाड़ी के मुहाने को धेर लिया गया है। सारी नौकाएँ अब स्थिर हैं, टोही डोंगियाँ खाड़ी के नस्त में से खाड़ी में प्रवेश कर रही हैं।

—
सारा पूर्व-नियोजित था ।

तोपों की आवाज उठते ही सभी जुझारु सैनिक जावली की घनी झाड़ियों में से निकलकर सिंहों के समान खान की सेना पर टूट पड़ेगे, और दौलोजी अपने हजार सैनिकों को लेकर पोलादपुर खेड़ा से दाभोल की ओर कूच करेंगे । एक-एक रेखा आँकी हुई थी । कहीं भी, एक सूत तक का अन्तर नहीं । तोपों की आवाज उठी, उस रूप में जयवार्ती कानों पर पड़ते ही, “अफजल काट दिया गया, उसकी बलि माँ भवानी को दी गयी, ऐसी आवाजों के साथ शरीर पर रोमांच लिये दौलोजी के एक हजार घुड़सवार धाट उतरकर दाभोल की ओर दौड़ने लगे । कटे धान के खेतों में से, खड़े खेतों में से, सोतकी के फूलों की झाड़ियों में से, वाँसों के जंगलों में से, सागोन के घने जंगल में से और आम तथा हर्र की राइयों में से हजार अश्वारोही अमित वेग से आगे बढ़ रहे थे । बड़ी ही फुर्ती से इन सभी ने सन्ध्या उत्तरते-उत्तरते दापोली को पीछे छोड़ दिया । धाटमाथे पर घोड़ों को घड़ी-दो घड़ी आराम दिया । रात के पहले पहर पहाड़ी उत्तरते हुए दो ओर के मार्गों से नारियल के वागों में से मीनारों से ढके दाभोल में यह सारी सेना घुस गयी । दाभोल का सूबेदार मुहम्मद शरीफ वेताब खड़ा था । उसके सामने उसका टोही सिर झुकाये खड़े-खड़े बता रहा था—

“पता नहीं हुजूर, कितने हैं, लेकिन हैं बहुत बड़ी तादाद में । ऊपर वाला सारा पहाड़ भर गया है, ठिड़ियों के जमाव सी वह फौज आगे बढ़ रही है, अभी आ पहुंचेगी ।”

सूबेदार मुहम्मद शरीफ बुद्धिमान था । वैसे भी वह दाभोल छोड़ने का निश्चय कर चुका था । वैसे नहीं तो ऐसे ही सही । उसने अत्यन्त बुद्धिमानी से निर्णय लिया ।

तीन बहुत बड़े जहाज दाभोल के बन्दरगाह पर खड़े थे । “माल नीचे कब उतारें ?” ऐसा वे बार-बार पूछ रहे थे । उनमें क्या नहीं था ? सारी युद्ध-सामग्री थी । छोटी हल्की तोपें थीं, कडाविनी थीं, जेजाले थे, होके थे; बाण थे, गोले थे, बारूद के भरे अनगिनत कुठीले थे, तेंगे थीं, खांडे थे, पेशकब्ज थे, घोड़ों पर चढ़ाने का सारा सामान था, अनाज था, और थी

विशाल धनराशि ।

किसी चतुर सेनानी सा मुहम्मद शरीफ अकेला ही उनमें से एक जहाज पर जा चढ़ा । उसने आदेश दिया, “हम कर्माते हैं—चलो राजपुर, अभी और इसी वक्त ।” उसके अमलदार, जनाना, कुनवा सभी उसके पीछे दौड़ते-मागते आरहे थे । उसने जहाज से ही चिल्लाकर कहा—“आहिस्ता । आहिस्ता । सभी को आने दो । कोई भी पीछे न रहने पाये । हम आगे बढ़ रहे हैं । खुदा हाफिज ।”

आधी रात उत्तरते-उत्तरते उसकी नौका बन्दरगाह के नस्त में से बाहर खुले दरिया में उत्तरी और दरिया पर किंचित् भी चिह्न बिना छोड़े वह राजापुर की ओर चली गयी । उसी के पीछे-पीछे दूसरा जहाज भी चला गया । खान का मश्रूर साहसी था । सारे लोग जहाज पर चढ़ते, तब तक उसने तीसरे जहाज को लंगर उठाने नहीं दिया ।

घुड़सवारों की टपटप सुनायी देने लगी, जलती मशालें वागों में चमकने लगीं । चारों ओर एक ही शोर उठा था, उससे सारा दाभोल घिर गया । तब कहीं शीघ्रता से उस नौका के माँझी ने लंगर उठाकर उसका मोहरा घुमाकर पाल फरफरा दिये । डांडे और पतंगे पानी में डूबने-उठने लगे, पर दरिया में ज्वार होने के कारण वह नौका मन्द-मन्द गति से नस्त की ओर बढ़ रही थी । तब तक रात उत्तरने लगी थी । एकमात्र काजी तट से जाती नौका के नाम से गालियाँ बकता, तौबा कर रहा था । दौलोजी का अश्वदल तृफान के वेग से निकला था, वह वस्तियाँ रौंदते हुए सीधे सूवेदार के बाड़े की ओर बढ़ गया । उनकी इच्छा थी, सूवेदार का वाड़ा खड़गों से तोड़कर खोल दें । पर वह तो खुला था, सूवेदार के सारे कामगार और खलक और हशम नारियलों के वागों में से जंगल की ओर भाग गये थे ।

दाभोल की वस्तियों में से घुसा वह शिवाजी का अश्वसैन्य था, यह सुनाभर था कि आनन्द से पगला गया पांड शेटी बाप की पुकार और पुचकार को अनसुनी कर वैसे ही भागता-दौड़ता सूवेदार के बाड़े की ओर लपका । इतने वर्षों तक दबे अनेक लोग उसके पीछे राजा शिवाजी का जयकारा करते भागते-दौड़ते उसी ओर जा रहे थे ।

दौलोजी के सवार बाड़े की खानातलाशी ले रहे थे । कई खोजे और

कई लौंडियाँ मिलीं, उनको तलवारों से डराया-धमकाया और पूछा, “खब्बा कहाँ है ?” तब तक संरपट भागता पांड शेटी वहाँ जा पहुँचा, उसने हाँफते-हाँफते कहा—

“भाग गया, भाग गया । जहाज में चढ़कर भाग गया । पीछा करना हो तो बन्दरगाह पहुँचकर नौकाएँ और जहाज खोलो, भागो ।”

उसे अपने साथ लेकर दौलोजी उसी क्षण बन्दरगाह की वस्ती में घुसा । कितने ही मछुए और मल्लाह यह सारा शोर देखने बन्दरगाह पर खड़े थे ।

पांड शेटी ने एक-एक को बाँह में पकड़कर खींचकर, आठ-दस नौकाएँ बाहर निकलवा दीं । उनमें बैठकर दौलोजी के शिलेदार महमूद शरीफ का पीछा करने आगे बढ़ चले, तब तक पूरब में ललाई उग चुकी थी ।

भोर होते-होते धून्ध की चादर अन्तराल में से ऊपर उठी । खाड़ी के बाहर खुले सागर में धीरे-धीरे आभास लेता मराठों का आरमार खाड़ी में घुसने की तैयारी में था । चारों दिशाएँ उसने रोक ली थीं ।

तभी आगे गयी टोही नौकाएँ तीर के समान लौटकर मायनाक की फत्तेमारी के पास पहुँचीं । उन्होंने सूचना दी, एक बड़ा सा जहाज नस्त में से बाहर आ रहा है । हटते धून्ध में से वह जहाज साकार हो रहा था ।

वाजीराव की ओर देखकर मायनाक ने संकेत किया और एक ही क्षण में सभी फत्तेमारियों पर से कडाविनी के प्रहार उठे । उस आवाज को सुनते ही उस जहाज पर एक विचित्र सा होहल्ला और शोर होने लगा ।

उसमें भी कुछ साहसी थे । उन्होंने जैसे-जैसे उस शोर में भी तोपों में बत्ती लगा ही दी । पर उन तोपों के गोले इस बेड़े के पीछे दरिया में जा गिरे ।

उन तोपों की उन गर्जनाओं को अनदेखा कर मराठों की फत्तेमारियों ने अपना धेरा और कस लिया । जहाज में बैठे, भागने वालों ने निराशा में पीछे खाड़ी की ओर देखा, माँझी और मल्लाहों को जहाज पीछे मोड़ने को कहें, तभी पानी पर रेखाएँ खींचती नावों में और डोंगियों में बैठकर आते दौलोजी के शिलेदारों की गर्जनाएँ उन्होंने सुनीं । साथ ही कडाविनी की आवाजें भी उठीं । मराठों का आरमार फास संकरा करने लगा था । उस-

वेडे पर रणगर्जनाओं का ऐसा डरावना शोर उठ रहा था कि सारा आकाश
उन गर्जनाओं से हिलने लगा। मुहम्मद शरीफ के जहाज पर एक साहसी
फिर से तोप में बारूद भर रहा था। उसके मुँह पर तमाचा मारकर उस
जहाज के माँझी ने कहा—

“आँखें फूट गयी हैं क्या ? मरना है वेसीत ? अरे सर सलामत तो
पगड़ी हजार !”

उसने जहाज का निशान झटपट उतार लिया और सफेद निशान
चढ़ाया। आगे और पीछे से आयी नौकाओं ने जहाज को धेर लिया था।
इस ओर से एक टोही जहाज आगे बढ़ा, उस पर खड़ा माँझी चिल्ला रहा
था—“अमानत ! अमानत !! नहीं तो कडाविनियों में बारूद भरी है।”

कुछ नामजद ओहदेदार गर्दन झुकाये जहाज की छोटी ढोंगियों में
उतरे और हाथ बाँधकर दरियाभवानी के पास पहुँचे। एक बूँदे ने कहा—
“ख्याल रहे, खाँ साहब का जनाना जहाज पर है।”

जहाज पर विजय का प्रतीक चढ़ाने हाथ में भगवा ध्वज लिये बाजीराव
डोंगी में उतर रहा था। उसने कहा—

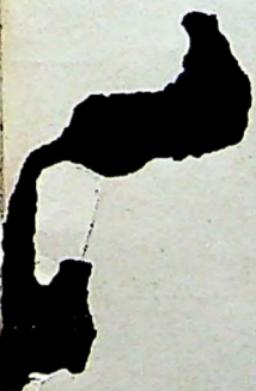
“जनाने का सम्मान सुरक्षित रखना मराठों को भलीभाँति आता है।”

□ □ □

३







कुछ संग्रहणीय पुस्तकें

<u>१. हम, भारत के लोग</u>		मूल्य रुपये
—नानीं पालखीवाला		१००.००
<u>२. हिन्दू संकृति और सत्तावादी राजनीति</u>		
—डा० लक्ष्मीनारायण लाल २०.०० (सस्ता संस्करण ८.००)		
<u>३. वैदिक राष्ट्रदर्शन</u>		
—महामहोपाध्याय वालशास्त्री हरदास	१००.००	
	(सस्ता संस्करण ४०.००)	
<u>४. जब बोलगा लाल हो गयी</u>		
—वि० स० वालिम्बे	६०.००	(सस्ता संस्करण ३०.००)
<u>५. ...और देश बँट गया</u>		
—हौ० वै० शेषाद्रि	४०.००	(सस्ता संस्करण २५.००)
<u>ऐतिहासिक उपन्यास</u>		
<u>६. माँ अब तो खोलो द्वार!</u>	३२.००	(सस्ता संस्करण १५.००)
<u>७. हर हर महादेव</u>	३२.००	(सस्ता संस्करण १५.००)
<u>८. दरिया भवानी</u>		
—गो० नी० दाण्डेकर	३५.००	(सस्ता संस्करण २०.००)
<u>९. सिद्धियों के खण्डहर</u>		
—डा० शत्रुघ्न	२५.००	(सस्ता संस्करण १०.००)
<u>सामाजिक-राजनीतिक उपन्यास</u>		
<u>१०. संघर्ष</u>		
—आर० एस० नल्लपेरुमल	३५.००	(सस्ता संस्करण १५.००)
<u>११. एक अकेला</u>		
—रामकुमार भ्रमर	१५.००	(सस्ता संस्करण ८.००)

सुरुचि प्रकाशन

केशव कुंज, झण्डेवाला, नयी दिल्ली-११००५५